

र ज वा डा

हमारा उपर्योगी साहित्य

प्रेमचन्द्र	(जीवन और कृतिव्य)	हमराज 'रहवर' १।।)
सुमित्रानन्दन पन्त	(काव्यकला और जीवन-दर्शन)	शर्वीरानी गुर्दू ६)
महादेवी वर्मा	" "	शर्वीरानी गुर्दू ६)
महाकवि सूरदास		नन्ददुलारे वाजपेयी ५)
आलोचक रामचन्द्र शब्दल		गुलावराय तथा स्नातक ६)
हिन्दी कविता में युगान्तर		डा. सुधोन्द्र ६)
साहित्य, शिक्षा और संस्कृति		डा. राजेन्द्रप्रसाद ५)
रोमाण्टिक साहित्य-दास्त्र		देवराज उपाध्याय ३।।)
काव्य के स्प		गुलावराय ४।।)
सिद्धान्त और अध्ययन		गुलावराय ६)
हिन्दी-काव्य-विमर्श		गुलावराय ३।।)
हिन्दी के नाटककार		जयनाथ 'नलिन' ५)
कहानी और कहानीकार		मोहनलाल 'जिज्ञासु' ३)
हिन्दी साहित्य और उसकी प्रगति		स्नातक तथा सुमन ३)
समीक्षायण		कन्हैयालाल सहल ३)
साहित्य-विवेचन		सुमन तथा मल्लिक ७)
प्रबन्ध-सागर		यशदत्त शर्मा ५।।)
आदर्श पत्र-लेखन		यशदत्त शर्मा ७।।)
जीवन-स्मृतियाँ		झेमचन्द्र 'सुमन' ३)
कला और सौन्दर्य		गमकृष्ण शुक्ल 'शिलीभुख' ३।।)
मैने कहा		गोपालप्रसाद व्यास ३)
प्रगतिवाद की रूपरेखा		मन्मथनाथ गुप्त ७)
		किशन १, २।।); किशन २, ३।।)
		रामकृष्ण शुक्ल ३)

र ज वा डा

(सचिन्त्र)

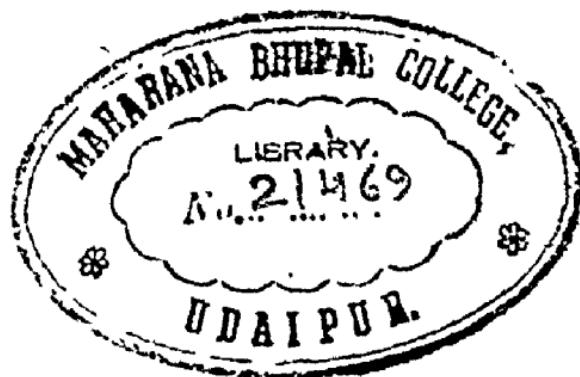
लेखक

देवेश दास

गाई. सी. एस.

सन्कटरा, यूनयन पब्लिक सर्विस कमीशन

नई दिल्ली



प्रकाशक

गमताल पुरी

ग्रामाराम एंड बैम

काश्मीरी गेट, दिल्ली ६

मूल्य पाँच रुपये

--

भूमिका

जब मैं विलकुल छोटा था उसी समय से राजस्थान से मेरा परिचय बँगला की प्रसिद्ध शतवर्षीय प्राचीन पंक्तियों के साथ हुआ—

“स्वाधीनता हीनताय के वाँचिते चाय है ।
के वाँचिते चाय ?”

जब भी मैंने राजस्थान की गाथाओं का अध्ययन किया, मेरे मन में प्रज्वलित में की भाँति उपर्युक्त प्रश्न उपस्थित हुआ । किशोरावस्था और यौवनावस्था में राजस्थानी गाथाओं का स्वप्न देखा है । स्वतन्त्रता-आन्दोलन की यज्ञदेवी के क्ष मैंने यह महसूस किया कि रजवाड़े का बंगाल तथा भारत से जो सम्बन्ध है वह ल प्रेम-प्रतीक ही नहीं अपितु प्रेरणा का प्रतीक है ।

अतः मैंने जो राजस्थान-भ्रमण किया वह मुझे एक तीर्थयात्रा सिद्ध हुआ । एक युग-संधि के समय में मैंने उस राजस्थान को प्रथम देखा । जिस समय और ब्रिटिश-सत्ता का सूर्य अस्त हो रहा था और दूसरी ओर भारत की लोकतान्त्रिक कार ने भारत की सारी रियासतों को एकीकरण किया था, उस समय रजवाड़े का पूर्ण विलय हुआ । इस युगान्तरकारी रूपान्तर को देखते-देखते मैंने राजस्थान की ओर घटनाओं का निरीक्षण किया । चिरकाल के रजवाड़े के लिए मेरी जो श्रद्धा और तिंज़ित है उसके प्रति यह मेरा प्रणाम है ।

द पूर्णिमा, सं० २०१०
नई दिल्ली

—देवेश दास

विषय-सूची

		पृष्ठ
१. अभिसार की भलक	१
२. हवाई यात्रा	१३
३. जयपुर की नूरजहाँ	२६
४. कृष्णकुमारी की कहानी	३६
५. राजश्रतिथि	४५
६. शिकारी और स्वप्नदर्शी	५५
७. विवाह और प्रथम प्रणय	६२
८. सवाई राजा जयसिंह की कहानी	७१
९. राजपूत का युद्ध-वर्णन	७६
१०. रसिक जीवन	८६
११. दरवारी नृत्य	९३
१२. नवी पीढ़ी का विकास	९६
१३. कथक नृत्य की कहानी	१०४
१४. रूपसी रानी पद्मिनी	११३
१५. रक्षावन्धन	१२१
१६. प्रेम योगिनी मीरा	१३०
१७. महाराणा प्रताप और चारण	१३८

रजवाड़ा

१

अभिसार की भलक

एक सुन्दर सुडौल चरण एक बड़ी हड्डसन गाड़ी से बाहर आया ।

नई दिल्ली के इण्डिया गेट के पास के भैदान में मुलायम घास की शैया पर मैं अँधेरे में अकेला आराम से लेटा हुआ था । इस जलवायु में इन घासों को उगाने और हरी-भरी रखने में जितना खर्च होता है उसे देखते हुए उस घास की शैया का मूल्य मेरे घर की शैया से किसी प्रकार कम न होगा वल्कि उससे कुछ अधिक ही होगा ।

प्रतिदिन काम-काज से छूटी मिलने के बाद संध्या समय यहाँ इस एकान्त कोने में कुछ देर बैठे या लेटे रहना भुझे बहुत पसन्द है । दिन भर सरकारी दफ्तर (सचिवालय) से छूटी नहीं मिलती । सुना है कि स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद पण्डितों ने इन दो विशाल पापाण-दुर्गों का नाम महाधिकरण रखा है । रखे, कुछ हर्ज नहीं; परन्तु इस सुधार के बावजूद काम मे किसी तरह की उसास मिलती नहीं दिखाई पड़ती । ये दोनों पापाण-दुर्ग अंग्रेजी में नार्थ ल्लाक और साउथ ल्लाक नाम रखे पहले की ही तरह छाती पर पर्वत जैसे रखे हुए हैं ।

लड़ाई के समय काम की अधिकता और उसके बाद नेताओं तथा राजनीतिज्ञों के आवागमन और बातचीत ने सरकारी दफ्तर को कुछ भटकाना दिया था । इसके बाद ही स्वतन्त्रता के साथ-साथ शरणार्थियों की विकट समस्या सामने आई । सभी सरकारी दफ्तरों को उसने बुरी तरह भक्खोर दिया । काम का बोझ इतना बढ़ गया जिसका लोग अनुमान नहीं कर सकते ।

काम इतना बढ़ा कि किसी को बैठकर काम करने का अवकाश ही नहीं मिलता था । एक दिन पूर्वों बंगाल के एक शरणार्थी महाशय को एक व्यक्ति ने यही बात इस प्रकार समझायी—साहब । खैरियत है कि पैरों के बल खड़े-खड़े काम करना पड़ता है, सिर के बल खड़े होकर नहीं । सिर के बल खड़े होने पर जिस तरह सारा खून सिर में इकट्ठा हो जाता है, पैरों के बल खड़े होने पर ऐसा नहीं होता ।

पर नये आये महाशय अपनी परेशानी से व्याकुल थे । तड़ाक से बोल उठे—
उरने की कोई वात नहीं साहब ! आपके पर आतिर अधर में तो नहीं हैं ।

इतना कहकर उन्होंने उनके सिर की ओर कुछ भेदभारी दृष्टि से तिरछे
निहारा ।

दप्तर में किसी से भेट होने पर आँखों में उलझन और चेहरे पर बेचौनी का
भाव व्यवत करते हुए कह दीजिये—ठहरिये साहब । इस समय तो मूझे मरने को भी
फ़ुसंत नहीं ।

जब उन्हे कुशासन पर लेटने को फ़ुसंत नहीं तो यही क्यों ठहरें, इसका उचित
उत्तर नहीं दिया जा सकता ।

यह सज्जन तब इसका प्रमाण देने के लिए कि इन पर उनके समान ही या
उनसे भी अधिक काम का बोझ है, पिछले महासमर की देन विना आस्तीनों की
बुश शर्ट अर्थात् केप कमीज या शर्ट और कोट की मिली-जुली पोशाक के कालर को
दो अंगुल मरोड़ते हुए कह उठेंगे—अरे, कुछ न कहिये साहब ! जन्तु (जांघण्ट) सैक्रेटरी
कुछ ऐसे विगड़े मिजाज है कि रोज़ सुबह-शाम फाँसी पर चढ़ाते-चढ़ाते रह जाते हैं ।

परन्तु इतना समय कहाँ कि इनसे पूछा जाय कि सबेरे अगर यह काम पूरा
कर डाला जाय, तो शाम को फिर से करने की नीवत ही कहाँ से आयेगी ?

बातावरण तो ऐसा है, फिर भी तेज़ी से सीढ़ियाँ चढ़ते हुए लोग कुछ हँसी-
मजाक का मौका निकाल ही लेते हैं । यह हँसी-मजाक नहीं, संजीवनी रस है ।

—भाई, मैंने एक बड़ा अच्छा आविष्कार किया है ।

—कैसा है वह आविष्कार ? जल्दी पेटेन्ट करा लो । अभी बाजार गर्म है ।
राहवलते कुछ पैसे बन जायेंगे । बुरा क्या है ?

—नहीं, ऐसी कोई वात नहीं । अविवाहित और विवाहित का फ़र्क तो
जानते हैं न ?

श्रोता ने कान खड़े कर लिये, और कहा—जरा बताइये तो सही, क्या वात
है, पहेली न बुझाइये ।

वे हँसे, बोले—वात बहुत ही मामूली है, अविवाहित के कोट में बटन नहीं
होते, और विवाहित के कोट ही नहीं होता ।

अपने घर के बाल-भोपालों की पलटन को याद करते हुए उन्होंने कहा—अब मैं
सूझ गया कि मेरी कमीजे क्यों घटती जा रही हैं; लेकिन भैया ! कोई वात नहीं,
जुग जुग जियो हमारी बुश शर्ट ।

दूसरे साहब ने समर्थन में सिर हिलाते हुए कहा—यही तो कहना चाहता हूँ ।
शर्ट भी नहीं है, कोट भी नहीं है, फिर भी फाइलो के जंगल में घुसने के लिए तन

पर कुछ तो चाहिए। इसीलिए इसका नाम पड़ा बुश शर्ट। जिसने इसका आविष्कार और नामकरण संस्कार किया है, इसमें सन्देह नहीं कि वह कोई पहुँचा हुआ महापुरुष था। उसमें दया-ममता तो थी ही, साथ ही मज़ाकिया तवियत का भी था।

ऐसा सभी दिखाते हैं कि इस घने जंगल में अभी-अभी स्वतन्त्र हुए इस देश के लिए सब प्राण दे रहे हैं, अर्थात् प्राण देने को तैयार हैं, अर्थात् जब प्राण देने का कोई अवसर नहीं, तो उसके बदले काम कर रहे हैं। काम जितना नहीं है, उसका सो गुना अधिक काम का अभिनय है, सिद्धान्त से हजार गूँनी अधिक पैतरेखाजी है। परिणाम यह है कि सब की जान सांसत में है। देश के लिए यदि प्राण देना ही पड़े, तो निकम्मे जीवन को यह एक नया रास्ता मिल गया है। इस दृष्टि से मैं भी योजना देश के लिए बिना हिचक प्राण दे रहा हूँ। एक दिन नहीं, प्रतिदिन, यहाँ तक कि छुट्टी के दिनों में भी। बात यह है कि उस दिन भी कुछ लोग आफिस में हाजिरी देने आ धमकते हैं।

क्यों? हमारे प्रतिदिन के साधारण जीवन में तलवार नहीं चलती, तो क्या इसी से हम देशभक्त नहीं? दिन भर में हम कलम कितनी चला लेते हैं, इसका आपके पास कोई लेखा-जोखा है?

अतएव परिस्थिति यह है कि सब लोग कमर कसकर कलम उठाये हुए देश के लिए काम किये जा रहे हैं। दुःख की बात है कि कुछ लोगों ने विदेशी पेट छोड़ कर चूड़ीदार पायजामा अपनाया है, जिससे वे कमर कसने अर्थात् कमर में वेल्ट बौधने के सुयोग से वंचित हो गये हैं। इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि 'टाइटन योर वेल्ट' (वेल्ट कसो याने पेट घटाओ) कितना महत्वपूर्ण कथन है।

हाँ, उसकी कमी पूरी करने के लिए उन्होंने नवीन भारत की पोशाक अचकन को अपनाया है, जिससे पेट भले ही बढ़ता हो, गला बँधता है।

आफिस में तो इस तरह काम की भीड़भाड़ और आफिस से निकलते ही पंजाव और सिन्ध से आये उजड़े शरणार्थियों की भीड़। दिल्ली में तिल धरने को जगह नहीं; नई दिल्ली को बड़े धन से भीड़भाड़ से बचाकर सजी-बजी रखा जाता था, उसका वह बड़प्पन अब न रह गया। काम से भले ही शाम तक उसास मिल जाय, परन्तु शहर में सारे दिन और सारी रात कभी भी उसास या शान्ति नहीं।

इसेलिए शाम होने पर श्रृंधेरे में लुक-छिपकर यहाँ आता हूँ और दम लेने के लिए धास की इस एकान्त सेज पर बैठ जाता हूँ। कुर्ता-उत्तारकर बग्ल में रखते हुए निटेन के पहले प्रधान मंत्री वाल्पोल की तरह मन ही मन कहता हूँ—यह है सरकारी मुलाजिम साहब।

पर कहावत है कि कोली के लड़के को सरग में भी बेगार। सचिवालय के

भीमकाय यंत्र ने मेरी तरह की एक मामूली कील या पुर्जे तक को इस तरह पकड़ रखा है कि इस औंधेरे सन्नाटे मे पड़े रहने पर भी सचिवालय के साउय द्वाक की छाया आँखों के सामने से नहीं हटती।

इस प्राण देने के लिए तैयार पंचिक देह रूपी पिंजड़े से एकदम जैसे सटकर मैदान में एक बड़ी हड्डसन गाड़ी आकर रुकी। उसकी एक भी चत्ती नहीं जल रही थी। दूर पर रोशनी के दो विन्दु अचानक बुझ गये थे, मानो औंधेरे आकाश में दो अञ्जात तारे एकाएक विलीन हो गये हो। उसके बाद क्या हुआ, कौन जाने?

इसी बीच अनजान में यह कार चुपचाप आकर मेरी बगल मे रुक गई। यह कहिये कि किसी तरह दबते-दबते बचा। और जब बच ही गये, तो अपने राम को किसी से झगड़ा करने से क्या मतलब? और यह भी तो हो सकता था कि दूसरा पक्ष मेरी चुनीती को स्वीकार कर आगे आता और कहता कि जो लोग इस प्रकार छिपकर मैदान में लेटे रहते हैं, वे यदि हड्डसन के नीचे आ जायें तो इसमें दाष उनको दबाने वाले का है, या स्वयं उन दबने वालों का?

परन्तु कुछ सोचने का समय नहीं मिला, क्योंकि गाड़ी से एक सुन्दर-सुडौल चरण निकल आया। वाकी देह लता भी बाहर आने को उत्सुक जान पड़ी। मैं भी कौतूहल से उन्मुख होकर प्रतीक्षा करने लगा कि देखें क्या होता है?

चुपचाप किसी अज्ञात दिशा से साइकिल हाथ में लिये एक युवक आ गया। कार के पास साइकिल को लिटाकर दोनों धास की शैया में कार से पीठ लगाकर बैठे।

जिस तृण-शैया पर मैं पड़ा था, उसी तृण-शैया पर वे भी थे। मैं कार के इस पार था और वे उस पार। और चारों ओर छाई हुई थी नई दिल्ली की निर्जन सन्ध्या।

पहले इच्छा हुई कि मैं युवक-युवती के इस एकान्त और निर्भय मिलन की राह से हट जाऊँ। पर तब तक यवनिका उठ चुकी थी, नायक और नायिका मच के बीच में पहुँच चुके थे, प्रेक्षागृह में अभिनय आरम्भ हो चुका था। इस बीच यदि मैं यवनिका गिराकर चल दूँ और वे आहट पा जायें, तो शरमा जायेंगे, और उनकी दुर्लभ सन्ध्या के छन्द मे यति-भग आ जायगा। क्या पता, उसकी पूर्ति फिर कभी हो या न हो? व्याध ने कौच के जोड़े मे से एक का वध किया था, इसलिए जीवन मे उसको प्रतिष्ठा नहीं मिली, उधर भावनाओं के आवेग ने दस्यु रत्नाकर को वाल्मीकि बना दिया।

इसलिए यह कौच का जोड़ा बिना व्याधात के, निःशंक होकर अपने स्वप्न-राज्य में विचरण करे। रहा छिपकर दूसरों की बाते सुनने का पाप, सो मनुष्य से न मालूम कितने पाप हर समय होते रहते हैं। आज इनकी सुविधा के लिए मुझसे थोड़ा पाप हो

भी जायगा, तो क्या ? इससे कोई महाभारत अशुद्ध नहीं हुआ जाता ।

हडसन कार और साइकिल ।

कार की साधारण नम्बर प्लेट की जगह सुखं लाल प्लेट शोभायमान हो रही थी । यह समझना मुश्किल न था कि यह किसी देशी रियासत के राजा की निजी गाड़ी थी । अँधेरे में नाम पढ़ा न जा सका, पर कौतूहल बना रहा ।

और साइकिल ? वहुत हुआ तो इसमें दिल्ली म्युनिसिपैलिटी का गोल टिकट लगा होगा । हो सकता है कि साइकिल वाले युवक ने वह खर्च बचाने के लिए लाइसेन्स ही न लिया हो । कौन जाने ?

दोनों ही जैसे खामोश-से थे ।

इसलिए मैं भी हिला-डुला नहीं ।

धीरे-धीरे युवक ने ही पहले बात छेड़ी । ऐसा लगा जैसे सारी रात के घने

रे के बाद प्रथम ऊपा की हल्की-सी रोशनी महासागर की लहरों पर चमक गई ।

—तो तुम सचमुच दिल्ली छोड़ रही हो ?

एक क्षण चुप रहने के बाद युवती बोली—इसीलिए मैंने तुम्हें आज यहाँ बुलाया था ।

यह तो पूरा नाटक हो रहा था ।

और अब एकबाररी पाँचवें श्रंक का पर्दा उठा है ।

मैंने सोचा, अब चल देना चाहिए । इन अपरिचित युवक-युवतियों की एकान्त बातचीत को मुनने से क्या लाभ ? ‘वाँय मीट्स गर्ल’—यह तो रोज की बात है । इसमें नयापन क्या होगा ?

पर बेचारे जान जायेंगे । यह उनके लिए बड़ी लज्जा की बात होगी । रात कुछ और बीत जाय, अँधेरा और घना हो, तो चुपचाप खिसक जाऊँगा । परन्तु उधर मामले पर भी घना अँधेरा-सा छा रहा था ।

—तुम अब मृझसे सम्पर्क रखने की चेष्टा न करना । जानते तो हो, कितनी बाधाएँ हैं ।

—क्यों ? क्या चिट्ठी भी नहीं लिख सकता ? अब तक तो जरूरत नहीं पड़ी, परन्तु अब से अगर चिट्ठी न लिखूँ, तो तुम्हारी खबर कैसे मिलेगी ? मान लो एक बनावटी नाम से ‘पोस्ट रेस्टांट’ में पत्रों का श्रादान-प्रदान हो । डाकखाने में चिट्ठियाँ पड़ी रहेंगी । मैं वहाँ से उन्हें ले जाया करूँगा ।

—नहीं, वह कोई दिल्ली शहर नहीं है । वहाँ अपना परिचय दिये बिना कौन चिट्ठी ला सकता है ? हम लोग कैसी परदानशीन हैं, क्या नहीं जानते ?

—तो फिर जीऊँगा किसके सहारे ?

—नां, आई न फिर वही बात । तुम मेटीमेट्टन हो रहे हो, और सुम जानते हो कि मुझे भायुकता विनम्रता पनन्द नहीं ।

—जानता हूं, पर मानता नहीं । यह भी तुम्हारा एर पीज है, और मुझ नहीं ।

—पीज ? यह भूल रहे हो कि हम लोगों के जीवन में नगरे को ब्रह्म नहीं । चारों तरफ़ राखी लकड़ियों को देखती है कि वह दस्त में उनकी शादी हो जाती है, और वे परदे के ग्रन्थर चन्दी जाती है । मानो इन दुनिया ने उनका निशान मिट गया हो । पति के आदेश के दिना वे भाई से भी नहीं मिल मस्कती । न यिक्षा ही मिली ग्रांट न मनुष्यत्व का दर्जा ही मिला । एक जीव की तरह पैदा हुई, उनमे उपर ढठने का समय इस जीवन में न मिला । यदि नेहरे पर हानीवृष्टि के ग्राधुनिक फैशन 'पैमलेक' का सिगार देतो, तो जानना कि यह पति देवता की ग्राधुनिकता और उनकी व्यादुरी की जय-पताका है । ठीक उसी प्रकार, जैसे गरीब पर लदे हीरे-जवाहरान उनके धन के परिचायक हैं । वह सिफ़ नेहरे का भेकआप है, उसमें भन की भलक नहीं । सौफिस्टिकेशन सभ्यता का बनावटी स्थ है । उस मजेदार बनावट का स्वाद उसे कभी नहीं मिलता । यहाँ तक की रायाला (राज अन्तःपुर) के ग्रांमुओं में भी कोई ब्रावट नहीं रहती ।

युवक ने आत्मविश्वास प्रदर्शित करते हुए कहा—मैं तुम्हारी आत्मों में दूसरी ही तरह के आँखू ला दूँगा ।

युवती के कण्ठ में दुढ़ व्यंग्य की भावना प्रकाशित हुई । बोली—मैं तुम्हारी दृढ़ता पर चकित हूं । आशा करती हूं कि यह दृढ़ता तुम्हें अंत तक भावुकता में बचायेगी ।

—ओह ! तुम कितनी निष्ठुर हो सकती हो ! लाओ, तुम्हारे हाथों को ज़रा अपने हाथों पर रखें । उससे कुछ तसल्ली होगी, पद्मा, मेरी पद्मा !

वास्तविक रूप से हाथों का सम्पर्क स्थापित हुआ या नहीं, यह ओधेरे में जाना न जा सका । परन्तु कवि रविन्द्र यों ही नहीं कह गये कि डेंगलियों के ज़रिये चारीनाम प्रसव सबसे थेष्ठ है । उसका अर्थ अब अच्छी तरह समझ में आया । मुनने में आया, वह तरणी परिहास के स्वर में कह रही है—क्या अब तुम अपने को धन्य समझ रहे हो ?

—योड़ा-योड़ा समझने लग रहा हूं ।

अद्भुत कृतिम रोपभरे स्वर में वह बोली—समझने लग रहे हो ? तुम्हारी यह गुस्ताखी... यह गुस्ताखी मुझे अच्छी लग रही है ।

युवक जयसूचक हँसी के साथ बोला—मुझे मालूम है ।

पर यह जय नहीं थी, पराजय थी । प्रमाण हाथोहाथ मिल गया ।

—तो मैं तुम्हे पत्र लिखूँगा, पर याद तो रखोगो न, पद्मा ?

—कहाँ, किस पते पर पत्र लिखोगे ? तुम मेरे सम्बन्धे में कितना जानते

हो ? नदी-नाव संयोग को कहाँ तक घसीटना चाहते हो ?

—सुनो, ये दो बातें अलग-अलग हैं। यों तो मैं तुम्हें सम्पूर्ण रूप से जानता हूँ, पर तुम्हारा पता नहीं जानता, लेकिन वह गौण है। तुमको जानता हो असली जानना है।

—हाज इम्पौसीव्हली रोमाण्टिक ! जय, तुमसे किसी बात की श्रौत्ता नहीं।

—तुम्हें विश्वास नहीं पदा ! लेकिन, तुम्हें छूँढ ही लूँगा कहीं न कहीं। मैं इस रहस्य के आवरण को फाड़ डालूँगा। देखूँगा, तुम राजस्थान, सेन्ट्रल इण्डिया या और कहाँ की राजकुमारी हो ? तुमने तो मुझे कुछ ठीक-ठीक जानने ही नहीं दिया। रहस्य पर रहस्य बढ़ाती गई। पर मैं सब खोज निकालूँगा। तुम्हारी कार के नम्बर प्लेट से ही मेरी खोज आरम्भ होगी।

—रहने भी दो जय ! शेखी न बघारो, और मुझे जलाओ मत। कालेज में मेरा नाम सुविधा के लिए पदा लिखाया गया था। मेरा असली नाम और पता होस्टल में पिता जी ने ही नहीं लिखाया। कारण क्या हो सकता है, अनुमान कर लो। और यह कार हमारी ग्रियासत की नहीं है, इसे मैं अपने स्थानीय अभिभावक से ले आई हूँ, जैसा कि मैं अक्सर सन्ध्या समय अकेले ड्राइव करने के लिए लाती हूँ। यह तुम्हें शायद बताने की जरूरत नहीं है कि वहाँ से तुम्हें मेरा पता नहीं मिलेगा। ‘साँरी जय, बैरी साँरी !’ लेकिन यह भी तो देखो कि ‘आई कान्ट हेल्प’।

ऐसा लगा जैसे तरुणी कुछ झुक रही है। तो क्या पदा का हृदय-पद्म विकसित होने जा रहा है ?

नहीं ऐसा होने का नहीं। पदा ने उसे समझा दिया कि प्रेम-ब्रेम पुराने जमाने की धारणाएँ हैं। उसने यह भी कहा कि जब उसकी परदादी की दादियाँ जीह-व्रत ग्रहण कर आग में जल जाती थीं उस युग में भी उस आग से प्रेम की शिखा लहलहा कर जल उठती थी, उसे ऐसा विश्वास नहीं। शायद किसी मसय पर कही भूल से प्रेम पनप उठता हो, जिस तरह इस दिल्ली में वर्षा के समय कही भूल से धास उग आती है, पर दिल्ली का असली रूप उसके ऊसरपने में है। जिस लड़की की शादी दूल्हे के घर की दासियों के साटिफिकेटों और इन्सपेक्शन-रिपोर्टों पर तय होती थी, और वंशान्नीरव के साथ-साथ सोना-चांदी का बजन देखा जाता था, वहाँ वाई जोव (By Jove) प्रेम करने-करने का भ्रमेता कहाँ ? रजवाड़ो के रावालों (अन्तःपुर) में स्त्रियों के लिए दो ही काम हैं—पति के कुल की रक्षा के लिए सन्तान-धारण और पति के सम्मान या स्वेच्छाचार के लिए आत्मत्याग, चाहे यह आत्महत्या के द्वारा किया जाय, या आत्मसम्मान को बालाए ताक रखकर।

भला ऐसे बातावरण में कहीं प्रेम का पौधा पनप सकता है ? परदे की कैद

में पुरुषों की दृष्टि में दूर जो स्त्री लोदियों से घिरी रहती है, उसके गतिहीन, जुगाली करते पशु-से जीवन में जहाँ भूलकर भी मन को मत्त करने वाली हवा या पराये कटाक्ष नहीं आ सकते, वहाँ भला प्रेम कैसा ? शायद इसीलिए रजवाड़ों की मनभूमि में कटीनी भाडियों के सिवा और कुछ उगता ही नहीं । राजपूत ललना के हृदय में भी ऊसर और बजर का ही राज्य है, इसके अलावा वहाँ कुछ हो ही नहीं सकता, होना भी नहीं चाहिए ।

अन्धकारमय आकाश जैसे कुछ गट्ट लाल-आभा-युक्त हो गया । मैं भी जल्द ही राजस्थान की सैर के लिए जाने वाला था । जीवन में पहली बार उस देश को देखने का मीका मिलेगा, जिसका कोता-कोना पुस्तकों के जरिये वहूत पहले ही मैं छान चका था । आज की यह अभिज्ञता उम यात्रा के लिए बढ़ी मुन्द्र भूमिका रही । सैकड़ों अज्ञात और अनिदिष्ट आविष्कारों की आशा मन में जाग पड़ी ।

—पर यह तो बताओ कि तुम मुझे प्यार करती हो या नहीं ?—उस जय नामक अज्ञात और साधारण कुल के युवक ने पूछा । जयकुमार या जयचन्द या रामजय, ऐसा ही कोई नाम माँ या दादी ने छठों की रात रेंड़ी के तेल के दीये के धुंधले प्रकाश में उसकी आँखों में काजन लगाते समय रखा होगा । तारों की टिमटिमाती रोशनी के मायालोक में वही जय हो गया है । जैसे परियों की कहानी में मैंटकी की दुम भड़कर गिर पड़ी हो और उससे सुन्दर राजकुमार निकल आया हो, और अब उसके पास आ गई है वडे राजपूत धराने की तरुणी, जिसका छद्म नाम है पद्मा । अज्ञात कुल-देश की सारी बाधाएँ नीले आकाश के चौदोवे के नीचे लुप्त हो गई हैं ।

केवल जय और पद्मा । मानवता के रंगमंच पर भानो इतना ही यथेष्ट था ।

पर कमबुद्धि जय के लिए इतना यथेष्ट नहीं मालूम हो रहा था । वह चाहता था परिज्ञय और प्रणय, और बाद को शायद परिणय भी ।

फिर उसने विमुग्ध स्वर में कहा—पर तुम तो मुझसे सचमुच प्यार करती थी । अब अपने घर जा रही हो, इसीलिए परिचय दिये बिना ही चली जाना चाहती हो । कहीं इसीलिए तो प्रेम की बात अस्वीकार नहीं कर रही हो ?

—It was a great full Jay darling (वह खासा मज्जाक था, जय प्यारे) !

—Don't try to kid me now (अब तुम मुझे बनाओ न मत) —चोट खाये हुए स्वर में जय ने अपने साथ इस तरह खिलबाड़ करने से मना किया और किर कहा—तुम मुझसे प्रेम करती थी, और अब भी करती हो ।

—तुम वडे अच्छे हो जय—वह बोली । यह अनुमान करना कठिन नहीं था कि कोतुक और व्यग्य से पद्मा के पश्चलोचन खिल गये ।

वेचारा ग्रबोध जय ! सहज सरल जय !

वह फिर कह उठा—तुमने तो कुछ भी नहीं कहा । क्या तुम मुझसे प्रेम नहीं करती थी ?

योड़ी देर सन्नाटा रहा । फिर मन ही मन शायद वातचीत हुई । साँसें कुछ देर जैसे रुकी रही ।

—प्रेम ! वह तो बहुत बड़ी वात हुई, जय ! देखो, तुम सिर नीचा किये हो और तुम्हारे घाल सामने लटक गये हैं, लगता हैं जैसे कवि-प्रतिभा की अग्नि-शिखा लपलपकर जलती नीचे को चली आ रही हो । हाऊँ फ़नी !

अग्नि-शिखाएँ शायद मन की आग से गरम होकर फिर अपनी जगह पर लौट आयी, पर जय गुमसुम बना रहा ।

पद्मा ने निरासवत कण्ठ से कहा—समझ गई, समझ गई कि ग्रव मुझे कवीन्द्र रवीन्द्र को उस बंगला गान को गुनगुनाकर अपनी वात कहनी पड़ेगी । तुम्हारे किसी मिथ ने उसका हिन्दी अनुवाद किया था न ? धूर्जटीराम शायद उसका नाम है । उसे कहना कि वह उस गाने को अपने धराने के लिए रख लोड़े । आजकल की किसी आधुनिका को मुनाने से कुछ लाभ न होगा ।

ना भुलाकै रूप से
जीतूं तुम्हें मैं प्रेम से;
हृदय-प्लट, ना हाथ से
पर स्वौलूं संगीत से ।

गोग ! हाऊँ इम्पीसिवल ! क्या इस गीत को किसी के कान में गुनगुनाकर सुनाना पद्धता है ?

जय चूप रहा । शायद उसके अभिमान को ठेरा लगी थी, या उसने यिन्तायत परना प्रजूल समझा । वह जो चूप हो गया, सो चूप ही बना रहा ।

नीरवता को भंग करती हुई पद्मा ही फिर बोली—जानती हूँ कि मुझसे भेट न होने के कारण तुम्हारे मन को कष्ट होगा, पर वह तो ऐसी वात ॥ जैसे छिगूनी ने एक हीरे की छोंगठी गिर पड़े । इसका पता अनामिका को भी नहीं लगेगा ॥

—चूप भी रहो पश्चा ! तुम बड़ी ब्रूटल हो । जिस बात की अनमूलि नुम्हें नहीं हैं, उसके प्रति इस प्रकार द्वंद्य करना उनित नहीं । जिसका तम्हें जान नहीं, उसे तुम निन्दा करके नमाया नहीं कर सकती ।

शायद पद्मा तब भी बेहुरे पर द्वंद्य का भाव दगड़े थेंदी रही । मारी वात शायद उसे इसी गुरुत्त त्रैमी कि उत्तर देने से इम्पारत ही नहीं जान पाई ।

जय ने ही फिर पढ़ा—ओ मुनो, यह भी गुम्हार एक पोऽर है । गश्चामार दे-

विलास और होस्टल की पांचिंग ने तुम्हारे मन पर भी पांचिंग कर दी है। इसीलिए तुम अपने तुम अपने मन की व्यथा को छेकने के लिए यह बात कहती हो। इसीलिए तुम अपने प्रेम-स्वप्न को तमाज़ा या फन कहकर हँसी में उड़ा देना चाहती हो।

—मुझमें न तो कभी प्रेम ही था, और न कभी स्वप्न ही था। अच्छा लगता था, मज़ा आता था, वस। जैसे केवड़े का शर्वंत अच्छा लगता है। कुछ गुदगुदी आती है, कुछ देर के लिए सहर छा जाता है। इसमें अधिक कुछ नहीं। जिन मिला हुआ गिम्लेट पीज़, जिससे घर जाने पर नशे में सिर भन्नाये और मैं बेमुख पड़ी रहौं, ऐसी में नहीं।

—तो फिर क्यों तुमने मेरे साथ खिलवाड़ किया? क्यों मुझे इस नये की आदत डाली? जय के स्वर में डाँट बताने वाला वेचैनी का लहज़ा था।

—यदि यह पूछते हों कि क्यों, तो मैं इसका कारण बताती हूँ। कारण यह है कि मुझे मज़ा आता था। और सुनोगं? इच्छा हुई थी। इससे बड़ा और क्या कारण चाहते हो? मैंने यह चाहा था कि अपने देश की कुल-रीति के विरुद्ध विद्रोह करें। इससे भी अधिक कहूँ?

जय शायद कान मेरे ऊँगली डालकर या ग्रपने मुँह पर निपेशात्मक ऊँगली लगाकर बैठा था, उसका नीतिवान मन सफुचा गया था, इसमें सन्देह नहीं। उसने बहुत धीरे से कहा, यह सब तुमने बिना प्रेम किये ही किया?

असहिष्णु होकर पथा बोल उठी—ओ हो! तुम ख्वामख्वाह इसमें प्रेम को क्यों ला रहे हो, समझ नहीं पा रही।

—बात यह है कि मैं वेवकूफ़ हूँ, अहमक़ हूँ। कहकर वह चुप हो गया।

चारों तरफ इतना सन्नाटा छा गया था कि कार रो घड़ी का टिक-टिक सुनाई पड़ रहा था। मेरी अपनी साँस भी सुनाई पड़ रही थी। लगता था कि यदि युवक के भीतर कन्दन हिलोरे लेने लगे, तो वह भी सुनाई पड़ जायगा और शायद युवती के मन को स्पर्श करेगा।

पथा ने मृदु सहानुभूति के स्वर में पूछा—क्या अभी तक प्रेम को लेकर सिर खपा रहे हो?

योड़ी देर में युवक ने कहा—नहीं, मैं सिर्फ़ सोच रहा हूँ कि तुम चली जा रही हो, तुमने तो फिर से भेट होने का रास्ता भी नहीं रखा।

—इसके लिए तुम अफसोस कर सकते हों, पर मैं कहती हूँ कि ऐसा करना ठीक न होगा। गत कुछ महीनों के दौरान मे हम बिलकुल रहस्यमय रूप में एक दूसरे से मिले, वथा यह यथेष्ट नहीं है? तुम रोमाण्टिक टाइप के आदमी हो। जितना परिचय अब तक हुआ है उससे अधिक परिचय होने पर तुम्हें कुछ लाभ न होगा।

कहते-कहते पद्मा के कंठ में फिर व्यंग्य ध्वनित हो उठा, बोली—एक सुनहला सपना था न ? सन्ध्या का अस्त राग भी कह सकते हो । अब तो यह अच्छा-खासा काव्य हो गया, क्यों ? लेकिन बलिहारी जाऊँ, तुम अभी यह न कह बैठना कि अरावली पर्वतमाला के पीछे तुम्हारे जीवन का सूर्य अस्त हो रहा है । गुड वाई कह दो, पर सनसेट न कहो । दुनिया में ऐसी भावुकता के लिए स्थान नहीं ।

जय ने बहुत धीरे से प्रश्न किया—ओ रिवोआ (फिर मिलना) भी नहीं ?

पद्मा असहिष्णु हो उठी, बोली—फिर वही लिवलिव प्रेम की बात शुरू कर दी !

—मैं महज एक आदमी हूँ । मैं तुमको भी यह याद दिलाना चाहता हूँ कि तुम भी एक स्त्री हो—कहकर उसने अन्तिम प्रतिवाद किया ।

—तो रवीन्द्र का अनुवाद एक बार फिर सुनाओ । तुम्हारे पास कविताओं की कापी तो है । उसमें तुमने अवश्य लिखा होगा—‘मनुष्य ने अपने अन्तस्तल के सौन्दर्य से तुम्हारा निर्माण किया है ।’ यदि तुम्हे इस प्रकार की कविताएँ दुहराने से आनन्द मिलता है, तो वेशक तुम उसकी चृस्तियाँ लो । पर मैं बिना कहे नहीं रह सकती कि कुछ आधुनिक होने की चेष्टा करो । अगर वेवकूफी करनी है, तो आधुनिक ढंग से करो ।

—याने ?

—याने यह कि जो बात हो, वह युग के अनुसार हो । पहले के युग में हमारे ही कुल में परदादी के विवाह के समय दूल्हा बीर के बाने में हाथी या घोड़े पर चढ़कर तलवार लटकाकर फ़ौज-फाटा लेकर गया होगा । दहेज में मिले हीरे-जवाहरात, सोने-चाँदी के गहने रास्ते में लूटे जा सकते थे । यहाँ तक कि दुल्हन के साथ मैं जो कनीजें होती थी, वे भी लुट सकती थीं । पर युग बदला, और हमारी माँ के साथ व्याह करने के लिए जब पिता जी गये, तो ट्रेन में चढ़कर बिना किसी भय के गये । स्टेशन पर कार तैयार थी । हाँ, जब वह शादी करने के लिए पहुँचे, तो घोड़े से उतरे । और यदि मैं शादी करूँ, तो अदालत में नोटिस टाँगी होगी । यही राजपूतों के विवाह में सुपारी या नारियल भेजने के स्थान पर होगा । वहाँ मैं हवाई जहाज से पहुँचूँगा, और सम्भव है कि मैं तुम्हे ही बेस्ट मैन होने के लिए बुलाऊँ । तुम यह काम कर सकोगे ?

भीने परिहास के कारण कण्ठ जलतरंग बाजे की तरह झंकत हो उठा । लगा जैसे उसकी प्रतिध्वनि तारे-तारे में हो रही है । आकाश मानो आशा टूट जाने से नीले रंग का बना रहा, पर इससे चाँद का क्या बनता-बिगड़ता था ?

नहीं, अब और बैठा नहीं जा सकता । नवम्बर के प्रारम्भ की दिल्ली की ठंडक धीरे-धीरे रात में उतर रही थी, अब अधिक रुका नहीं जा सकता । नये राजस्थान की

एक नवीना आवृत्तिका के मन को मैं भलीभांति जान चुका था। मानो मैं उसके नर्म दिल में पैठकर उसकी गहराई की शाह ले चुका था। कुछ सप्ताहों के बाद ही ड्यु अनुभूति को कस्टी पर कसने वाला था।

जिस समय मैं बड़ी सावधानी से उठकर चल रहा था, उस समय ये वाक्य सुनाइ पड़े—पर यह भी मैं कहे देती हूँ कि मेरे उम मोनोप्लेन में मुदिकल ने गायद एक की जगह हो, उसमे तुम्हारी भावुकता की कथड़ियो या काटेज पियानो के लिए जगह हरिंज न होगी।

हवाई यात्रा

तड़के के धुंधलके में धरती की भमता छोड़ उड़ा जा रहा हूँ। आँखों में नीद भरे अलसाये एक-एक कर डक्कीस यात्री ओवरकोट ओढ़े या हाथ में बेग लटकाये टाटा कम्पनी के हवाई जहाज में दाखिल हुए। दरवाजे के सामने नाम पुकारे जा रहे थे, और उसका जवाब देते हुए यात्री भीतर आते-जाते थे। सब की आँखें कड़वा रही थीं।

पर मैंने अपने कान खड़े रखे।

—हिज़् हाइनेस दि महाराजा आँव……

—रावत साहब आँव……

—हर हाइनेस आँव

—राजा आकारनाथ जा……

इत्यादि। जिनके नाम अखदारों में देखे थे, उनके नाम मैं नहीं ल रहा हूँ।

इन वड़े-वड़े नामों के बीच अचानक पुकारे जाने पर अपने अति परिचित साधारण मध्यवित्त नाम को पहचानने में कुछ दुविधा हुई। मैंने जैसे अपने आपसे पूछा—क्या यह मैं ही हूँ?

इतने सब हिज़् हाइनेस और हर हाइनेसों की हीरा, मोती, पन्ना-खचित उपस्थिति के बीच मेरी हालत ऐसी हो रही थी, जैसे हँसों में बगुला।

धुंधलके में मैंने चारों तरफ नजर ढाइँ। नहीं, उनमें से कोई हीरा-ज्वाहरात और जरी की दरवारी पोशाक में नहीं आये थे। मेरी ही तरह साधारण पोशाक मे 'लम्बशाट पटावृत्त' थे। मैंने प्राचीन संस्कृत श्लोक को मन ही मन शुद्ध करते हुए कहा—लम्बसूट पटावृत्त।

चाहे वह सूट लन्दन के बाण्ड स्ट्रीट या दिल्ली की फेल्प्स कम्पनी का बना हुआ क्यों न हो। उबतू श्लोक का दूसरा चरण भी मुझे याद आया, पर सुधीजनों को उसे याद दिलाने की जरूरत नहीं।

अरावली पर्वतमाला की एक अन्तिम रेखा दिल्ली के हवाई अड्डे तक टेढ़े-मेढ़े ढंग से फैली हुई है। चारों तरफ पहाड़ी ऊसर का राज्य है। जीवन में यह पहली बार हवाई जहाज में चढ़ने का मौका मिला था। इसीलिए मैंने चंचलता के साथ

नीचे की ओर एक सतृप्ति दृष्टि डाली। मिट्टी की ममता मन को नीचे की ओर खींच रही थी। पर मिट्टी कहाँ थी? चारों तरफ़ ऊसर पठार या, जिससे शानद तो मिलता है, पर जिसमें अपनी तरफ़ आकर्षित करने की शक्ति नहीं; जो रससिवत नहीं, पर रुक्ष और रिक्त है।

ग्रीर मिट्टी की ममता भी कहाँ रही? स्वतन्त्रता-आप्ति के बाद इन कुछ महीनों के अन्दर मनुष्य ने देश के नाम पर, घर्म के नाम पर, अमानुषिक अत्याचार किये हैं। मिट्टी की ममता छोड़कर लोग गिरोह बनाकर, और ऐसा, नहीं कर पाये तो अकेले, घर छोड़कर, प्रियजनों को छोड़कर, वाप-दादों की जगह छोड़कर, भाग खड़े हुए। कभी-कभी इस प्रकार सिर पर पाँव रखकर भागने पर भी जान नहीं बची। दानव के सामने मानवता टिक न सकी। मृत्यु आई हत्या का रूप धरकर। प्रलय का दृश्य उपस्थित होगया।

हजारों स्त्री, पुरुष, बच्चे पंजाब में अपना घर-द्वार सब छोड़कर, जड़ से उखड़े पेड़ की भाँत आकर दिल्ली के रेलवे स्टेशन पर जमा हुए हैं। दिल्ली शहर के पानी ही पंजाब का गुड़गाँव जिला पड़ता है। वहाँ से दिल्ली आने वाली पीच की सड़क पर अब तक अमेरिकन फ़ौजी ट्रक सीना फुलाकर दौड़ा करते थे। अब उसी सड़क पर आंधी से उड़े हुए पतझड़े के पत्तों की तरह शरणार्थियों की भीड़—जिससे जो कुछ बन पड़ा, विस्तरा, बक्स या कम्बल लेकर—किसी तरह पैदल दिल्ली भागती दिखाई दे रही है। वे लोग हजूम बनाकर आ रहे हैं, और जब पैर थक जाते हैं, तो कहीं रास्ते के किनारे विश्राम करके चलते रहते हैं।

जिस रास्ते से मैं कई बार पालम एयरोड्रोम पर मिनों को धूरोप और अमेरिकायात्रा के समय हँसमुख होकर विदाई देने गया था, यह वही रास्ता है। जब वे सुन्दर-सुसज्जित प्लेन के अन्दर विमान की सीढ़ी चढ़कर दाखिल होते थे, तो मैं उन्हें रेशमी रूमाल उड़ाकर विदाई देता था। आजकल देख रहा हूँ कि उसी हवाई अड्डे पर वरावर अनगिनत यात्री उतर रहे हैं, और वे इस प्रकार से जहाज के अन्दर ठूँसे गये हैं, जैसे छोटे-से टिन में विलायती सार्डिन मछली भरी जाती है। उनके हाथों में फटे कपड़ों की पोटलियाँ हैं, और तन पर अन्तिम सम्बल चहर, साड़ी या सलवार का टुकड़ा। उनकी दुर्दशा ने शौकिया रेशमी रूमाल हिलाने के चिन्ह को ढैंक दिया है।

हिंसा के बदले हिंसा का नियम दुनिया में वहुत पहले से चला आ रहा है। यहाँ भी उसमें व्यतिक्रम नहीं हुआ। इसलिए राजस्थान से दिल्ली के बीच वहुत-से स्थानों पर लोग फैल गये हैं। दिल्ली के दस मील के भीतर, यहाँ तक कि दिल्ली में भी, छोटे-छोटे संग्राम हो चुके हैं। देहाती इलाकों में मेव नामक मुसलमान राजपूतों और हिन्दू जाटों में लडाइयाँ केवल तलबार और वर्छियों से नहीं, बन्दूकों, रिवाल्वरों

और स्टेनगनों से हो चुकी है ।

इस ध्वंसकाण्ड में भारत सरकार आसानी से रुकावट न ढाल सके, इसलिए लोगों ने रेल की पटरियाँ भी उखाड़ डाली थीं । इस समय राजपूताना जाने की लाइन बन्द थी ।

इसलिए मुझे अभी-अभी चालू हुई हवाई जहाज की लाइन से राजस्थान जाना पड़ रहा है । विपत्ति में पढ़े हुए लोगों का उद्धार करने के लिए भारत सरकार ने देशी और विदेशी जितने भी हवाई जहाज मिल सकते थे, उन्हे किराये पर लेकर पाकिस्तान से लोगों के उद्धार का काम आरम्भ किया था । इसलिए राजस्थान के राजा इस समय सिर्फ अपने ही लिए हवाई जहाज सुरक्षित कर अपने घर नहीं लौट पा रहे थे । तभी उन्हे टोटा कम्पनी के साधारण हवाई जहाज के यात्री के रूप में जाना पड़ रहा था । मैं भी जा रहा था । हम सब पहले जयपुर पहुँच रहे थे ।

बहुत नीचे अरावली पर्वत की ऊँची श्रेणियों से मन को हटाकर मैंने विमान की मणि-मजूपा में अपने मन को केन्द्रित किया । इतने बड़े-बड़े हिज़ हाइनेस राव-राजा, यहाँ तक कि एक जीती-जागती हर हाइनेस जहाँ मौजूद थी, उसे मणि-मजूपा नहीं तो क्या कहेंगे? और मजे की बात यह थी कि वे सब मेरी ही तरह साधारण व्यक्ति के रूप में बैठे हुए थे । इनके अपने इलाकों में इनकी आँख के जरा-से इशारे पर प्रलय उपस्थित हो जाते हैं । इतने बड़े हैं ये लोग !

चारों तरफ—नहीं ठीक चारों तरफ नहीं, क्योंकि मैं स्वयं खिड़की के पास बैठा था—राजाओं की भीड़ । सब राजस्थान जा रहे थे, इसलिए स्वभावतः राजपूताना की वीरता की कहानी—वीर की भाँति मृत्यु-वरण की कहानियाँ, एक के बाद एक मेरे मन में सिनेमा के चित्रों की भाँति आने लगीं ।

दिल्ली के आसपास इतने दिन हथेली पर जान रखकर भागते मानवों की जीती जागती अरथी देखी थी । उसका चित्र मानस-पटल से पुँछ गया ।

मेरे चारों ओर बीते युग के उन वीरों की भीड़ लग गयी, जिनके चिर प्रकाश-मान चन्द्र-सूर्य से उत्पन्न वंशों की कुछ टिमटिमाती मोमबत्तियाँ यहाँ मेरे साथ यात्रा कर रही थीं । इन मोमबत्तियों को भी फूँक मारकर बुझा देने की प्रचण्ड माँग उनकी प्रजा कर रही है ।

तीस साल पहले मांटग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट में लिखा गया था कि “आशाएँ और आकंक्षाएँ सड़क के उस पार की चिनगारी की तरह सरहद को पार करके आ सकती है ।” भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद की घटनाएँ उसे सत्य प्रमाणित कर रही हैं । लोकतन्त्र तथा भारत से मिलकर एक होने की जो लहर देशी नरेशों के सिंहासनों से टकरा रही है, उसे यदि मान लिया गया तो वह सिंहासनों को ही वहा ले जायगी ।

१९४७ की २५ जुलाई को अर्थात् स्वतन्त्रता-प्राप्ति के ठीक २० दिन पहले ब्रिटिश सम्राट् के अन्तिम प्रतिनिधि लॉड भारण्टवेटन ने दिल्ली में नरेन्द्र मण्डल (चेम्बर आंव प्रिसेज) के समध यह घोषणा की कि भारत की स्वाधीनता-प्राप्ति के साथ-साथ ब्रिटिश सम्राट् का देशी रियासतों से कोई सम्बन्ध न रहेगा। वे कानून के अनुसार स्वतन्त्र हो जायेंगी। पर साथ ही यह भी कहा गया कि जहाँ तक देश की रक्षा, यातायात आर विदेशों से सम्बन्ध का प्रश्न है, विवेकशील राजाओं का कर्तव्य है कि वे इनके सम्बन्ध में भारत सरकार की आधीनता मान ले।

अधिकाश इसके लिए भी तैयार न थे। फिर भी उन्नीसवें दिन प्रायः सबने मिलकर किस प्रकार अन्तर्भुक्त होने के कागजात पर दस्तखत कर दिये, यह मैंने दिल्ली के अपने दरवे में बैठेंचैठे देखा। देखा और भविष्य के रूप पर विचार किया।

विचार करने का यथेष्ट कारण था।

लोगों ने यह ठीक ही देखा था कि इच्छा न रहने पर भी बहुत से राजाओं ने मुँह विचकार, जैसे कोई कड़वी दवा पी रहे हों, भारत सरकार से मिलने के इन कागजात पर १४ अगस्त को दस्तखत किये थे। इनमें से बहुतेरों ने शायद इस परिवर्तन का महत्व नहीं समझा था। इतनी जल्दी में सब कुछ हुआ कि बहुतों को शायद सोचने का समय भी नहीं मिला। बहुतों के मन में दुविधा और कुछ मानसिक रिक्वेशन थी।

एक दिन की बात है कि एक छोटे से राजा अपनी दरवारी पोशाक की टीमटाम से लैस होकर तलवार भनभनाकर दिल्ली के सविचालय के दोमंजिल पर चढ़ आये। उन्होंने बड़ी गम्भीरता के साथ कहा कि ब्रिटिश के अधीन राजा होने के नाते वे स्वतन्त्र भारत के कागजात पर दस्तखत नहीं करना चाहते, क्योंकि उनका वैसा 'माहात्म्य' न होगा। इसलिए जब ब्रिटिश साम्राज्य का यहाँ से खेमा उठेगा, और वे स्वतन्त्र हो जायेंगे, तभी वे अपनी स्वतन्त्र कलम से उन कागजात पर दस्तखत करेंगे। यह तर्क देकर उन्होंने कहा कि आज की हस्ताक्षर करने की कारंवाई को तब तक के लिए स्थगित कर दिया जाय।

चारों तरफ के भीने परिहास की गूँज में उनका यह गम्भीर प्रस्ताव डूब गया। उन्हें यह बताया गया कि योर हाइनेस, आप हाई रहते-रहते इस कार्य को सम्पन्न कर लें, क्योंकि कल सबेरे जब आप उन्नति करें योर मैजेस्टी हो जायेंगे, तब इस प्रकार का अनुरोध करने की धृप्तता हम कैसे करेंगे?

लाचारी में आंदिर हीरों की गँगूठियों से सुसज्जित हाथ, म्यानं में पड़ी तलवार की मठ छोड़, मामूली कलम पर आकर टिका।

यह तो सब हुआ, पर उनके दिल पर जो धाव लगा था क्या उस पर मरहम-



एक राजपूत तरुणी ।

पट्टी की गई ?

लेकिन दूसरा कोई उपाय भी तो न था ।

जर्मनी के सब छोटे-छोटे राज्यों को एक कर जर्मन साम्राज्य की स्थापना करने वाले विश्वकर्मा विस्मार्क का नाम इन राजाओं ने अवश्य सुना होगा । एक बार यह सुनने पर कि अंग्रेज सेना जर्मनी पर आत्रमण कर सकती है, उन्होंने कहा— क्या ! ऐसी गुस्ताखी ? मैं पुलिस भेजकर अभी गिरफ्तार कराये लेता हूँ ।

राजा लोग यह भी जानते थे कि नवीन भारत के विस्मार्क सरदार पटेल भी पुलिस भेजकर इन राजाओं की रियासतों पर कब्जा कर सकते थे । यह कैसे ? ऐसे कि देशी रियासतों की प्रजा यह नहीं भूली कि नेताजी सुभाष के नेतृत्व में १६३८ के हरिपुरा अधिवेशन में कांग्रेस की तरफ से यह धोपणा की गई थी कि जो स्वराज्य होगा, वह सारे भारत के लिए होगा, तथा देशी रियासतें भी उस स्वराज्य की पूर्ण हिस्सेदार होंगी । जब वही स्वराज्य आ गया, तो भारतीय रियासतों की प्रजा उससे वंचित कैसे की जा सकती थी ? और वाकी भारत के लोग उन्हे वंचित होने ही कैसे दे सकते थे ?

फिर भी १५ अगस्त को परिस्थिति यह थी कि हैदरावाद, काश्मीर और जूनागढ़ भारत में मिले ।

प्रश्न यह है कि अब ये राजागण क्या करेंगे ? क्या वे इस मिलन को मान लेंगे और अपने आपको मिटाकर हमारे साथ मिल जायेंगे ?

क्या नवीन वृहत्तर भारत की सृष्टि होगी ?

जिस देश में छोटी-छोटी जमीदारियों जैसी जगहों में वैठे सुलतान नित्य अपने भाटों और भुसाहवों से सुना करते थे कि वे आसमुद्र-हिमाचल पृथ्वी के अधीश्वर हैं, यहाँ तक कि पाताल के वासुकि उनकी सेना के पदचाप से कांपते हैं, और उनके बाहुबल के कारण आकाश में सूर्यग्रहण हुआ करता है, वहाँ उन सब कूप-मण्डों और थोड़े में सन्तुष्ट रहने वाले लोगों के लिए क्या यह सम्भव था कि वे अपने देश में विराट और महत् का स्वर्ण देखते ? क्या उनके लिए सम्भव था कि सब के साथ एक होकर, अनन्य हृदय होकर, काश्मीर से कन्याकुमारी और पश्चिमी मरुभूमि से पूर्व के पहाड़ी इलाकों तक को एक देखते ? क्या अशोकचक्रयुक्त तिरंगे के नीचे काश्मीरी पण्डित और मलयांयी मेनन, जोधपुरी राठोर और मणिपुरी नागा एक साथ खड़े हो सकते हैं ? क्या ये सब एकप्राणी और एकमन हौंकर शरीर का रक्त और हृदय की भक्ति अर्पित कर सकते हैं ? क्या ये सब मिलकर 'जन गण मन अधिनायक' गायेंगे ? क्या एकत्र होकर 'बन्देमातरम्' से आकाश गुंजरित करेंगे ? क्या मेरी राजस्थान-यात्रा सफल होगी ? क्या राजस्थान के अतीत गौरव

का गान सुनते-सुनते भावी वृहत्तर भारत के नवीन गीरव के प्रथम श्रंकुर को मैं सिर उठाते देख सकूँगा ?

क्या जो लोग बीरता में इतने महान् थ, वे आत्मोत्सर्ग में भी महान् हो सकेंगे ?

इतने दिनों से सुनता आ रहा था कि रियासती भारत ब्रिटिश भारत से बिलकुल भिन्न है, और राजा लोग भारत से मिलना नहीं चाहते। स्वतन्त्रता-आन्दोलन के साथ उनका एकमात्र सम्बन्ध दमन का था। उनका यह दावा था कि वहाँ के लोग भी हमसे अलग रहना चाहते हैं, क्योंकि हम जिस तरह लगान देते हैं, जिस प्रकार के जटिल प्रशासन के नीचे पिसते हैं, आयकर के दोहन को सहन करते हैं, उस तरह करने के लिए वे तैयार नहीं हैं।

प्रायः किसी भी रियासत में आयकर की बला थी। स्मरण हो आया कि कोई बीस साल पहले अमेरिका से आकर मिस मेयो ने अपनी किताब में भारत की इतनी निन्दा की कि गांधी जी ने उस पुस्तक को नाली-निरीक्षक की रिपोर्ट कहा था। उस पुस्तक में मेयो ने यह लिखा था कि किसी महाराजा साहब ने उससे कहा था कि अंग्रेजों के चले जाते ही उस बीर पुरुष के सैनिक ऐसी दौड़ लगायेंगे कि सुदूर बंगाल तक न तो कोई कुँवारी लड़की बचेगी, और न किसी के पास एक रुपया। किसने झूठ कहा था मिस मेयो ने या उस महाराजा ने, इसके प्रमाणित होने का समय आ गया था।

१६४७ के पहले के ब्रिटिश भारत और भारतीय भारत की जनता जागकर एक साथ इस प्रश्न के उत्तर की प्रतीक्षा कर रही थी। वह निश्चित रूप से जानती थी कि कोई भी राजा इस नवीन भारत में खड़ा होकर ऐसी बात, कहना तो दरकिनार रहा, सोच भी नहीं सकता। यदि राजाओं में किसी ने अपने यहाँ के जनमत की उपेक्षा कर अपने को स्वतन्त्र घोषित करने की या ब्रिटिश छत्रछाया में आश्रय पाने की कोशिश की, तो जनता फौरन उस राजवंश को बिना युद्ध के ही समाप्त कर देगी, चाहे वह राजवंश कितना ही प्राचीन बयो न हो। हमारे राज्य सचिवालय के मन्त्री सरदार पटेल ज्ञानी वहाँ, अदना से अदना भारतीय भी यही समझता था।

इन राजाओं की जरूर से लड़े, तो कौन लड़े ?

प्रजा ? नहीं, वह तो इस समय वही सोच रही थी जो दूसरे भारतीय सोचते थे।

रहे सैनिक, सो उनके मन में भी बाहर की लहरें आकर टकरायी थीं। इसके अलावा वे यह भी जानते थे कि भारतीय सैनिकों को अंग्रेजों ने खुद शिक्षा दी है। उनके सामने रियासती सैनिक ऐसे उड़ जायेंगे, जैसे गांधी के सामने सूखे पत्ते।

और राजा ? वे भी नहीं, क्योंकि ब्रिटिश युग में भी दिल्ली ने उन्हें कभी

एक नहीं होने दिया। अंगेजों के हाथ से सार्वभौम सत्ता भारतीयों के हाथ में आयी है, इसलिए कोई भी अन्तर्राष्ट्रीय अदालत या संयुक्त राष्ट्र उनकी बातों को सुनने के लिए तैयार नहीं।

वे जानते थे कि उनकी प्रजा आज राजाओं के दैवी श्रधिकार पर विश्वास नहीं करती, और न वह इस बात पर ही मायापञ्ची करती है कि राजा साहब चन्द्र वंश के हैं या सूर्य वंश के, अथवा हर वंश के। इसलिए राजाओं को अपना भाग्य-निर्णय स्वयं करना होगा। परन्तु अब भी वे कुछ निश्चय नहीं कर सके।

हमारे सहयात्रियों में से हरएक के चेहरे पर एक प्रश्न-चिह्न-सा था। यूनान की पौराणिक गाथाओं में स्ट्रिक्स की कहानी है। उसका चेहरा स्त्री का है, और शरीर सिहनी का। उसके चेहरे पर चिरकालीन प्रश्न है, जिसका उत्तर कोई नहीं दे पाता। इन राजाओं के चेहरों पर भी वैसा ही प्रश्न था, उसका उत्तर नदारद।

हिज़ हाइनेस आव…… ..

तड़के का धुंधला प्रकाश उस चेहरे पर पड़कर भूत और वर्तमान को न मालूम कैसे मिला-सा रहा था। उसमें से उसके वंश का एक पूर्वज जैसे प्रकट हो गया। यह महाशय राठौर वंश की किसी कनिष्ठ शाखा के कुल-प्रदीप थे। डेढ़ सौ वर्ष पहले इन राठौरों ने मालपुरा की किसी लड़ाई में बहुत रोमांचकारी वीरता दिखाई थी। उस युद्ध की गाथा राजस्थान के इतिहास में स्वराक्षिरों में लिखी रहेगी। इनके शत्रुपक्ष के साथ कैप्टेन जेम्स स्किनर थे। उन्होंने लिखा है—दूर से राठौरों का आगे बढ़ते हुए देखा गया। उनकी विशाल और पंक्तिवद्ध सेना का पदकाष्ठ, युद्ध के गर्जन को दबाकर, वज्जन-निनाद की तरह ध्वनित हो रहा था। पहले वे धीर गति से आ रहे थे, पर ज्यों-ज्यों वे आगे बढ़ते गये, त्यों-त्यों उनकी गति बढ़ती गई। हमारे ब्रिगेड की सुसज्जित तोपों ने उनकी भीड़ पर गोलियाँ चलाकर एक साथ सी-सी आदमियों को मौत के घाट उतार दिया, फिर भी उनकी अग्रणीति वरावर जारी रही। हमारी तोपों से धराशायी, अपने लोगों की १,५०० लाशों के ऊपर से वे आधी की तरह आगे बढ़े। बन्दूकों की भयंकर गोलियाँ, यहाँ तक कि संगीनों की मार से वे ज़रा भी नहीं रुके। बाढ़ के जल-न्दोत की तरह वे वरावर हम पर हमला करते रहे, और उन्होंने हमारे ब्रिगेड को समाप्त कर दिया। थोड़ी ही देर में ब्रिगेड का नामोनिशान तक नहीं रह गया।

युद्ध में उन्होंने इतना बड़ा आत्मोत्सर्ग किया। क्या शान्ति में भी वैसा त्याग कर सकेंगे?

या फिर युद्ध के रास्ते से शान्ति, संहार के रास्ते से एका लाना होगा?—

अब तक ससार के इतिहास में प्रत्येक युग में जिसका अभिनय होता आया है ।

पर हम लोग तो नवीन भारत के नये इतिहास के सामने खड़े थे, भारत के भाग्य-विधाता के जयगान के लिए हमारे कण्ठ और करण उत्सुक और उन्मुख थे।

इसलिए मैंने फिर एक बार ध्यान से अपने सहयात्रियों को देखा ।

हिज हाइनेस सर आवृत्ति

मैंने अच्छी तरह सिर से पैर तक इस उच्चवशीय को देखा । यह जिस राजपूत गोत्र के है, उसी गोत्र के एक राजा की मजेदार कहानी चालीस साल पहले लेडी मिटो ने अपने रोजनामचे में लिखी है । वह राजा साहब अपनी निजी 'हवशी' अग्रे जी मे ड्रिटिश उच्चतम अधिकारियों के सामने मन की बात रखकर उनके मनो-विनोद का कारण बनते थे । भोजन के बाद तफरीह के तौर पर उनकी अंग्रे जी सुनी जाती थी । डिनर के बाद उनकी बातचीत हँसा-हँसाकर सब के पेट फुला देती थी, और खाना हजम हो जाता था । इन्होंने महाराजा पुगव ने एक बार कहा था—

"Viceroy he good pedigree; why for sending (to India as his successor) man no pedigree?.....Why Government not taking me? Rajput long long pedigree, going with soldier, killing Bengali Babu. That very good."

(रोजनामचे का पृष्ठ ३६३)

अर्थात्—वाइसराय अच्छे बश के है । उनकी जगह ऐसे मांदमी को क्यों भेजा जा रहा है, जो कुलीन नहीं ?—सरकार मुझे क्यों नहीं लेती ? बहुत प्राचीन राजपूत कुल क्षेत्रा ले जाकर वंगाली बाबुओं को मारेंगे । बहुत ठीक रहेगा ।

ब्रिगालियों ने सबसे पहले अंग्रे जी और पाश्चात्य विद्या सीखी थी । अब वह अग्रे जो के भाग्र उसी विद्या का प्रयोग गुरु को मारने में कर रहे थे, और उनके सामने ताल ठोककर खेड़े हो रहे थे । पहले तो इस देश में शासन के लिए आवश्यक भावां में शिक्षा दी गई, पर उस बाद को वही रोका न जा सका । इसका फल हुआ स्वतन्त्रता के लिए व्याकुलता और देशसेवा के लिए तत्परता ।

इसके बाद अंग्रे जो के मन में वंगालियों के प्रति कोई स्नेह या सहानुभृति नहीं रह सकती थी । स्वभावत ही अब बंगाली अंग्रे जो की आंख की किरकिरी तथा उनकी ईर्प्पा और निंदा का पात्र हो गया । अच्छे छात्र को यह कहा गया कि यह तो रट्टू है । जब वे लोग बड़ी नीकरियों के लिए परीक्षाओं में अंग्रे जो के साथ होड़ करने लगे, तो कहा गया कि ये तो वस परीक्षा पास करने के फेर में रहते हैं । अंग्रे जो के व्यापारिक दस्तरों में छोटी नीकरी करने पर उन्हें बाबू की पदबी मिली । एक अच्छे भसे शब्द पर व्यंग्य का पुट आ गया । एक शिक्षित जाति अंग्रे जो और उनके स्वरूपाहों

के निकट मज़ाक का विपय बन गई ।

पर यही बंगाली बाबू भारत के जन-जागरण का अग्रवा बन गया । बंगाली सबसे पहले स्वतन्त्रता के भंडे के नीचे आकर खड़े हुए, सबसे पहले उन्होंने शोणित-तर्पण किया—ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार इन हाइनेस महोदय के पुरखों ने पठानों और मुगलों से लोहा लिया था । उन राजपूतों के साथ इन बंगालियों की एकात्मकता का अनुभव कर उस राजपूत राजा की मूर्खता और नासमझी को भूलने में कोई कठिनाई नहीं हुई ।

रावत साहब आँव……“मेरी बगल की सीट पर बैठे हुए कुछ दबे-से कुस-मुसा रहे थे, मानो अशान्त समुद्र के बीच कोई जहाज केले के फूल की तरह झकोरे खा रहा हो । भला इसका कारण क्या था ? कारण यह था कि इन महामहिमान्वित रावत साहब की जेब में एक ऐसा सुगन्धित हवाना सिगार था, जिसकी सुगन्ध उन्हे कस्तूरी मृग की तरह परेगान किये हुए थी, पर यह सिगार इस समय उनके लिए मृग तृष्णा-सा हो रहा था, क्योंकि हवाई जहाज से उतरे बिना वे उसका स्वाद नहीं ले सकते थे—हवाई जहाज में धूम्रपान मना है, क्योंकि उससे आग लगने का खतरा रहता है ।

फिर भी गनीमत थी । मैं तो यह सोच रहा था कि कहीं ऐसा तो नहीं कि इतने हाइनेसों में वे ही मेरे पास बैठने के लिए वाध्य हुए थे, इसीलिए वेचैन थे ।

या कहीं यह बात तो नहीं थी कि सामने की कतार में जो हर हाइनेस बैठी थीं, उनकी सुरभि बहुत पास होने पर भी बिलकुल पास न थीं, इसलिए वे पानी से निकली मछली की तरह छटपटा रहे थे ।

हवाई जहाज कम्पनी की तरफ से यात्रियों को बहुत ही विनोदपूर्ण ढंग से सद्बुपदेश दिया गया था । बहुत सुन्दर छपे हुए कुतूहलवर्द्धक चित्रों से सुसज्जित विज्ञापन में बता दिया गया था कि रोमान्स उन्हे बहुत पसन्द है, यहाँ तक कि कोई चले-फिरे तो उसमें कोई प्रापत्ति की बात नहीं है, पर हवाई जहाज जिस समय उल्लास में पैंग भर रहा हो, उस समय यही वाँछनीय है कि लोग अपनी-अपनी कुर्सियों में अपने बेल्ट से बैंधे हुए दिखाई पड़ें, और उस समय वे मध्य युग के नाइटों की तरह आचरण करते न दिखाई पड़ें ।

मन ही मन यह जानने की इच्छा हुई कि जिस देश में पद्मिनी और कर्मदेवी की वीरता की कहानियाँ गूंजती हैं, जो विपत्तियों में पड़कर भी अपने साहस से त्राण का मार्ग खोज लेती थी, उस देश के अन्तरिक्ष में यदि कोई ऐसा ही मौका आ जाय, तो वहाँ की आधुनिकाएँ (आज की स्त्रियाँ) क्या करेंगी । ऐसी परिस्थिति में कलकत्ते के द्वामें और वसी में अकेली स्त्रियाँ जिस प्रकार आचरण करती हैं, उसके साथ आवृ-

निक राजपूत रमणी के व्यवहार की तुलना करने की बात मन में आई ।

इस बात पर और आगे सोचने से पहले ही रावत साहब ने मेरी तरफ ताककर पूछा—गुडमार्निंग, क्या पी फट रही है ?

मैंने कुछ कौतुक के साथ कहा—कहिये, क्या बात है ? क्या पी फटने में कुछ देरी है ?

जम्हाई लेते-लेते मुँह को हथेली से ढकते हुए वे बोले—देरी तो कुछ नहीं, लेकिन प्राज रात तो भपकी भी न ले सका ।

समझ में न आया कि उनके कहने का क्या मतलब है ।

मैंने कहा—क्यों ? जाड़े के दिन हैं । जहाज जरूर बहुत तड़के रवाना है, फिर भी रात में सोने को समय तो काफी मिला होगा ।

उन्होंने यह बात न मानी । कहाँ समय था ? रात अभी भीग भी न पाई थी कि जहाज का समय हो गया ।

बात कुछ ठीक ही थी । जिनको श्रम का दुख नहीं मिलता, उन्हें वि एम का सुख भी नहीं मिलता । नींद भी उन्हीं को आती है, जो पसीना बहाते हैं । हीरो और पन्नो से जडित, मुरा और मुन्दरी से लसित सन्ध्या इनमें से बहुतों की जागती आधी रातों को नूपुरों की रुनझुन और नाच की मीठी तालों के श्राघात से ऊपा के निकट ले जाती है । इसके बाद अलसायी ऊपा आँखों में नींदभरे प्रभात के आँचल में मुँह छिपाकर कब दोपहरी की ओर चली जाती है, इसे हम अभागे जो उस समय काम करते-करते यक्कर घड़ी की ओर देखने लगते हैं, कैसे जान सकते हैं !

मैंने उन साहब के चेहरे को अच्छी तरह देखा, तो मालूम है कि नींद न आने की परेशानी उनके तगड़े चेहरे पर स्पष्ट है । जिनकी पालहीन जीवन-नीका के ऊपर से अभावों और चिन्ताओं के तूफ़ान आते-जाते ही रहते हैं उनके चेहरों पर इस प्रकार की रेखाएँ नहीं रहा करतीं । परन्तु सेंकड़ों मणि-मृक्ताओं की जगमग तथा रंगीन रेशमी पगड़ी की चमक-दमक भी इनकी इन रेखाओं को छिपाने में समर्थ नहीं ।

विना कारण ही कुछ सहानुभूति हुई ।

मैंने कहा—कल रात कुछ न कुछ नींद तो आई होगी ।

पी फटने के समय के धुंधलके पर ऊपा की ज्ञान-सी भलक की तरह रेखाओं से विकृत चेहरे पर थोड़ी हँसी लाने की चेष्टा करते हुए मिश्रता करने के लिए उत्सुक तथा हँसी-मजाक में पट्ट रावत साहब ने कहा—हाँ सोया था, पर मैंने स्वप्न देखा कि मैं नहीं सोया ।

इनके पुरखे महानिद्रा की गोद में जाने से भी नहीं ध्वराते थे । यह रावत साहब जिस राज्य के जान पड़े, वहाँ के राजवंश के एक पूर्वज की कहानी याद पड़ी ।

वह कोई साढ़े छः सौ वर्ष पहले की कहानी है। वे वर्षों से मुलतान की सेना से लड़ते हुए अपने गढ़ की रक्षा कर रहे थे। एक दिन देखा गया कि किले को अब बचाया नहीं जा सकता, मृत्यु के सिवा कोई रास्ता नहीं। उस महामरण से पहले की रात गढ़ में महोत्सव मनाया गया। पुर-नारियों तथा रानी ने अपनी माँगों में सिन्दूर भरा, और प्रियजनों से विदाई ली। उसी रात २४,००० वीरांगनाओं ने तलवार की धार या आग की लपटें चूमकर आत्मोत्सर्ग किया। जो चार हजार योद्धा वचे, वे रात बीतने पर केसरिया बाना पहन सिर पर मौर रख, हाथों में नंगी तलवारें लिये मौत के सामने कूद पड़े, और वीरगति प्राप्त की। राजपूत जीवन में दो बार सिर पर मौर रखते थे—एक बार विवाह-मंडप में और दूसरी बार महानिद्वा से आर्लिंगन करते समय।

और इस प्रकार जब दूसरी बार वे मौर रखते थे, तो उनके कपड़े गेरुवे होते थे। संसार छोड़कर संन्यास लेते समय गेरुवा वस्त्र पहिना जाता था, इसी प्रकार इस दुनिया को छोड़ते समय भी गेरुवा वस्त्र पहिने जाते थे। उस समय कोई बन्धन नहीं रह जाता था। उस समय एकमात्र लक्ष्य यही होता था कि शत्रु को मारकर मृत्यु का वरण किया जाय। इसलिए ‘जर्द कपड़ों वाला’ राजपूत सैनिक शत्रु के लिए महाकाल होता था।

हर हाइनेस की अलसाई बाहु लता बड़े नाज़ से एक बार हिली। प्रभात की धुंधली रोशनी में उनके चेहरे का केवल भाग दिख रहा था। ऐसा लगा जैसे भिन्न की रानी विलयोपैटा ने मार्किन भेवस के कारखाने में तैयार एक कम्पैक्ट से ओड़ा-सा पाउडर लेकर मुँह पर मल लिया हो। फिर उन्होंने एक बहुत ही छोटी गहरी नीली शीशी से कोई सेंट निकालकर कान के नीचे और ठुड़ी पर ज़रा-ज़रा लगा लिया। सारे केविन में सुरभि फैल गई, ठीक उसी प्रकार, जैसे मन में खुशी की लहर दौड़ जाती है। उसका उद्गम कहाँ था, प्रेरणा कहाँ से मिली, इन बातों की खोज करने की आवश्यकता नहीं।

समय के उपयुक्त इत्र का चुनाव बहुत ही सूक्ष्म सुकुमार कला है। ऐसा जान पड़ता है कि पश्चिनी के देश में ऐसी कला के चुनाव में त्रुटि नहीं हुई। पर दुर्भाग्य यह है कि वहाँ के चारणों के संगीत में सुरभि सम्बन्धी इस कला की चर्चा नहीं। पर एकाकिनी पश्चिनी को यह विद्या भी बड़े यत्न से और ज़रूरत पड़ने पर प्राप्त करनी पड़ी थी। आज उनका नाम महाकाल से अभिसार के साथ जुड़ गया है, इसलिए अन्य बुला दी गई है। अनेक शताब्दियों से संचित और अनेक पूर्व-पुरुषों के पुरुषार्थ से अर्जित प्राण-शक्ति निर्दिश युग से सुरक्षित, शान्तिमय और दायित्वहीन अस्तित्व में प्रकट होने का मौका नहीं पा सकी, इसलिए इन लोगों की नासिकाएँ

वे-लगाम धोड़े की तरह हो गई हैं।

इसीलिए राजपूतों की अन्तःपुर-वासिनियों को भी नये युग की मोहिनी बनना पड़ा है। वात यह है कि यह निष्ठुर युग किसी को धमा नहीं करता। अन्तःपुर या कुलधर्म कुछ भी उसके आकरण से बच नहीं सका। इसीलिए शास्त्रों में जो सहर्घमिणी मानी गई है, वह वाहरी जगत् में न तो सहर्घमिणी है और न भीतरी जगत् में समसुख-दुःख-भागिनी। फिर भी उसे बाहर की मोहिनियों से लोहा तो लेना ही पड़ता है—भले ही वह अन्तःपुर के एकान्त कोने में बन्द रहे। माथे का ईगुर, नाखूनों का महावर, आँख का काजल या सुरमा वहूत पुरानी चीजें हो चुकी हैं। ये सब आत्मरक्षा के अस्त्र-शस्त्र हैं। सेंट भी उसी प्रकार का एक अस्त्र है। मानसी, प्रिया को दशप्रहरणधारिणी बनना पड़ता है।

इस सम्बन्ध में फास के प्रेम विशेषज्ञों का क्या कहना है, यह रावत साहब ने मेरे कानों में चुपके-चुपके बताया। प्रखर निरीक्षण-व्यवित से रावत साहब यह समझ गये थे कि हर हाइनेस इस जादू विद्या में पारगत थी। वे अवश्य ही सबेरे के समय कोई मोहक सुगन्ध का प्रयोग करती थीं, और ब्रिटिश रेसीडेंसी के टेनिस कोर्ट में अपराह्न समय ऐसी किसी सुगन्ध का प्रयोग करती थीं, जो पकड़ में आकर भी नहीं आती थी। फिर सन्ध्या समय वह कोई ऐसा सेंट लगाती होंगी, जो कपटतापूर्ण, मोहावेग लाने वाला, साथ ही विजय-संकेत से पूर्ण हो। डिनर डान्स में वह ऐसी सुगन्ध लगाती होंगी, जिसमें मादकता और रात्रि की रहस्यातुरता रहती है। वह सुगन्ध ऐसी होगी, जो रसिक जनों को आकर्पित तो करेगी, पर अपना पता न देगी।

शावाश, क्या कहना है !

मैंने मुस्कराकर कहा—शावाश योर हाइनेस ! (यद्यपि रावत साधारणतः राजा या रूपिंग प्रिस नहीं होते; यह सज्जन जागीरदार है या राजा, यह भी नहीं मालूम। लोकतात्रिक यूरोपीय पोशाक से यह समझना भुशिक्ल था कि वह किस श्रेणी के रावत है। पर इतना तो मैं वहूत अच्छी तरह समझ गया था कि इस समय उन्हे किसी दूसरे ढग से सम्बोधित करने से इस रसीली आलोचना में व्याघ्रात पड़ जायगा।) देखता हूँ कि आप वहूत ही गुणी और गुणग्राहक व्यक्ति हैं। रिवियेरा से आपको कुछ सीखना नहीं है।

रावत साहब ने कौतूक के साथ कहा—रिवियेरा वाले सुरभियों के सम्बन्ध में कितना ज्ञान रखते हैं, यह आपको पता नहीं है, तभी आप ऐसी बाते कर रहे हैं। वडे दुःख की बात है कि वे इस सम्बन्ध में कभी जितना सीख पायेंगे, उतना तो हमारे देश के गुणी पहले ही भूल चुके हैं। उसी प्राचीन युग के गुणियों से नुस्खा लेकर हम उसे फास भेजते हैं कि हमारे लिए ऐसी सुगन्ध तैयार करें, जिस पर हमारा सर्वाधिकार

हो, और जो हमारे लिए ही बने। उस सुगन्ध को दूसरों के लिए बनाने का या उसे बाजार में बेचने का अधिकार उनको नहीं होता।

मैं सुनकर मुग्ध हो गया। वाह! तो इस प्रकार हमारे देश में एक राष्ट्रीय धन्धा हो सकता है।

—तो सुनिये—प्रसन्नता से हँसते हुए रावत साहब बोले—उन लोगों के वायोलेट नामक फूल से जो एसेंस बनता है, उसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि वह पुराने रोमान्स की स्मृति लीटा लाता है, पर हमारी कस्तूरी की सुगन्ध ऐसी है कि वह स्मरण-शक्ति को ही लुप्त कर देनी है, और मन हारकर बैठ जाता है। पूर्व का देश रहस्यमय है, इस कहावत का चलन ही इसी से हुआ है।

इस प्रकार सुरभि शास्त्र पर आलोचना सुनते-सुनते मैं थक गया। उनका दावा था कि वह एक ऐसा सेट जानते हैं, जिससे उम्मोहन किया जा सकता है। वायु भी उम सेंट के स्पर्गमात्र से मूर्छित हो जाता है।

—और?—मैंने कौतूहल से प्रश्न किया—और क्या होता है?

—सहेलियों की तो बात ही नहीं है।

सहयात्री रावत साहब ने कुछ अद्भुत हावभाव दिखलाये। उनकी चितवन ने जो परदा उठाया, उसके पीछे अनेक अभिसारों के इंगित छिपे थे। न जाने कितने दिवा-स्वप्नों और कितने निशा-संगीतों के इशारे उसमें थे।

इंग्लैण्ड और यूरोप में जाकर हिज़ हाइन्स ने शिष्टाचार और संस्कृति का जो अध्ययन किया था, वह व्यर्थ नहीं गया।

जयपुर की नूरजहाँ

राष्ट्रीय आनंदोलन के प्रारम्भ में, विदेशी शिक्षा के मैदान में अगुवे बंगालियों ने फँच-विद्रोह के देशभक्तों और इटली के स्वतन्त्रता-संग्राम के सम्बन्ध में अध्ययन किया। तब इन शिक्षित व्यक्तियों ने अपने देश में इस प्रकार के राष्ट्रनायकों की खोज की और राजस्थान के राष्ट्रपुरुषों की कथाओं को जनता के समक्ष रखा। इस प्रकार बंगाली साहित्य राजपूतों की दीरतापूर्ण कहानियों से भरपूर है। इसी से राजस्थान के बंगाली साहित्यकारों की खोज है। वह राजस्थान ऐसा है जिसकी कीर्ति भेखला से वसुधा वेप्टि त है। वचन में श्री रंगलाल की कविता में पहले पहल राजस्थान से परिचय हुआ। मन में कितनी ही अमर कहानियों की लड़ियाँ गुंथ गईं। इसके बाद किशोर काल से बराबर राजपूताने का स्वप्न देखता आ रहा था। अब वह स्वप्न सफल होने चला था। अपनी आँखों से मैं उस स्वप्न की भूमि को देखूँगा, जी भर उसे स्पर्श करूँगा। यह कितनी बड़ी बात थी। हृदय-तंत्री के तार आनन्द से झंकृत हो उठे—

आनन्द, अवाध आवेगयुक्त आनन्द।

इसके अलावा जयपुर को बनाने में बंगाली स्थापत्य-कला का हाथ था। इस बात की याद आते ही जयपुर के साथ आत्मीयता और बढ़ गई। ऐसा कौन नराधम होगा जिसकी छाती पुरखों की कीर्ति देखकर फूल न उठे?

जयपुर को ही राजपूताने का प्रथम तोरण माना जाता है, इसलिए और भी प्रसन्नता हुई। चला तो था केवल एक देश देखने, पर ऐसा लगा जैसे कोई आविष्कार करने चला हूँ। और उस देश में प्रवेश करते ही जैसे पुरखों की कीर्ति ने दोनों हाथ बढ़ाकर स्वागत किया—आओ, आओ, मुझे देखो, तुम्हारे ही लिए मैं इतने दिनों से प्रतीक्षा कर रही थी।

मैंने भी मन ही मन उत्तर दिया—यह लो, मैं आ गया। मन तो हमेशा ही तुम्हारे पास रहा, पर अब सदैह आ गया।

प्रातःकाल की स्नेहभरी नीली चितवन से भरावली पर्वतमाला की चोटियों ने मुझे देखा, और अपनी गोद में ले लिया।

चारों तरफ भरावली-शृङ्गों से घिरे छोटे-से समतल एयरोड्रोम में हमारा

हवाई जहाज रुका । एक मुहूर्त में मैं जैसे राजपूताने का हो गया ।

बाहर कतारों में लम्बी और सुन्दर अमेरिकन कारें खड़ी थीं । प्रत्येक के नयं प्लेट की लाल छाती पर सफेद अक्षरों में उनके राज्य का नाम लिखा था । मैंने चट-पट देख लिया कि किस-किस राज्य के राजा और प्रतिनिधि हमारे सहयात्री थे । उनके स्वागत के लिए उनके ए० डी० सी० और सरदार आये थे । जयपुर की ओर से भी महाराजा के कई ए० डी० सी० और कई आटो आये थे ।

आटो यानी कारें । नये फँशन के अनुसार यदि कोई व्यक्ति अमेरिकन या कॉण्टीनेण्टल नाम व्यवहार में लाये तो उसमें आधुनिकता का पुट आ जाता है । पेट्रोल शब्द को ही लीजिए । यह अंग्रेजी भाषा का बहुत मामूली शब्द है । उसे गैस कह दीजिये, तो लोगों को उसमें कैलिफोर्निया की एक मृदु गंध आयगी । उसे जूस कहिये, तो आपके सामने समूचा रिवियेरा कॉण्टीनेण्ट की वाधाहीन स्वाधीनता उसके समग्र रूप रस सहित लेकर आपके सामने आ खड़ा होगा । यह रिवियेरा वही है, जिसकी सुनहली बालूं पर हालीवुड की तारिकाएँ और भारत के महाराजे समानरूप से सब की आंखों के तारे बनकर शोभायमान होते हैं ताँ नहीं, बल्कि मणि । अवश्य ही, तारिकाएँ पुरुष-रत्नों के नेत्रों की मणि बनती हैं और राजे-महाराजे पुरुषांतमाओं के नेत्रों की मणि ।

और मणि भी स्पर्शमणि ! ये लोग इतने स्पष्टे बखेर सकते हैं और विलासिता और शान के इतने सामान एकत्र कर सकते हैं कि यदि कोई भाग्य से इनके इदं-गिर्द आ जाय, तो उसके लिए तो चाँदी है, याने वह अपने दुःख-दरिद्रता के भवसागर से तरकर पार हो जाय । जिस चीज को वे छू दें, वही सोना हो जाय । इसीलिए भारत के राजे-महाराजे कॉण्टीनेण्ट और अमेरिका के लोगों की आंखों में सुनहले स्वप्न की तरह रमे रहते हैं ।

रावत साहब वाला वह सेंट का नुस्खा याद आया । यदि कोई फांसीसी एसेंस वेचने वाला यह विज्ञापन दे कि उसने एक भारतीय महाराजा के गुप्त नुस्खे को उड़ा-कर एक सेट तैयार किया है, तो वह रातोंरात किस प्रकार मालामाल हो जायगा, यह सोचते ही नाक के सामने मृदु सुगन्ध भक्तोंरे दे गई ।

हर हाइनेस पास से गुजर गई थीं ।

विचित्र रजपूती पोशाकों से सुसज्जित राजपुरुष सीने पर हाथ रखकर आधे शरीर को साठ अंश भुकाकर अपने प्रभु तथा प्रभु के भित्रों का स्वागत करने लगे । दरवारीगण यानी हिज़हाइनेसों की मंडली एक दूसरे से सामयिक विदाई लेने लगी । शिष्टाचार और मीठी बातचीर की बहार देखने और सीखने की वस्तु-थी । अंग्रेज शासक भारत से जा चुके हैं, शब्द उनकी जगह पर काँग्रेसी भासीन हुए हैं । इस बीच

ये राजागण दिल्ली जाकर उस बात पर विचार-विनिभय कर आये हैं कि वे कहाँ तक अग्रे जो के द्वारा छोड़े हुए स्थान की पूर्ति कर सकेंगे। पर इस समय उन पर जो आँची चल रही थी, उससे उनके इस शिष्टाचार और तकल्लुफ़ पर जरा भी आँच नहीं आई।

ठीक उभी प्रकार जैमे मैकड़ी विपत्तियों के सामने भी उनके पुरखों के बीर धर्म में किसी प्रकार की वासा नहीं पड़ती थी वे उस पर अटल रहते थे।

पर वह एक दूसरा इतिहास है। उसका परिचय हमें टाड साहव के इतिहास में, रगलाल की वगला कविताओं में, वकिमचन्द्र और रमेशचन्द्र के उपन्यासों में, द्विजेन्द्र लाल के नाटकों में और रवीन्द्रनाथ की पुस्तक 'कथा और कहानी' में मिलता है।

और अब इन हाइनेसों में हम एक दूसरे ही राजस्थान का चित्र देखते हैं। इनके प्राणों की चिडिया सार्वभौम सत्ताधारी त्रिटिश सोने की डिविया में सुरक्षित थी। वही से उसका उड़ना और पर फ़ड़फ़डाना उन्हीं की आँख के इशारे पर होता था। उनकी आँख का इशारा आजा होती थी।

इन राजाओं के प्याले अग्रे जों के आतिथ्य में शिकार, नाच और भोज के अवसर पर लवरेज़ होकर उमड़ पड़ते थे। इस प्रकार इन्होंने एक नयी परियों की कहानी, नये राजस्थान की कहानी रची है। समाजवादी मित्र कहते हैं कि यह कहानी नहीं उपर्युक्त है, बीसवीं सदी के सफेद धूंधट से कुण्ठित राजपूत भूमि की कहानी।

जयपुर शहर में प्रवेश करने के बहुत पहले ही पहाड़ के ऊपर चारों ओर खिची बड़ी दीवाल पर नजर पड़ती है। ऐसा लगता है जैसे पहाड़ के सिर पर पत्थर की माला ढाली गई है। क्या इस दीवार को पार कर दुश्मन कभी जयपुर में प्रवेश कर सकता था?

साथ ही आमेर के तीन महाराजाओं की बात याद आई। अकबर के जमाने में राजा मानसिंह मुगलों की सेवा और सहायता का मार्ग अपनाकर आमेर और मुगल साम्राज्य की नीव की पक्की कर गये। गाहजहाँ और औरगजेब के जमाने में मिर्ज़ा राजा जयसिंह आमेर के प्रताप को और भी बढ़ा गये। इसके बाद सवाई राजा जयसिंह अतुलनीय बुद्धि और राजनीति से आमेर को और भी प्रभावशाली बना गये।

यह जयपुर मुगलों से लड़कर विनष्ट नहीं हुआ था, और न इस पर ईरान या अफगानिस्तान से हमले ही हुए थे। इसका समय शान्ति में ही कटा। फिर भी गत २०० वर्षों में जयपुर इतना निस्तेज और निर्वर्य बयो हो गया, यह प्रश्न मेरे मन में उठा।

भविष्य में राजस्थान के निर्माण के लिए भूतकाल की इन वृत्तियों को अच्छी तरह जाँचकर आगे बढ़ना पड़ेगा।

यदि उन्नीसवीं या बीसवीं सदी के राजपूत सामन्तों और राजाओं के चरित्र को देखकर हम राजपूताने पर अपना मत बना लें, तो उससे देश की ही हानि होगी। शालियों ने जिस गौरवमय दृष्टि से इस देश को देखा है, वही सच्चा है। उसी दृष्टि-

कोण से देखकर ही हम भावी राजस्थान का निर्माण कर सकते हैं। तभी हम राजपूताने के अधिवासियों से उनका सर्वश्रेष्ठ दान पा सकते हैं।

आज सारा भारत चाहता है कि प्रत्येक प्रान्त में जो श्रेष्ठ से श्रेष्ठ गुण है, उन्हे वह प्राप्त कर ले। विद्वानों ने तो यहाँ तक कहा है 'कि पड़ो अपावन ठौर में कचन तज्जन कोय'। इसी प्रकार की वृद्धिमानी और मुरणग्राहकता के कारण मुगल सम्राट् जहाँगीर ने ताजुक-ए-जहाँगीरी में खुदा का शुक्र करते हुए खुशी जाहिर की है कि जो कीर्ति मुगल सम्राज्य के स्थापक वावर के हाथ न लगा, जिसे हमार्या प्राप्त न कर सके, विश्वात् अकवर भी जिसे आंगिक रूप में ही प्राप्त कर सक, उसे जहाँगीर ने प्राप्त किया।

इसका अर्थ यह था कि पठानों और मुगलों के चिर-शत्रु उदयपुर के सिसोदिया वश के महाराणा प्रताप के पुत्र अमरसिंह जहाँगीर के साथ सन्धि और मित्रता के सूत्रों में बोध लिये गये।

जहाँगीर के इस उल्लास के पीछे वीर-पूजा थी। वीरता में राजपूताने की तुलना में कोई ठहर नहीं सकता था। यह वीरता केवल शत्रु के हनन और आत्मविलिदान तक सीमित न थी। इसके साथ जुड़ा हुआ था स्वामिधर्म अर्थात् प्रभु-भक्ति और धर्म-युद्ध का आकर्षण। एक ईरानी इतिहासकार ने दतिया के वर्तमान महाराजा के पूर्वज सुजनसिंह बुन्देला के सम्बन्ध में एक कविता लिखी थी—

दो रोज गुजर कर्दन अज मर्ग सजानेस्ते,

रोज कि कजा वाशद रोज कि कजा नेस्त।

रोज कि कजा वाशद कोशिश न कुनद सूद,

रोज कि कजा नेस्त दर ऊ मर्ग रवा नेस्त।

यानी दो मौकों पर मरने से मुँह मत मोड़ो, एक मौका तो वह है जब जिसके तुम्हारा मरना बदा है, और एक दिन वह जब कि तुम मर नहीं सकते। वात यह है कि जिस दिन तुम्हारी मृत्यु निश्चित है, उस दिन सौ यत्न करने पर भी तुम वच नहीं सकते, और जिस दिन तुम्हें मरना नहीं है, उस दिन तो मौत से डरना इसलिए बेकार है कि उस दिन तुम मर नहीं सकते।

तो फिर डर काहे का? मरने के लिए युद्धक्षेत्र से बढ़कर राजपूत को और कोई सेज नहीं होती। शेक्सपियर ने भी इसी प्रकार लिखा था—

"Cowards die many times before their deaths,

The valiant never taste of death but once.

.....Death, a necessary end,

Will come when it will come."

यह बात इनके जीवन में रोज घटती रहती थी। धर्मयुद्ध किसे कहते हैं, इसे वै जानते थे। दुनिया के इतिहास में भारत के बाहर इस प्रकार की उदात्त भावना बहुत कम पायी जाती है।

जयपुर महाराज के अतिथिभवन माशाकोठी की शानदार बैठक के एकान्त कोने में ठाकुर साहब भुजे यही बात समझाने की चेष्टा कर रहे थे। उन्होंने कहा—देखिये मैं जयपुर की कहानी नहीं कहूँगा, क्योंकि मैं स्वयं जयपुरिया हूँ। भेवाड़ की बात भी नहीं कहूँगा, क्योंकि भेवाड़ को बगाली बगाल से अधिक अच्छी तरह जानते हैं। मैं एक दूसरे कुल का इतिहास बताऊँगा। जिन दिनों आपके बंगाल में अग्रेज बलाइच भारतीय नवाब के सेनापति और सभासदों को फोड़कर प्लासी में नमकहरामी की लड़ाई करने का स्वांग रख रहा था, उन्हीं दिनों की एक बात बताता हूँ। उन्हीं दिनों दिल्ली के बादशाह का सेनापति सलावतजंग राठोर राजा रामसिंह के साथ लड़ा था। मारवाड़ की मरुभूमि की प्रचण्ड गरमी में कुछ घंटों तक लड़ने के बाद ही मुगल सैनिक प्यास से पागल हुए जा रहे थे। लोग सचमुच पागल हुए जा रहे थे। राजपूतों की तरफ एक कुआ था, इसलिए उन्हें किसी प्रकार की तकलीफ न थी। जब मुगल बिलकुल परेशान ही गये, तो उन्होंने जाकर राजपूतों से पानी मांगा। इस पर राजपूतों ने क्या किया, मालूम है?

मैंने प्रशंसा के लहजे में कहा—जी हाँ, मैं समझ गया, उन लोगों ने क्या किया।

अपनी पगड़ी एक बार उतारकर खोपड़ी को थोड़ी देर के लिए हवा खिला कर ठाकुर साहब ने पगड़ी फिर यथास्थान रखी और बोले—मैं जानता हूँ कि आप डी० एल० राय और रमेशचन्द्र दत्त के देश के हैं, इसलिए आप इस बात को समझ गये होंगे, फिर भी बताता हूँ। राजपूतों ने उन्हें पानी दिया। जितना उन्होंने चाहा उतना, फिर बोले—अब लौट जाओ, क्योंकि आज हम लोगों की लड़ाई है।

मैंने सोचा कि इनके साथ घनिष्ठता हो जाय, तो लाभ की सम्भावना है। लाभ यह कि बाहर के लोगों को जो कुछ देखने और सुनने का मौका नहीं मिलता, वह इनके जरिये सम्भव होगा। इसलिए मैंने इनसे सरस सम्बन्ध जोड़ने की चेष्टा की, जिससे इनके और मेरे बीच कोई परदा न रहे।

मैंने कहा—मैंने सेरउल मुताखरीन के मुसलमान लेखक की रचना में यह कहानी पढ़ी थी। सचमुच राजपूत जाति जग से न्यारी है, फिर भी सुनिये मैं आपको जयपुर की नूरजहाँ की कहानी सुनाऊँगा। बड़ी दिलचस्प है।

वह बोले—जयपुर की नूरजहाँ कौसी? वह तो दिल्ली और आगरे की है, जहाँगीर की नूरजहाँ।

मैंने हँसकर कहा—मज़ा तो यही है। आप मुझ से जयपुर की नूरजहाँ की

कहानी सुनिये । जानते तो ज़रूर होगे, फिर भी सुनिये ।

ठाकुर साहब रसिक व्यक्ति थे, रस की खोज पाकर उनके कान खड़े हो गये, और मेरी तरफ बढ़कर सम्भलकर बैठ गये ।

मैंने कहा—डेढ़ सौ वर्ष पहले जयपुर ने बहुत बुरे दिन देखे थे । पन्द्रह साल तक राजा जगतसिंह जयपुर के सिंहासन पर रहे । कभी किसी राजपूत ने ऐसी वादा-खिलाफ़ी और ऐसा मर्यादा-विरुद्ध वाम नहीं किया, जैसा उन्होंने किया । जयपुर का नाम ही भूठा दरवार पड़ गया, क्योंकि राजा कभी अपनी बात नहीं रखते थे । और तो और उन्होंने शरणागतों को भी शत्रुओं के हाथों में सौंप दिया था । और जो कुछ मैं कहने जा रहा हूँ, उसके मुकाबले में जो कुछ मैं कह चुका, वह बहुत फीका पड़ जाता है । इसलिए यह न समझिये कि जगतसिंह की कीर्ति की मैंने जो व्याख्या की, उसी से मेरी कहानी समाप्त हो गई ।

महाराजा साहब तो अपना खजाना खाली कर चुके थे । जयसिंह के सुन्दर शहर की दीवारों को अभीरखाँ पिडारी और भराठे लुटेरों के दल ने बार-बार अपविन्न किया था । दरवार पर कभी किसी दर्जी, कभी किसी बनिये, यहाँ तक कि एक खोजे का बोलबाला रहा । जगतसिंह स्वयं अपने रनिवास का सम्मान विगाड़ने लगे । रसकपूर नाम की एक मुसलमान वेश्या को लेकर महाराज साहब इतनी धीर्घ-धीर्घी करने लगे कि वे उसके साथ एक हाथी पर बैठकर नगर का चक्कर लगाया करते थे । अन्त में उन्होंने उस वेश्या को आधे राज्य की अधीश्वरी घोषित कर दिया । यहाँ तक कि उसके रिश्तेदारों की रूपयों की भूख मिटाने के लिए महाराज साहब ने जयसिंह के अद्वितीय पुस्तकालय की पुस्तकों को भी बेच दिया ।

ठाकुर साहब ने कहा—जाने भी दीजिये, ये बातें । हम लोगों में ऐसी लज्जाजनक बातें बहुत हैं । कम से कम एक बंगाली के मुँह से मैं ये बातें सुनना नहीं चाहता । ठाकुर साहब ने कुछ दुखी होकर यह सब कहा ।

—पर बंगालियों के मुँह से ही आपको इसके काले पहलू की बातें भी सुननी पड़ेंगी । बात यह है कि हम लोग निष्पक्ष हाकर राजस्थान को तोलना चाहते हैं । जाने दीजिये उस बात को । बाकी कहानी सुनिये । रसकपूर नूरजहाँ की तरह बहुत सी विद्याओं और राजनीति में पारंगत नहीं थी । जहाँगीर की आत्मजीवनी वाक्यात-ए-जहाँगीरी में लिखा है कि जहाँगीरने यह प्रतिज्ञा की थी कि वह अपने हाथ से शिकार नहीं करेंगे, इस पर नूरजहाँ ने पति की बन्दूक से एक शेर को एक ही गोली में ढेर कर दिया । यह स्मरण रहे कि साथ के बड़े शिकारी शेर को मार नहीं पाये थे । पर जयपुर की नूरजहाँ ने एक ही शेर मारा था, वह शेर थे महाराजा जगतसिंह ।

रसकपूर के नाम से जयपुर में सिवके भी चलते थे । पर यह प्रेम इतना

अस्थायी हुआ कि जब महाराजा ने देखा कि अब सिंहासन खोने की नौवत आ चुकी है, तो उन्होने शत्रुपक्ष के द्वारा लगाये हुए भूठे अपवाद के कारण अपनी चहेती उपरानी को जेल में ठूँस दिया, और मौके के अनुसार उसकी सारी सम्पत्ति जब्त कर खजाने में लाठाने से नहीं चूके ।

ठाकुर साहब ने आश्चर्य के साथ पूछा —इसके बाद क्या हुआ ?

मैंने कहा—वाकी घटना यो है । वही असली बात है । उन लोगों में से एक साहब, ठाकुर चन्द्रसिंह ये अपमानकर दृश्य देखना न चाहते थे, इसलिए महाराजा के दरवार में न आया करते थे । उन पर तीन लाख रुपया याने चार साल की मालगुजारी का जुर्माना किया गया । फिर भी वह न भूके ।

ठाकुर साहब ने लम्बी सॉस लेते हुए कहा —उन दिनों के तीन लाख रुपये ! मजे में इतनी रकम से एक अच्छी-खासी जागीर खरीदो जा सकती थी ।

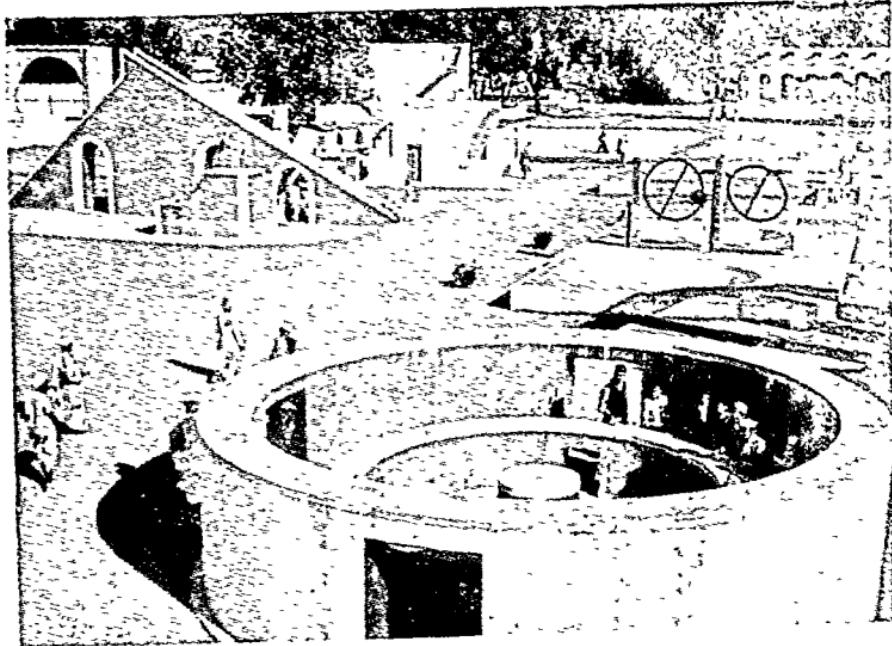
ठाकुर साहब एक बड़े जागीरदार थे, इसलिए मालगुजारी और जागीर की भाषा को बेखूफ समझते थे । मुझे इस मौके में याद पढ़ गया कि कई लोग तो इतने के लिए जान दे देते हैं । हालत तो यह थी कि राज्य के प्रधान मन्त्री ब्राह्मण होकर भी रसकपूर को विटिया कहकर पुकारते थे, और स्वयं महाराजा साहब तो उन्हें पटरानी की इजजत बख्शते थे, फिर भी साधारण प्रजा इसके विरोध में वरावर आवाज उठाकर जान तक देने में नहीं हिचकती थी ।

मैंने कहा—महाराजा साहब जुर्माना करके ही नहीं रुके । वह उससे भी आगे बढ़े । परन्तु मामूली राजपूतों का चरित्र इससे बहुत ऊँचा था । जब उन्होंने देखा कि उनमें महाराजा को रोकने को शक्ति नहीं, तो उनसे किनाराक्ष हो गये । जय मन्दिर का कोष राजा वुरे कामों में इस प्रकार उड़ा रहा था कि यह हालत देखी न जाती थी । जो लोग वंशापरम्परा से खजाने के सिलेदार (खजाज्ची) थे, वे वेचारे साधारण कोपागार रक्षक कुछ कह भी न पाते थे, उधर उनसे चुप भी न रहा जाता था । ऐसी स्थिति में एक खजाज्ची ने आत्महत्या करके आत्मसम्मान की रक्षा की । इस प्रकार एक राजपूत ने अपने प्रभु धर्म की रक्षा की ।

ठाकुर साहब खुशी में कह उठे—बिलकुल जापानियों की तरह ।

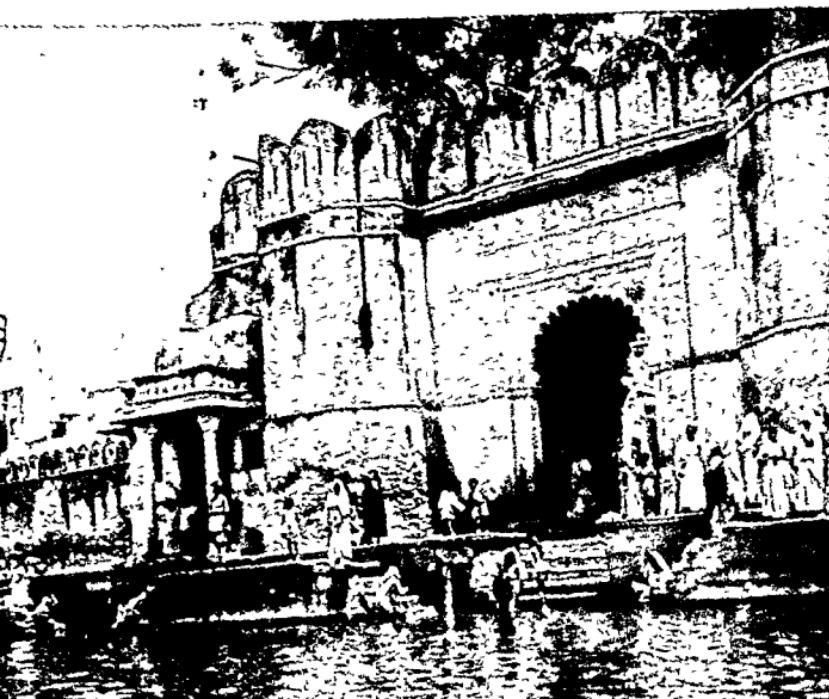
मैंने उनकी खुशी पर ठण्डा पानी डालते हुए कहा—नहीं । कहिए असली राजपूतों की तरह । इसके लिए जापान में जाने की जरूरत क्या है । अपनों में ही खोज कर देखिए, गर्व करने तथा लोगों को सिखाने की बहुत सी बातें मिलेंगी । भारत के लिए राजस्थान को खोजिए ।

जगतसिंह के समय सभी रजवाड़ों में मराठों की लूट और अत्याचार हो रहा था, यह बात मुझे याद पढ़ गई । साथ ही साथ बगाल में सर्वत्र प्रचलित एक बात



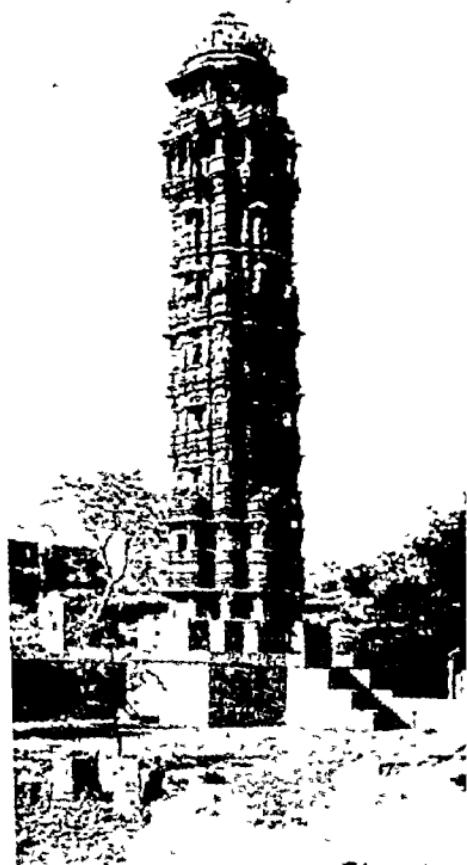
जंतर-मंतर, जयपुर ।

पिशीला भील का स्नान-धाट ।





अनीत की स्मृति



जय-स्तम्भ, चित्तीड ।

याद आ गई कि जन्म, मृत्यु और व्याह, ये तीन विधाता के हांथ में हैं। पर राजा के घर में उत्तराधिकारी होकर पैदा होना कोई मामूली बात थोड़े ही है। उस बेचारे के जीवन के सूत्रपात से लेकर भूमिष्ठ होने तक सारे राज्य में उथल-पुथल मची रहती है। जिन राज्यों में अब भी राजा मुकुट लगाकर चल सकते हैं, वहाँ उत्तराधिकारी होकर पैदा होना बहुत बड़ी बात है।

इसी जगतसिंह के जयपुर में एक उथल-पुथल करने वाली घटना हुई। राजा की सोलह व्याही हुई रानियाँ थी, परन्तु औरस सन्तान एक भी नहीं थी। इसलिए जब महाराजा साहब मरे, तो जहाँ एक श्रोत्र प्रभुभक्त राजपूतों ने शान्ति की साँस ली, वहीं एक विपत्ति हटी, तो दूसरी विपत्ति आ गई क्योंकि राजा मर गये, पर राजपद तो नहीं गया।

जगतसिंह के मरने के बाद अन्तःपुर का प्रधान खोजा मोहन नाजिर राज-काज चलाता था। वह जैसा विचक्षण बुद्धिमान था, वैसा ही धोखाघड़ी में नम्बरी उस्ताद। उसने सोचा कि जब राजा साहब एकाएक मर गये, तो उनकी जगह ऐसे व्यक्ति को बैठाया जाय, जिसकी नावालगी बहुत दिनों तक बनी रहे, और इस बीच अपना शासन चलता रहे। गद्दी के दावेदारों की संख्या बहुत थी।

राजा की मृत्यु के दूसरे ही दिन मोहन नाजिर ने मानो अपनी जेब से मोहनसिंह नाम के एक नी वर्ष के लड़के को निकाला। वह लड़का मोहन नाजिर का हमनाम था, इसलिए उसे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ, ऐसी बात नहीं। यद्यपि सौ वर्ष पहले जयपुर में यह बात भी असम्भव न थी। प्रचलित रीति के अनुसार अम्बर राजवश की बारह 'राजावत' शाखाओं में से किसी एक से चुन लेना यथोष्ट था। पर इसमें असुविधा थी। इसलिए ठीक चौदह पीढ़ी पहले का सम्बन्ध निकालकर इस मोहनसिंह को जगतसिंह का दाह-संस्कार करने के लिए सूर्यरथ में चढ़ाकर जुलूस के साथ ले जाया गया।

कहते हैं कि पुरुषों में नाई सबसे अधिक चालाक होता है। पर ये नाई भी नाजिर से बहुत कुछ यहाँ तक कि राजनीति तक सीख सकते थे। अम्बर के बारह सरदारों में जो सबसे अधिक शक्तिशाली थे, उन्होंने जगतसिंह के जमाने में ही महाराजा की निजी जमींदारी में से एक बड़ा अंश हथिया लिया था। इसलिए उन्होंने सोचा कि नाजिर के गुट में रहने से कोई उनकी उस सम्पत्ति को लौटाने का नाम तक न लेगा। इसलिए उन्होंने नाजिर के साथ चोर-चोर मौसिरे भाई का रिश्ता जोड़ा।

इतना ही नहीं, पुरोहित, कुलगुरु, धर्मभाई ये सब नाजिर के पक्ष में हो गये। यदि राजावतों में से कोई राजा चुनकर आता, तो इन लोगों की मिट्टीपलीत होती थी। सम्भव है कि नये राजा अपने नये मंत्री नियुक्त करते, और साथ ही नया गुरु,

पुरोहित, धर्मभाई, रामान्परिषद् चुनां जातीं । इससं अच्छा तो यही था कि मोहन नाजिर के द्वारा चुना हुआ नावालिंग लड़का ही राजा बने ।

जिन सरदारों के बल पर श्रक्कवर के समय से लेकर श्रीरामगेव के वंशधरों के समय तक राजा मानसिंह, मिर्जा राजा जयसिंह, सवाई राजा जयसिंह भुग्गल साम्राज्य के स्तम्भ प्रमाणित हुए थे, उन सरदार वंशों में से केवल एक की ही सलाह ली गई, और जिसकी सलाह नी गई, वह बड़ा ही धोखेवाज था । राजियों को भी कानोंकान सबर न हो पायी । अभी इमशान का श्रिया-कर्म समाप्त हुआ ही था कि उस नावालिंग का नाम द्वितीय मानसिंह रखा गया, और मोहन नाजिर जयपुर-दरवार में उपस्थित अन्य राजाओं के प्रतिनिधियों से नये राजा को मनवाने की बेष्टा करने लगा । वह करीब-करीब सफल भी हो गया था । उस समय कलकत्ता में ब्रिटिश सत्ता थी । दिल्ली के ब्रिटिश एजेन्ट और कलकत्ते की ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उस नावालिंग को राजा मान लिया । जयपुर में दूसरे राजाओं के जो प्रतिनिधि थे, उन्होंन भी एक तरह से नये राजा को स्वीकार कर लिया ।

पर इसको स्वीकार नहीं किया तो एक राजपूतनी ने—पधिनी और कर्मदेवी के देश राजपूताने की एक रानी ने । वह थी जगतसिंह की रानी और जोधपुर के महाराजा की वहन । उसने राजा के इस चुनाव को नहीं माना । जब चिनगारी का पता लगा, तो हवा भी तेज़ी से चलने लगी । जयपुर के जनमत ने सिर उठाया और सरदार लोग भी वस्तुस्थिति पर फिर से विचार करने के लिए सम्हलकर बैठ गये ।

मोहन नाजिर ने जब यह रंग देखा तो उसने एक बहुत अच्छी चाल चली । राजपूतों में भेवाड़ के राना ही सम्मान और प्रताप में सबने ऊँचे माने जाते थे । वारह साल पहले जयपुर के महाराजा की वहन के साथ शादी की वातचीत हुई थी । अब यदि राणा को ऐसी शादी का लोभ दिखाया जाय, जिसमें उन्हे दहेज में लाखों की प्राप्ति होगी, और साथ ही वड़ी शान-शौकत रहेगी, और वे इसमें फँसकर शादी करने आवें, तो जयपुर के सब सरदारों को उनका स्वागत करना पड़ेगा । इस प्रकार एक पंथ दो काज हो जायेंगे, सांप भी मरेगा और लाठी भी न टूटेगी ।

पर इसी बीच यह खबर लगी कि जगतसिंह की एक रानी को गर्भ है । किसी ने प्रश्न नहीं किया कि राजा के मर जाने के तांन महीने बाद तक ऐसा सुख का समाचार गुप्त हैसे रहा । खासकर जब राजा के निपूत मरने के कारण ही यह सारी गड़बड़ी थी, तो यह खबर छिपी क्यों रही ? फिर वह जमाना भी ऐसा था कि राजाओं और बड़े घरों की जरा-जरा-सी बातें लोगों की वातचीत का विषय बनी रहती थी । ताज्जुब इसलिए और भी था कि मोहन नाजिर स्वयं ही रनिवास का बान खोजा और कन्ट्रोलर ऑफ हाउस-होल्ड था ।

इसीलिए मामले की जाँच करना जरूरी समझा गया । सोलह विघवा रानियाँ और सब सरदारों की स्त्रियाँ मिलकर इस बात की जाँच करने लगीं कि आखिर बात क्या है ? ड्योढ़ी के बाहर सरदार लोग इस जाँच के फल की प्रतीक्षा करने लगे । चार घण्टे तक जाँच की कार्रवाई जारी रही, और इसके बाद यह निस्सन्देह राय दी गई कि रानी गर्भवती है, और सब ने यह लिखकर दे दिया कि यदि कोई लड़का पैदा हो, तो वही तख्त-ताज़्र का मालिक होगा ।

साथ ही एक और विघवा रानी ने अपने को गर्भवती घोषित किया, पर उसकी ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया । बात यह है कि करिश्मा सिर्फ एक ही बार चलता है ।

यथासमय राजकुमार उत्पन्न हुआ, और उसने रजवाड़े के सबसे धनी बंश के सम्मान की रक्षा की । नावालिग्र मोहनसिंह सिंहासन छोड़कर कहाँ भागा, यह किसी को पता नहीं लगा ।

यह रही हितोपदेश के रंगे सियार की कहानी ।

कृष्णकुमारी की कहानी

यहाँ एक राजकुमारी की कहानी के साथ मेरी राजस्थान-भ्रमण की कहानी जुड़ गई। उस राजकुमारी के हाथ में जहर का प्याला था, पर उसके चारों तरफ वीरों की एक टोली इस आशा से खड़ी थी कि वह जहर अमृत में परिणत हो जायगा। राजकन्या के आत्महत्या किये विना इन लोगों को छुटकारा नहीं मिलता।

यदि महावीर राजपूत राजाओं की ऐसी ही गिरी हुई हालत थी, तो इनको तथा दूसरे राजाओं को नवीन भारत के साथ जोड़ लेने के लिए इतनी व्याकुलता क्यों थी? क्यों सारा भारत आग्रह के साथ देख रहा था कि रजवाड़ों वाला भारत किस करवट बैठता है? आसमुद्र हिमाचल सारे भारत को एक देखने के लिए सुदूर बंगाल से कन्याकुमारी तक लोग क्यों लालायित हो रहे थे?

क्या यह केवल भूगोल का प्रश्न था?

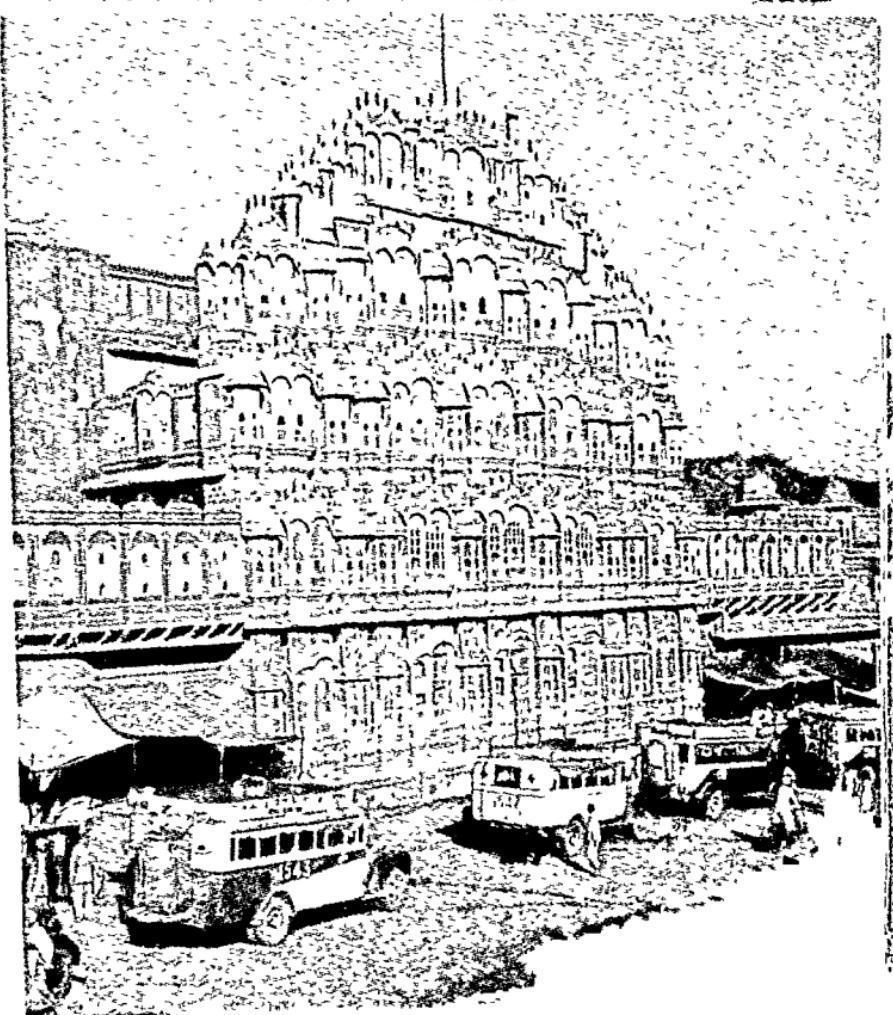
या यह इतिहास का खेल था?

या यह राजनीति का नशा था?

इसका उत्तर लॉर्ड वेलिंगटन दे गये हैं, जिनको डंगलैण्ड के इतिहास में लौह-इयूक, नेपोलियन विजयी वीर कहा गया है। उन दिनों वे उतने विश्वात् नहीं थे, किर भी सैनिक कौशल के लिए उसी समय प्रसिद्ध हो गये थे। इस देश में बहुत से देशी राजाओं से हुए युद्धों में उनकी आधुनिक रणनीति प्रमाणित हो चुकी थी।

उन्होंने अपने बड़े भाई, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के जमाने के वायसराय लॉर्ड वेलेस्ली को एक पत्र में लिखा था कि राजपूत शक्ति का अस्तित्व ऐसी बात है, जिसके कारण उत्तरी-पश्चिमी सरहद सबसे अधिक सुरक्षित रहेगी।

राजपूतों को पृथक्-पृथक् देखने से इनमें से किसी में भी विशेष दमन न था। अब भी नहीं है। पर इन सबको एकत्र कर लेने पर राजस्थान महाशक्ति में परिणत हो सकता है, इसे न केवल दुष्टिमान अंग्रेज समझते थे, बल्कि हमारे यहाँ के उन दिनों के नेता भी समझते थे। उन दिनों देशी शक्तियों में मराठों का ही सबसे ऊँचा स्थान था। वे इस बात की जी-जान से कोशिश कर रहे थे कि कम-से-कम जयपुर, जोधपुर और उदयपुर ये तीन राज्य एक साथ मिलकर नवोदित विटिश शक्ति का सामना करें। उधर अंग्रेज् भी बार-बार यहीं चेष्टा कर रहे थे। दोनों पक्ष समान रूप से राजपूतों पर दबाव ढाल रहे थे। शतरज की इन चालों के मारे राजपूताने की नाक में दमथा।



हवा महल, जयपुर।



गणगीर-उत्तमद ।

राजस्वानी किसान प्रसन्न मुद्रा में ।



केवल राजाओं का ही नातका वंद हो रहा था, ऐसी बात नहीं, प्रजा भी परेशान थी।

बंगाल में मरहठों के अत्याचार की पुरानी गाथाओं को लोरी के रूप में सुनाकर अब भी बच्चों को सुलाया जाता है। पर जिस युग में यह अत्याचार ही रहा था, उस युग में किसी की आँखों में नींद न थी।

खोका धूमालो, पाड़ा जुड़ालो, वर्गी एलो देशो ।

बुलबुली ते धान खेयेचे खाजना देवो किसे ?

(यानी बच्चा सो गया, मोहल्ला शान्त हो गया, और मराठे चौथ वसूलं करने आ गये। बुलबुल धान खा गई, अब लगान कहाँ से दिया जाय ?)

कहाँ से, इस प्रश्न के उत्तर की मराठे घुड़सवार प्रतीक्षा न करते थे। वे तलवार की नोक पर इसका उत्तर देते थे, और कभी-कभी सब प्रश्नों का कन्त पूरे गाँव को अग्निदेव को सौंपकर चले जाते थे।

पानीपत की तीसरी लड़ाई से भी मराठों ने कोई सवक नहीं सीखा। उनकी राष्ट्रशक्ति समाप्त हो गई, पर लूट-खसोट के प्रति उनकी भक्ति बढ़ गई। शक्ति चली गई, पर लोगों की हानि पहुँचाने की सामर्थ्य बढ़ गई। राज्य गया, पर उपराजाओं की कमी नहीं हुई। उपदेवताओं के उपद्रव से सारा देश हाहाकार करने लगा।

मनुष्य के इस जीवित शाद्व में पिंडत्व करने के लिए पिंडारी आते थे। इन लोगों का न तो कोई देश था, न जाति ही और न कोई नीति। इनका धर्म लूट-खसोट था, और इनके लिए अत्याचार करना मानो भोक्ष का मार्ग था। वेतनभोगी लुटेरे सिपाही बने थे और डाके डालते थे। जब सिपाहियों को वेतन देने के लिए पैसे नहीं होते थे, तब उनके सरदार लूट-खसोट की स्वतन्त्रता दे देते थे। जब सिपाहियों का वेतन वसूल हो जाता था, तब सरदारों की बारी आती थी, और वे लूटना शुरू करते थे।

इनकी तुलना में तैमूर और नादिरशाह के सिपाही शरीक थे, क्योंकि वे एक बार लूट-खसोट कर तथा लोगों को मार-मूरकर अपने पीछे मुखमरी और अग्निकाण्ड छोड़कर चल तो देते थे, पर ये पिंडारी इसी देश के थे इसलिए जाते तो कहाँ जाते ? उनका केरा अक्सर होता रहता।

विदेश से आये आक्रमणकारी अज्ञात देश में आकर युद्ध करते। उसमें जीतने के बाद धन लूटते और स्त्रियों तथा कलाकारों को गुलाम बनाकर ले जाते थे, पर पिंडारी तो मनुष्य को खाने वाले बाघ की तरह थे। वे जहाँ इन्सान के खून का स्वाद पा जाते, वहाँ डटे रहते। वहाँ से फिर टलने का नाम न लेते। वे बाघ से भी खराब थे, मयोकि वे सब कुछ डकार जाते थे। उनकी नयी-नयी मार्गें अत्याचार के नित नये

ह्यकण्ठे होने। राजा और प्रेजा दोनों का ममान ह्य में गोपण करते थे।

कोई उह भी वर्ष पहले मध्य और पश्चिम भारत में सबसे शक्तिशाली व्यक्ति पिंडारी सरदार अमीरखाँ था। अमीरखाँ की लूट-खसोट का इतिहास ही दस ममय के राजस्थान और मध्यभारत का इतिहास था।

कहने के निए होल्कर राजा थे, पर असली शासक वही था। वह सिन्धिया ने अधिक ताकत रखता था। जोधपुर के राजा और भूपाल के नवाब उसकी मुट्ठी में थे, और जयपुर तथा उदयपुर में वह वरावर कभी इस बहाने, कभी उस बहाने नाहिं रखते थे।

सबसे बड़ी बात यह कि भारत के सबसे संभान्त वंश, श्री रामचन्द्र के नूर्यवंश की सन्तान मेवाड़ के महाराणा की कन्या का विवाह किसके माय हो, इसका निर्णय भी इसी पिंडारी अमीरखाँ ने किया था। उसने हुक्म दिया कि या तो कुष्णकुमारी को उसके कठपुतले, जोधपुर के महाराजा के साथ शादी करनी पड़ेगी, मा जहर खाकर आत्महत्या करनी हींगी। यह घृणवती कन्या उसी सिसोदिया कुल की राजकुमारी थी, जिसके पूर्वज महाराणा प्रताप ने जयपुर के राजा मानसिंह के साथ इसलिए साने से इन्कार किया था कि उन्होंने अपनी बहन मुगल सम्राट् के साथ व्याह दी थी। यह वही बदा था, जिसकी ओर नारियों ने बार-बार जोहर कर गयु को अङ्गूठा दिखाकर हँसते-हँसते इस लोक से विदा ली थी।

उसी महावश की राजकुमारी को जहर का धूंट पीना पड़ा, और यह धूंट सारे राजस्थान के शरीर में फैल गया। यह जहर आपसी फूट और भाई-भाई में लड़ाई का जहर था। कमज़ोरी और असहायता का जहर था। उन दिनों जयपुर की दगा बहुत गिरी हुई थी।

सिन्धिया और होल्कर दोनों मराठे थे। निटिश शक्ति दोनों को हटाकर उनके राज्यों को अपने में मिला लेना चाहती थी, इसमें सन्देह न था; पर इस सम्भावना के बावजूद क्या वे एक दूसरे से या अन्य राजाओं से मिलकर अपने उभय शत्रु के विरुद्ध कमर कसकर खड़े हो सकते थे?

नहीं, भारत के इतिहास में ऐसा कोई दृष्टान्त नहीं मिलता। यह सिफ़ँ आज की बात है कि हम एकमन और एकप्रण होकर अपने को भारत माता की सन्तान समझने लगे हैं।

इसी कारण सिन्धिया और होल्कर दोनों बारी-बारी से जयपुर को धमकाते और लूटते थे। जब बार-बार की लूट-खसोट के कारण जयपुर तबाह होगया, तो उसने इन आक्रमणकारियों के विरुद्ध ईस्ट इण्डिया कम्पनी से संधि कर ली।

शिकार हाथ से निकल रहा है, देखकर होल्कर ने धमकी दी—ठहरो, अंग्रेजों

के साथ सन्धि करने का मजा अभी तुम्हें चखाते हैं । जयपुर को हम ऐसा बरवाद कर देंगे कि अंग्रेज उधर मुँह घुमाकर भी न देखेंगे ।

डरकर जयपुर ने ब्रिटिश रेसिडेंट से सहायता मांगी, पर रेसिडेंट ने होल्कर की धमकी की बात पर विश्वास तो किया नहीं, उलटे यह शिकायत जड़ दी कि जोधपुर, जयपुर और उदयपुर या मेवाड़ ये तीनों मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध पड़्यन्त्र कर रहे हैं । इस बीच होल्कर की सेनायें जयपुर राज्य के अन्दर दाखिल होकर अपने लिए रसद एकत्र करने लगी थीं ।

पर जयपुर के राजा को इस बात की परवाह नहीं थी, और इस बात से उसके कानों मे जूँ तक नहीं रेंगी । अपना राज्य मराठों के चंगुल से कैसे बचे, इस सम्बन्ध में कुछ भी फ़िक्र न करते हुए जयपुर की सेनायें उन दिनों उदयपुर की नाक पर इस कारण बैठी हुई थीं कि कहीं कृष्णकुमारी हाथ से न निकल जाय । सेनाओं ने जवर्दस्ती शादी से पहले का उपहार मेवाड़ के महाराणा को भेंट किया, और उनको इसे स्वीकार भी करना पड़ा ।

इससे महाराणा को कुछ आंशिक सुविधा हुई; ऐसी बात नहीं क्योंकि उसी समय सिन्धिया ने महाराणा से सोलह लाख रुपये वसूल किये थे । वहाने की कमी न थी । बहाना यह था कि महाराणा ने होल्कर का आश्रय लिया, इसलिए सिन्धिया को दुख हुआ और वह महाराणा को आश्रय देने के लिए आगे बढ़ आये । साथ इन बदमाश जयपुर वालों के हाथ से कृष्णकुमारी को बचाने की हार्दिक शुभेच्छा भी है । ऐसी दशा में महाराणा को दोस्ती का मूल्य तो चुकाना ही पड़ता और वह मूल्य सोलह लाख कूटा गया ।

राजकुमारी के अपमान का अन्त यहीं नहीं हुआ । सिन्धिया ने प्रस्ताव रखा कि उदयपुर को जोधपुर और जयपुर की गड़वड़ मे पड़ने की जरूरत नहीं । सब समस्याओं का समाधान करने के लिए सिन्धिया स्वपं राजकुमारी से शादी करना चाहते हैं ।

सूर्यवंश की कन्या, महाराणा प्रताप के वश की कन्या, कृष्णकुमारी, और उसकी शादी किससे होगी ? किसान के बेटे सिन्धिया से ?

महाराणा के महल में दरवाजा बन्द कर सभी याद करने लगे कि कई पीढ़ी पहले सिन्धिया के पुरखों के हाथों में जो चीज शोभा पाती थी, वह राजदण्ड न था, यहाँ तक कि साधारण तलवार भी न थी, बल्कि हल की मूठ और भैंस की रसी थी ।

इधर कम्पनी जयपुर से शिकायत करने लगी कि वह सन्धि के अनुसार मराठों के विरुद्ध सैनिक-सहायता नहीं दे रहा ।

दूसरी तरफ जयपुर की सेना उदयपुर की छाती पर डटी रहने के कारण

लूट-खसोट करने में असुविधा हो रही थी, इसलिए सिन्धिया ने कम्पनी को लिखा कि वह अपने मित्र जयपुर पर इस बात का दंवाव डाले कि वह अपनी सेना हटा ले, नहीं तो उदयपुर के बदले मराठों का क्रोध जयपुर पर पड़ेगा और जयपुर बरबाद कर दिया जायगा ।

अन्त में सिन्धिया ने लड़ाई कर जयपुर की सेना को उदयपुर से भगा दिया । तिलक तो हो चुका था, पर व्याह न हो सका । शंखों के बदले तोपों की गडगडाहट से वे विदा किये गये । उन दिनों के राजस्थान में न केवल राजनैतिक कमज़ोरी थी, बल्कि नैतिक निर्लंजता की भी कोई सीमा न थी ।

पर युद्ध करने का साहस नहीं था, तो इसीलिए व्याह करने के उत्साह में कमी क्यों होगी ? इस घटना के सौ वर्ष बाद क्या हम यह नहीं देख रहे हैं कि स्त्री के भरण-पोषण की सामर्थ्य न रहने पर भी लोगों में व्याह के उत्साह में कोई कमी नहीं है ?

उदयपुर से जयपुर की सेना जब भाग आई, तो जयपुर ने अपनी मित्रशक्ति, कम्पनी को यह सन्देश भेजा कि अब कम्पनी सिन्धिया पर यह दबाव डाले कि जगत-सिंह और कृष्णकुमारी में शादी हो जाय । शुभ कार्य में देरी न करनी चाहिये, शास्त्र का यह निर्देश याद कर जयपुर ने लिखा कि आगामी वसन्त काल से लेकर वर्षा कृतु के आरम्भ तक शुभ कार्य हो जाना चाहिए ।

कम्पनी राजनैतिक बातों में होशियार थी । उसने न रोगी को मारा, न रोग को, सिर हिलाकर सिर्फ़ इतना कह दिया कि अभी ऐसे कामों के लिए समय नहीं ।

इधर जोधपुर के महाराजा मानसिंह की हालत भी उसी प्रकार शोचनीय हो रही थी । सरदारों के साथ पड़यन्त्र करके सिंहासन पर अधिकार जमा पाने पर भी उनका रास्ता निष्कण्टक नहीं था । जयपुर-महाराज के गुट में ही सिंहासन के एक और दावेदार थे, और उदयपुर-में अपमानित होने के बाद जयपुर के महाराज एक बड़ी सेना तथा इस दावेदार को लेकर मारवाड़ की तरफ चले । कहते हैं कि सम्राट् औरंग-ज़ेब की मृत्यु के बाद किसी राजपूत राजा ने इतनी बड़ी सेना एकत्र नहीं की थी । पर उद्देश्य कितना छोटा और साधारण था, इसका ध्यान आने भाव से लज्जा से सिर झुक जाता है ।

प्रचण्ड संग्राम हुआ । बहुत दिनों तक लड़ाई चलती रही । राजा ने जोधपुर दुर्ग के अन्दर छिपकर अपनी इज्जत बचाई, पर अन्त तक राजा जगतसिंह को ही किसी तरह जान लेकर भागना पड़ा । कम्पनी बहुत दिनों से ही यह कहती था रही थी कि जयपुर और जोधपुर या तो समझौता कर लें, या वे कम्पनी के बीच-बचाव को मान लें । अन्त तक इस मामले में कुछ न होता देख कम्पनी दूम दबाकर खिसक

गई, और उसने यह कहकर सन्धि तोड़ दी कि वह इस पारिवारिक और व्यक्तिगत भगड़े में अपने को फँसाना उचित नहीं समझती।

मार्नसिंह ने अब एक ऐसा कुकर्म किया जिससे उसे कोई भी यहाँ तक कि उसके हमप्याला, हमनेवाला भी उसे शरीफ़ नहीं मान सकते। उसने पठान सरदार अमीरखाँ को रिश्वत में बड़ी रकम देकर उससे यह वायदा कराया कि वह सिंहासन के दूसरे दावेदार को खत्म कर देगा। पिंडारी सरदार ने उसके साथ मित्रता करके पीर की दरगाह में जाकर मित्रता के प्रमाण के रूप में पगड़ी बदली और यह प्रतिज्ञा की कि जोधपुर की गढ़ी में उसी को बैठाया जायगा। इसके बाद दरगाह के सामने अपनी शक्ति बढ़ाने के उपलक्ष में दोनों ने उत्सव मनाया, मुजरा होने लगा तथा शराबें चलने लगीं। इसी समय पिंडारियों ने तम्बू की रस्सियाँ काट दी। नतीजा यह हुआ कि सब राजपूत तम्बू के अन्दर फँस गये। इसके बाद गोली बरसाकर सब मामला ठण्डा कर दिया गया।

‘पर क्या इससे खून की प्यास बुझी ?

नहीं। ज़हर का जो धुआँ सारे राजस्थान में फैल गया था, उसकी हवा बाहरी जगत् में न केवल राजाओं, सैनिकों और सामन्तों तक फैली, बल्कि और भी आगे बढ़ी। माता के मन्दिर की वूप की सुगन्ध अभी भी चारों तरफ़ फैली हुई थी। यदि उसे दबा न दिया, तो ज़हर की सफलता क्या ?

इस बीच जयपुर जोधपुर के साथ लड़ते-लड़ते थककर होल्कर की शरण में गया। पर राम या रावण किसी को तो मरना ही था। दुर्भाग्य की बात यह थी कि यहाँ राम कोई न था; दोनों पक्ष रावण थे।

होल्कर की शरण में जाने के कारण सिन्धिया ने कुछ होकर जयपुर पर आक्रमण किया, और उसे एकदम बरबाद कर दिया। सिन्धिया के शिविर में बैठकर एक अंग्रेज़ दूत ने इस बरबादी का वर्णन यों लिखा था—सब फसलें नष्ट कर दी गई हैं। मकानों की धनियाँ और कड़ियाँ तक उखाड़ ली गई हैं। दरवाज़े और चौखटें भी नदारद हैं। गाँवों के ध्वसावशेष से धुआँ ही धुआँ उठ रहा है।

ज़हर का धुआँ।

मौका जानकर बाज की तरह भपट्टा मारकर पिंडारी सरदार उत्तर आया। जयपुर ने १५ लाख रुपये देकर सिन्धिया को शान्त किया था। अब पिंडारी को शान्त करने के लिए क्या किया जाय ? अब बाकी ही क्या था ?

स्वयं अमीरखाँ भी उस समय कीड़ों-कौड़ी को मुहुताज हो रहा था। अपने किराये के लुटेरों को नियमित रूप से बेतन न दे पाता था, इसलिए वे उसे रोज़ धूप में भूखों खड़ा रखते थे, और जयपुर शहर की दीवार के बाहर तम्बू के बाहर लाकर

उसका बुरी नरह अपमान करते थे। दीवार की उस तरफ से यह तमाशा दिखलाई पड़ता था। फिर भी जयपुर वाले इतने असहाय थे कि जयपुर-महाराज को यह धायदा करना पड़ा कि वे अमीरखाँ को १६ लाख का नजराना और देंगे।

अब तो पठान की हिम्मत बढ़ गई। उसने उदयपुर में आकर कृष्णकुमारी का भविष्य बया होगा, इस सम्बन्ध में महाराणा को हुक्म भेजा। या तो उसके आश्रित राजा मानसिंह से शादी करनी पड़ेगी, नहीं तो पोड़शी रूपवती राजकुमारी को दुनिया में विदा होना पड़ेगा।

नहीं तो ?

नहीं तो एक राजकुमारी की इज्जत के एवज में सब पुरनारियों की इज्जत भी जायगी। इसका साफ मतलब था कि लम्पट पठान पिंडारी राजा के अन्तःपुर में घुसने को तैयार थे।

रजवाड़े में रावाला या राजा का अन्तःपुर एक अलग ही दुनिया होती है। वहाँ अज्ञात गलियों के रास्ते, असंख्य सुरंगों से होकर बरावर पड़वंत्र होता रहता है। उसी में इस कहानी का असनी सूत्र खो गया। पर इतना निश्चित है कि एक भी वीर पुरुष मारे लाज के नारी-हत्या करने का साहस न कर सका। परन्तु वाप-दादों के सम्मान की रक्षा के लिए आपसी भगड़े को भूलकर शत्रु का सामना करने के लिए आगे भी न आ सका। सिर नीचा करके हट भर गया।

महाराणा के चचेरे भाई उस जीभ को कोसते-कोसते हट गये, जिसने इस प्रकार का हुक्म सुनाया था। कृष्णकुमारी का अपना भाई मृत्यु-दण्ड को कार्यरूप में परिणित करने के लिए इस नाते राजी हुआ कि राजकुमारी की हत्या केवल राजा या राजवंश के हाथ से ही हो सकती है। वह तलवार लेकर आगे बढ़ा, पर उसकी आँखों के सामने स्वर्ग का एक अवलंक चित्र आ गया और तलवार हाथ से छूटकर राजकुमारी के पैरों के पास गिर पड़ी।

पर राजकुमारी के माथे पर शिकन तक न पड़ी। सामने पेशोला भील का पानी हिलोरें लेने लगा। महारानी अपनी कन्या को बचाने की सामर्थ्य नहीं रखती थी। वे रोने लगी।

इसी बीच जब पुरनारियों ने यह देखा कि कोई वीर पुरुष राजकुमारी की हत्या के लिए तैयार नहीं, तो उन लोगों ने जहर घोटकर राजकुमारी के सामने पेश किया। उन्हें बताया गया कि यह पाय उनके पिता की तरफ से भेट आया है। राजकुमारी ने सिर नीचा करके पिता के दीर्घ जीवन और समृद्धि की प्रारंभा करते हुए उन्हें अन्तिम प्रणाम किया, और एक ही धूंट में जहर का प्याला पी गई।

उसकी आँखों से एक आँसू भी नहीं गिरा। सिर के अन्दर विष की किया

शुरू हो चुकी थी, फिर भी राजकुमारी ने अपनी माता महारानी से कहा—माँ ! रोओ मत, क्या मैं मरने से डरती हूँ ? क्या मैं तुम्हारी कन्या नहीं हूँ ? मैं क्यों डर्लैगी ? जन्म से ही हम लोग आत्मविसर्जन के लिए तैयार होती हैं। बाहर जाने के लिए ही तो हमारा जन्म होता है। मैं इतने दिन जीवित रही, इसके लिए पिता जी को धन्यवाद !

उस समय भी वह मरी नहीं, यह देखकर जहर का एक और प्याला लाया गया। फिर भी कोई नतीजा नहीं हुआ। फिर एक प्याला आया। फिर भी राजकुमारी के जीवन का दीया बुझा नहीं। दुर्योधन की राजसभा में द्रोपदी का चौर इसी प्रकार समाप्त नहीं हो रहा था। दुःआसन उसे जितना ही खींचता था, वह उतना ही बढ़ता जाता था। क्या श्रीकृष्ण आज भी कृष्णकुमारी की बगल में आकर खड़े हो गये थे ? सब लज्जा, सब दुःख की अन्तिम शरण श्री हरि !

इधर खून का प्याला पिंडारी सरदार और प्रतीक्षा करने के लिए तैयार न था। राजमहल के सामने ही नंगी तलवारें और भरी बन्दूकें लिये पिंडारियों का झुंड खड़ा था। लालसा ने उस समय लूट-खसोट की प्रवृत्ति की आग में धी का काम करना शुरू किया था।

फिर जल्दी-जल्दी एक प्याला आया। कुसुम फूल और उसकी जड़ का रस। स्निग्ध शान्ति के साथ हँसती हुई लुढ़क पड़ी राजकुमारी; कहती गई—अब इसका अन्त हो, अन्त हो !

राजपूत चारणों ने इस घटना का वर्णन करते हुए भाषा के उच्छ्वास तथा रंग की पच्चीकारी छोड़कर इतना ही कहा है—उसे नीद आ गई।

X

X

X

कृष्णकुमारी के हलाहल पीने से राजस्थान नीलकण्ठ तो हो गया, पर क्या अब इसके बाद आपसी मेल के अमृत को पीने का समय आ गया ?

उस समय राजस्थान छोटे-छोटे कमज़ोर राज्यों में बँटा हुआ था। इसलिए वह छोटे-छोटे मराठे और पिंडारी सरदारों का लूटपाट के विरुद्ध खड़ा नहीं हो सका। अब सौ साल बाद सारा देश चिल्ला-चिल्लाकर उससे यही कह रहा है कि वह आपसी भगड़ों को भुलाकर एक हो जाय। जनता की यही पुकार है। क्या राजा इसको मानेगे ।

चन्द्रमहल के दुमंजिले पर जयपुर के पहले के महाराजाओं के तैलचित्र सजीव होकर ताक रहे हैं।

बाहर, अलकतरा लगी चिकनी सड़क पर एक जुलूस जा रहा है, यह राजस्थान की जनता का जुलूस है। वे राष्ट्रीय तिरंगे झंडे को उड़ाकर इस बात की माँग कर

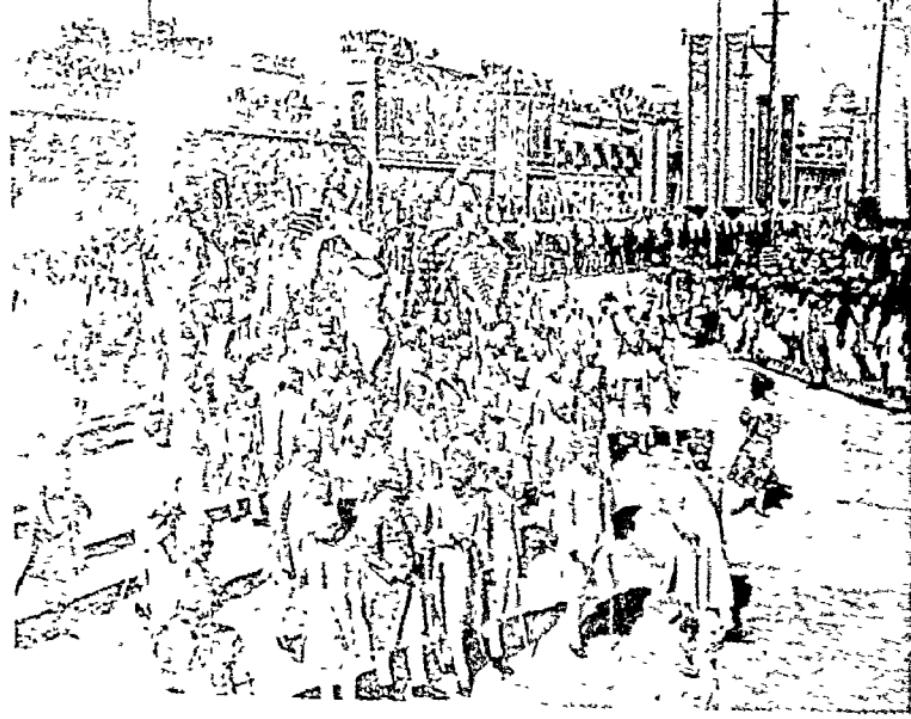
रहे हैं कि रजवाड़े भारत के साथ एक हो जायें । अब तक अपने देश के इतिहास के निर्माण में उनका कोई हाथ नहीं था । वे अब तक पिंडारियों और मराठों की लूट-खसोट को सहने, त्रिटिश रेसिडेंसी का कठोर दबाव भेलने और अंग्रेजों की छत्रछाया में पलने वाले दरवार के विलास-व्यसन का खर्च उठाने के लिए था । दूसरी किसी बात में उनकी कभी कोई पूछ नहीं होती थी ।

जब राजपूत जान हथेली में लेकर युद्धक्षेत्र में कूदते थे, तब केसरिया बाना पहनते थे । यह रग वही था जो संसारत्यागी सन्यासियों का है । उनके उस जर्द बाने को देखकर ही गत्रुपक्ष समझ जाता था कि वे 'करेंगे या मरेंगे' की सौगन्ध खाकर युद्धक्षेत्र में उतरे हैं । आज वे ही राजपूत सफेद गांधी टोपी सिर पर रखकर नये ढंग की लड़ाई में उतरे हैं ।

आईं महाजन्म की बेला !



राजस्थानी चारण ।



शाही वारात का जलूस।



दो राजपूत चीर।

राजअतिथि

पिछले जन्म की कुछ चर्चा अप्रासंगिक न होगी। उस जन्म या उस युग में राजाओं और सामन्तों की भीतरी कहानी में राज्य की प्रजा का कोई हाथ न होता था। उसका उतना भी हाथ नहीं होता था, जितना दूर पेड़ों पर चढ़कर फुटवॉल का मैच देखने वालों का खेल में होता है।

भीतर जो कुछ होता था, उसका परदा केवल पाश्चात्य राजपुरुषों या राजगोष्ठी के दर्शकों के लिए उठाया जाता था। जो देशी दर्शक रहते थे, वे स्वगोत्रीय राजे-महाराजे, सभाभद या विशेष रूप से अनुग्रहप्राप्त चन्द लोग होते थे। चन्द लोग भी ऐसे होते थे, जिनकी आँखें अतिथियों पर, हाथ रंगमंच की ड्रापसीन खीचने वाली रस्सी पर और कान हिज भास्टर्स वाइस के ग्रामोफोन के चोरे से लगे होते थे।

कान पर एकमात्र कर्णधार अर्थात् राजा वहादुर का रंच भर भी टस से भस न होने वाला अधिकार होता था। हँसते-रोते, उठते-बैठते, सीते-जागते वे सदा इस शास्त्र-वाक्य पर चलते थे—यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि। हृदय में विराजमान आराध्यदेव 'दरखार' अर्थात् महाराजा की तरफ से यदि हुक्म हो कि असुक व्यक्ति को बुला लाओ, तो यदि उसे वाँधकर लाया जाय, तो जी हुजूरी में होड़ करने वाले आभास पा जायेंगे कि प्रभुभक्ति में कमी आ रही है और इशारे से यही बात समझा भी देंगे। कानाफूसी की लहर उठते सागर में प्रभुभक्ति में भाटा आने का इशारा भयंकर हो सकता है। कहाँ पर दलदल है और किस भैंवर में पड़ने से अथाह सागर में पड़ जाना होगा, इसका कुछ ठीक नहीं। इसीलिए मुसाहबों की तत्परता में कभी कमी नहीं आती।

इसीलिए राज-अतिथियों की सेवा और मनोरंजन में कभी कोई त्रुटि या लापरवाही नहीं होती थी। काश ! अतिथियों की इच्छा पूरी करने में जितनी लगन और तत्परता दिखलाई जाती थी, वह किसी दूसरे बड़े काम में लगाई जाती। परन्तु अतिथि तो सर्वदेवमय होते हैं, विशेषकर यदि वे सागर-पार के हों।

हिन्दुओं के तृतींस करोड़ देवी-देवताओं की तरह राजाओं के देवताओं की संख्या का कोई लेखा-जोखा न था। प्रत्येक शीतऋतु में जब यूरोप और अमेरिका का मन श्रोवरकोट के बोझ, कुहरे की कालिमा और तुषार की हिमधारा से ऊबकर दक्षिण सागर के ताढ़ और नास्तियल के कुँजों से पूर्ण, चमकते सूर्य के देश में

वायु-परिवर्तन के लिए व्याकुल हो उठता, तब चमड़े की जिल्द वाली पाकेट बुकों से घूमने लायक स्थानों की तालिका सामने आ जाती। उस तालिका में हमेशा ही भारत को प्रथम स्थान का गौरव प्राप्त होता था, क्योंकि इतने प्रकार के सुन्दर दृश्य और मनोरंजन के साधन और कहीं न मिल सकते थे। यहाँ से परे और साथु, वाघ और बनारस, हिमालय और ताज, शिकार पार्टी, और इन सबसे बड़ा आकर्षण महाराजा आंव .. .। उस साल रिवियेरा के किनारे या लन्दन अथवा हॉलीउड के होटल में या इण्डिया क्लब की पार्टी में हिज हाइनेस दि महाराजा या युवराज या उनके ब्रिटिश कर्णधार ने खुला निम्रण दे दिया था कि जिस साल चाहिए, जब जी चाहे, पधारिये और कृतकृत्य कीजिये, हमारे राज्य की अतिथि-सत्कार की सब तरह की सुविधायें आपके चरणों पर होंगी। केवल यही नहीं, दूसरे राज्यों में भी आपके राजग्रतिथि होने का रास्ता खुला रहेगा।

इस कारण प्रत्येक शीत क्रृतु में मानसरोवर की शुभ्र हंस-पंक्तियों की तरह सफेद चमड़े वाले पर्यटक नर-नारियों के दल आते दिखाई देते। डुइंग इण्डिया अर्थात् भारत में ब्रेमण कर रहा हूँ या उसका शाद्व कर रहा हूँ, ऐसा प्रत्येक गौरा सीना तानकर गौरव के साथ कह सकता था। कही यह कह सका कि मैं हिज हाइनेस का अतिथि रहा, तब तो फिर सोने में सुगन्ध। इतना कहते ही समाज में उसका आसन कितना ऊँचा हो गया, और वह कितना दिलचस्प व्यक्ति मान लिया गया, यह बताने की जरूरत नहीं। यह बात तुम जो शिकार में हूँकाई करते थे, जानवर भगाने के लिए भाड़ियाँ पीटते थे, कैसे समझ सकते हो?

यह प्रश्न करके देशी राज्य प्रजापरिषद् के एक नेता ने मेरी ओर कौतूहलपूर्ण और साथ ही चौट करने वाली दृष्टि डाली। मिर्जा इस्माइल ऐवेन्यू की नई चमकती हुई सड़क, नहीं नहीं राजपथ पर एक कैमरे की दूकान में मैं फोटो उतारने का कुछ सामान लेने गया था। ये महाशय बातचीत करने में बड़े पढ़ थे। उन्होंने झट मुझ से परिचय कर लिया, और मेरे सामने एक प्रश्न रख दिया। बोले—महाशय जी, आप सुरेन्द्रनाथ और देशबन्धु चित्तरंजन के प्रान्त के हैं, महज राजाओं की कीर्ति न देख, प्रजा की बात भी सुनते जाइये।

खद्र की टीपी को जरा मजेदार ढंग से नचाकर बोले —महाराजा लोग अभर हो। उनकी तरह उदार और दरियादिल शायद ही कोई हो। उनके राज्यों को कांग्रेस के आन्दोलन से दूर रखकर उन्हे जिला रखा गया, इसी से ब्रिटिश बुद्धि का सबसे सुन्दर परिचय मिलता है। गदर के बाद बड़े लॉडंग कैरिनग ने लिखा था कि यदि हमारे महाराजाओं ने समुद्र के बाँध की तरह इस लहर को रोका न होता तो उसके एक ही धैरेड़े में ब्रिटिश साम्राज्य चूर-चूर हो जाता। यदि आपको विश्वास न हो,

तो एलफिनस्टीन के लेखों को पढ़कर देखें। उन्होंने लिखा है कि यदि १८५७ के जमाने में निजाम, सिंधिया और सिक्ख न होते, तो अंग्रेज कहाँ रहते?

मैंने ज़रा हिचकिचाहट के साथ कहा—यह सब बड़ी-बड़ी, राजनीति की बात है। मैं देश-पर्यटन करने आया हूँ। मझे क्या मतलब? परचून के व्यापारी से मोतियों का मोल भाव!

उन्होंने इसका कड़ा उत्तर दिया, बोले—मतलब कैसे नहीं। जन-साधारण की भावनाओं को आपने नहीं जाना, तो कुछ भी नहीं जाना। परचून के व्यापारी को भी मोतियों की खबर रखनी पड़ती है, भले मोती सच्चे न हों, दो दिन में आव जाती रहे। देशी राज्यों जैसी अगर अनोखी चीज न होती, तो दुनिया से एक रोमान्स ही उठ जाता।

राजअंतिमियों की जिस प्रकार आवभगत होती थी, और उसके पीछे जो भावना होती थी, उसे ये महोदय अच्छी तरह समझते थे। उनके अनुसार यह एक प्रकार का प्रचार-कार्य था, मूक प्रेरणी थी कि इस 'चीज' को वरकरार रखा जाय, तभी तो ब्रिटिश अंतिमियों की इस प्रकार आवभगत और मनोरंजन हो सकता था। तीर ठीक जगह पर बैठता था, और बड़े-बड़े अंग्रेज अफ़सर इस यंत्र को चालू रखने में कुछ उठा नहीं रखते थे। उनकी अपनी जरूरत जो पूरी होती थी।

पर मेरी आँखों के सामने राजपूत अंतिमि-सेवा के चित्र थे। वचपन से उनकी उदारता और महिमा की बात सुना करता था।

उन महाशय ने हाथ के एक इशारे से उन भावनाओं को दूर करते हुए कहा—मैं राजाओं की श्वेतांग अंतिमि-सेवा में उस ऐतिहासिक अंतिमि-सेवा की गन्ध तक नहीं पाता, और यदि कहीं उसका लेश हो भी तो भी मैं इस जन-जागरण के युग में साधारण व्यक्ति की सामान्यता को अंतिमि परायणता के वर्तमान आभिजात्य पर तरजीह दूँगा। यह इनकलाव का युग है।

वे यहीं पर नहीं रुके, बोले—जिन ब्रिटिश नाइटों और अमेरिकन रूंजीपतियों के मुँह में इन राज्यों की मेहमाननवाजी का खून लग चुका है, वे ही आज विदेशों में यह शोर भचा रहे हैं कि इन राज्यों को भारतीय सार्वभौम शक्ति के दायरे में ले आना भयंकर अत्याचार होगा। आज रात को अंग्रेज सेनापति आकिनलेक की विदाई की जो दावत दी जा रही है, उसमे वे यदि यह कह बैठे कि मध्ययुग को इन राज-महिमाओं को ज्यो का त्यो बनाये रखना चाहिए, तो क्या आपको कुछ आश्चर्य होगा? अखबारों को ज़रा खोलकर देखिये, तो ज्ञात होगा कि कितने लॉर्ड और लेडियाँ राजाओं की सम्भावित समाप्ति पर सागर पार बैठी खून के आँसू रो रही हैं। कहीं-कहीं यह भी आवाज उठ रही है कि काग्रे स ने मौका पाकर बैचारे राजाओं से ऐक्सेशन

या भारत सरकार में अन्तर्भुक्त होने के शर्तनामे पर दस्तखत करवा लिये हैं, और यह तो अभी इन्कादा है, आगे-आगे देखिये होता है क्या ?

मैंने मजदूरी से उन महाशय की बात बीच में काट दी । मैंने उन्हें स्मरण करा दिया कि कई राजा अपनी खुशी से विलीनीकरण के लिए तैयार थे, और उनके मन में अपनी प्रजा के मुकाबले कुछ कम देशभक्ति नहीं थी, और लॉर्ड माउण्टबेटन ने भी इसमें सहायता दी ।

इसके उत्तर में उन महाशय ने इतिहास के पन्नों को भेरे सम्मुख खोलकर रख दिया । बोले—देशभक्ति न हो, तो क्या हो ? निटिश इण्डिया तो बना ही इस प्रकार था—येन केन प्रकारेण छल-बल से एक के बाद एक राज्य पर अधिकार किया गया था । जिनको बहुत ही नावालिंग या निरीह ममझा गया, उन्हीं को देशी राज्य बना कर रख दिया गया । उन्होंने पंजाब और सिन्ध को लड़ाई में जीता था, बाकी काम छल-बल कौशल से पूरा किया । सितारा, नागपुर और झाँसी को डाकिट्न आंव लैप्स याने इस बहाने ले लिया था कि राजा के कोई लड़का न था, दक्षिण में कुर्ग और उत्तर में अवध इस बहाने हथियाये गये कि वहाँ कुशासन था, विलकुल मुगल ढग था । अवध के नवाब इतने राजभक्त थे कि लॉर्ड डलहौसी को और कोई बहाना ही नहीं मिला । अन्त तक इसलिए इसकी सफाई में यह लिखना पड़ा कि जिस शासन के कारण लाखों लोग दुर्दण में पड़े हुए हैं, उसको कायम रखना मनुष्य और ईश्वर की आँखों में दोषी ठहरना है । ह. हः हः इससे बढ़कर ढोंग और क्या हो सकता है !

क्या करता, उनके साथ एकमत होना पड़ा ।

पर उन महाशय ने मुझे इतने पर ही नहीं छोड़ा, बोले—सोचकर देखिये कि १८५३ में लंदन के 'टाइम्स' पत्र ने यह सम्पादकीय लिखा था कि अंग्रेजों ने रजवाड़ों को प्राच्य तानाशाही के अवश्यम्भावी परिणाम, विनाश से बचा लिया । इस कथन का अर्थ यह था कि अपने यहाँ की प्रजा के विद्रोह से ये राजा कब के समाप्त हो जाते, अंग्रेजों ने इन्हे बचा लिया । यद्यपि ये राजा नाकारा, सब तरह के पापों में लिप्त और दोषों के भंडार हैं, फिर भी इन्हे समर्थ बनाकर रखा गया था, भले ही इनके पर काट दिये गये हों, जिम्मेवारी इनके हाथ में रखी गई हो । जरा यह तो सोचिये कि इन राजाओं को इस प्रकार जिला रखने के फलस्वरूप राजकोप के हृष्ये कहाँ जाते हैं ?

कहकर उन महाशय ने मुझे इस प्रकार घूरा, मानो मैं इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए मजदूर हूँ ।

वे फिर बोल उठे, मानो कैसर की सेना की विग वर्धा तोप चालीस मील से पैस्स महानगरी पर लगातार गोले बरसा रही हो । बोले—महाशय, यह जो टाइम्स है, यह भद्रश्रेणी के लोगों का अखबार है । यह साम्राज्यवादी तो है ही, माझ दी माझ

इसके विचार बुजुंवा है । फिर भी कभी-कभी इसमें जनसाधारण की वाणी भी घटनित हो जाती है । टाइम्स में एक बार किसी ने लिखा था कि जानवुल ने यह मान ही लिया है कि सरकार प्रजा के लिए नहीं है, बल्कि प्रजा ही राजा के लिए है, इसलिए ग्रिटिश सरकार इन बेकार राजाओं की राजागिरी की रक्षा कर देशी राजाओं के प्रति सम्मान के कर्तव्य का पालन कर रही है ।

मैंने सोचा कि इस भले आदमी के लहजे को कुछ सुधारना चाहिए, नहीं तो लोग क्या सोचेंगे । इसलिए मैंने कहा—अब तो भारत सरकार ने सार्वभौम सत्ता की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली है । अब सब कुछ ठीक हो जायेगा । अब आप क्यों सोच में पड़े हैं ?

बात सच थी । उन महाशय को अकस्मात् स्मरण आया कि अब वे १६४७ के पहले के राजस्थान में नहीं हैं । जिस बांस की बांसुरी में वह अबतक राग छेड़ते थे सभा शादि करते थे तथा राजनीतिक प्रचार करते थे, अब न वह बांस ही रहा, और न वह बांसुरी । देश में जो बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ था, उसके कारण बांसुरी का पुराना राग फटे बांस की तरह जान पड़ता था ।

अंग्रेज चले गये थे, पर सुलिति अंग्रेजी भाषा और साहित्य का प्रभाव मन से नहीं गया था ।

इधर उन महाशय ने जहाँ से प्रसंग शुरू किया था, याने राजसी-ठाट से अतिथि-सेवा, फिर वही सूत पकड़ लिया । विश्वास के स्वर में कहा रजवाड़ों के राजकार्य में अतिथि-सेवा को सबसे अधिक मर्यादा दी जाती थी । क्या आप इसका प्रमाण चाहते हैं ? आप पता लेकर देखिये कि रजवाड़ों के प्रत्येक राज्य में एक मिनिस्टर आँव एन्टरटेनमेन्ट्स याने अतिथि-मनोरंजन मंत्री भी होता है, और यही मंत्री वहाँ को सब से बुद्धिमान और प्रभावशाली मंत्री होता है । शायद सबसे धनों भी ।

उन महाशय की बातचीत से एक इंगित तेज छुरी की तरह चमक गया ।

पर अतिथिगण यह कहेंगे कि राजाओं के उदार और मित्रता करने के लिए उत्सुक मन का परिचय इस अतिथि-सेवा में प्राप्त होता है, शीर यदि अतिथियों को मनोरंजन नहीं किया गया, तो फिर अतिथि-सेवा क्या हुई ? यदि वाहर-वाहर होटल में रहकर, राजमहल के बाहरी हिस्से को और मन्दिर के कंगूरे को देखकर वापस जाना पड़ा, या अधिक से अधिक कुछ पत्थर की मूर्तियों तथा गालीचों को खरोदकर जाना पड़ा, तो वैसा देश-प्रमण तो घर में बैठकर गाइड बुक या भ्रमण-कहानी पढ़कर समाप्त किया जा सकता है । उसके लिए डाइग ईण्डया शब्द का प्रयोग तो नहीं हो सकता । उसके लिए शिकार पार्टी, दरबारी मुजरा, हांथी या ऑट पर चढ़कर अभिसार के दूंग पर 'मनोरंजक सफर, जरी और जवाहरात से मुंदे हुए राजा और महाराजाओं

के साथ फोटो उत्तरवाना, राह चलते किसी गपेरे, साधु या बरात के साथ दो-चार याँ ही शराफ़त की बातें करना चाहरी है। और इसके बाद फिर फोटो उत्तरवाना।

यह सब न करके क्या समुद्रपार के सम्मानित अतिथि होटल के बरामदे में घैठकर कतार में आने वाले व्यापारियों का माल देखकर दिन काटें? क्या वे इस प्रकार घैठकर नग्ने के तीर पर कान के पास प्रदद्य से लगाये हुए 'शाहजहाँ चमेली इन्हें' कों सूंधकर परेशान हों, और फिर पुरानी तलवार, पिचकी हुई ढाल और दृटी हुई मूर्ति का सोदा करते रहें? जरा सोचिये कि यह कितनी हृदय-विदारक घटना होगी। मेरी वगल में कमरे के एक फान्सीसी पर्यटक (उन्होंने अपना नाम गृह रखने को कहा है) कई बार रजवाहाँ में इस देश की अतिथि-सेवा देख गये हैं। उन्होंने जब पहले-पहल देखा कि सकेद राजपूती दाढ़ी फैलाकर व्यापारी नकली जवाहरत और चमकहीन पत्थर अपने टीन के बक्स के पास फैलाकर बैठे हैं, और उनको कोई पूछने वाला नहीं, तब उनको ऐसा प्रतीत हुआ भानो अपने मरे हुए लड़कों को सामने रखकर शोकातं पिता बैठा हो। न वे बात ही करते थे, और न अपनी चीज़ें जबरदस्ती किसी के मत्ये मढ़ना चाहते थे। अब वे गम्भीरतापूर्वक भौत बैठे इसकी प्रतीक्षा में थे कि कोई साहब इन्हें खरीदना चाहें, तो वे बैठें।

धिकार है, यह कोई समय काटने का तरीका है? इसके बजाय वाय साल्ट में भरे से स्नान करके भिड जाइट व्ह्यू (आधी रात जंसी नीली) डिनर जैकेट और सुधा-धबल कमीज़ की चमक से प्रकाशमान सन्ध्या के समय महाराजा के क्लब में सभासद और मंत्रीमंडल के साथ उठना-बैठना कितना मोहक है? उत्तमें काकटेल के साथ जौ खोलकर बातचीत होगी। केवल यही नहीं, अगले दिन की शिकार पार्टी के लिए निमंशण की सम्भावना भी उसी में रहेगी। वही ठीक है। अमरसिंह, चन्द्रसिंह, रणजीतसिंह और न मालूम कौन-कौन वहाँ होंगे। वहाँ सब-के-सब नर के रूप में सिंह होंगे, और समुद्र पार से आर्य अतिथि होंगे सिंहराज।

इन शिकार पार्टियों की उपेक्षा करना गलती होगा। इन्हें राजपुरुषों के मनो-विनोद या युद्ध के अभाव में दूसरी दिशा में अपनी कमंशकित लगाने के रूप में देखना ठीक न होगा। राजस्थान की मरुभूमि में भी जंगल है, और ऐसे जानवरों की कमी नहीं, जो मनुष्य और उसकी फसल के शत्रु हैं। जंगल के किनारे जो वसते हैं, वे यही मनाते रहते हैं कि कब शिकारी आयें, और उन्हें इन जानवरों से मुक्त करायें, तभी वे किसी नये शेर, चीता या अन्य पशु से विना परिश्रम किये छुटकारा पायेंगे। इसके अलावा शिकारी जब जाते हैं, तो खूब खचं करते हैं, जिनसे जिस इलाके में वे पधारते हैं, उसमें खुशी की लहर दौड़ जाती है। इसके अलावा स्पया-आना-पाई से ही उस अनन्द को नापना ठीक न होगा, जो उन्हें इन अवसरों पर प्राप्त होता है। शिकार

में साधारण ग्रामवासियों, यहाँ तक कि स्त्रियों घोर लड़कियों को हँकेयों के रूप में अच्छी बुद्धीश मिल जाती है।

इसका परिणाम क्या होता है, इसका पता इससे चल जायगा कि खान देश में जेम्स उटराम को किस प्रकार याद किया जाता है। यह सौ वर्ष पहले की बात है। दस वर्ष तक उटराम यहाँ शासक रहे। इसी बीच उन्होंने उस युग की तोड़ेदार बन्दूक से ६ वाघ और चीते, २५ भालू और १२ जंगली भेंसों से असहाय आदिवासियों को छुटकारा दिलाया। हर साल वह महाराजाओं की तरह सभासदों और अतिथियों से घिरकर शिकार के लिए निकलते। आदिवासी अब भी उन सेवाओं के कारण उटराम साहब को देवता की तरह मानते हैं। उन्हीं की सेवाओं का परिणाम है कि आदिवासियों ने खुशी से सभ्य शासन यंत्र के सामने सिर झुका दिया, और ब्रिटेन का भंडा अपने कंधों पर ले लिया। अब भी वे उस सेवा के लिए कृतज्ञ हैं।

इसी प्रकार मारवाड़ के आदिवासी मेड़ों को भी पशु शत्रुओं से छुटकारा मिला था। जब सवाई माधोपुर या चित्तौड़ के किसी पड़ीसी जंगल में महाराजा के शिकार का तम्बू बन जाता है, उस समय न केवल प्रजा के साथ महाराजा की सरकार का सम्पर्क स्थापित होता है, बल्कि राज्य का प्रधान कर्तव्य सुरक्षा भी सिद्ध होता है। आज गणराज्य के युग में राजतंत्र के उज्ज्वल पहलू को भुला देना उचित न होगा।

इन शिकारों की सार्थकता का एक उदाहरण में देना चाहूँगा। जिस समय की बात में लिख रहा था, यह घटना उसके बाद की यानी राजस्थान के भारतीयकरण के बाद की है। इस इलाके में वाघ का अत्याचार बहुत भयानक हो गया। गांव के इर्द-गिर्द जो शिकारी बसते थे, उन्होंने घुटने टेक दिये, और कहा कि यह रोग उनके वश का नहीं। गायें, भेंसें, आदमी सब मारे जा रहे थे। इस युग की जनता के मुख-पात्र विधान सभा के सदस्य होते हैं, न कि राजा। उनके प्रयास से राजस्थान की सरकार इस सम्बन्ध में कुछ करने के लिए तैयार हो गई। सरकार की ओर से पुर-स्कारों की घोषणा होती रही, और शिकारियों को प्रलोभन दिये जाते रहे, पर कोई भी वाघों को बाल बांका न कर सका, और विपत्ति ज्यों की त्यों बनी रही।

तब राजस्थान सरकार ने वहाँ के सब सामन्त राजाओं से यह अनुरोध किया कि वे इस वाघ-विपत्ति से देश को छुटकारा दिलायें। पर अब इन सामन्तों को प्रजा से लगान बसूल करने या सेवा प्राप्त करने का अधिकार था। राजा सिर्फ़ मासिक भत्ता पाते थे, और जितने जागीरदार थे, उनकी हालत खराब थी और भविष्य अनिश्चित था। इसलिए वाघ अपना काम करते रहे। सामन्त राजाओं ने अपनी बन्दूकों और राइफलों को बेचने का विज्ञापन निकलवा दिया, और सरकारी जिला मजिस्ट्रेट यह हिसाब लगाते रहे कि जितनी बन्दूकों का लाइसेंस मिला हूआ है, उनकी फीस

पूरी-पूरी वसूल हो रही है या नहीं।

पहले के जमाने के सैक्रेटरी आव स्टेट मार्टेग्यू साहब जिन दिनों १६-१७-१८ का नया शासन चलाने के सिलसिले में भारत आये थे, उन दिनों के उनके रोजनामचे को देखने पर ज्ञात होता है कि अक्सर सप्ताह के अन्त में अर्धात् शनिवार और रवि-वार की छुट्टी में वह दिल्ली से किसी राजपूत राजा के इलाके में विश्राम के लिए चले जाते थे। विश्राम क्या था, वे शिकार के लिए परिष्रम करते थे। बात यह है कि उद्योगी पुरुषों का विश्राम भी और ढंग का होता है। साग और भर्ता खाने के बाद सोकर डकार लेते-लेते ताश और चौपड़ में जो विश्राम होता है, उससे न तो वीर उत्पन्न हो सकते हैं, और न साम्राज्य बन सकते हैं।

मार्टेग्यू को सूर्योदय से सूर्यास्त तक दिमाण और कलम चलानी पड़ती थी, ठीक उसी प्रकार जैसे सभी सरकारी उच्च कर्मचारी करते हैं, या उनसे भी अधिक। पर उनके विश्राम का ढंग ऐसा था, जिससे शरीर और मन दोनों स्वस्थ रहें, और साथ ही साथ गरीब प्रजा का भी उपकार हो। सुदूर मुफस्सिलों में ब्रिटिश कर्मचारियों के लिए अपनी जनश्रियता और घाक कायम रखते, साथ ही अपनी जाति के शासन को जारी रखने के लिए इस तरह का मनोरंजन बहुत सुविधाजनक था, इसमें सन्देह नहीं।

पर उन्हीं की कुर्सियों पर आज जो देशी कर्मचारी बैठे हैं, उनमें से अधिकांश विलकुल वैष्णव या निरीह हैं।

हम लोगों का शासन-यंत्र पहले के जमाने की तरह एक यंत्र है, पर इस समय जो उसके यंत्री बने हुए हैं, उन्हें ब्रिटिश यंत्रियों के गुणों को अपनाना पड़ेगा। नहीं तो यंत्र और यंत्री यदि दोनों ठीक भी रहें, तो भी इसे चलाने के लिए जिस लुभिकेशन या चिकनाई की जरूरत है, वह नहीं मिलेगी। इसका परिणाम यह होगा कि कल-पुर्जे चिरं-चिरं की आवाज़ करते रहेंगे।

मार्टेग्यू की उक्त शिकार पाटियों में जो अंग्रेज़ शिकारी होते थे, उनमें से कौन पहले जंगल में घुसेगा, और कौन पहले गोली चलायेगा, इन बातों के सम्बन्ध में बड़ी होड़ रहती थी। बात यह है, कि जिस हाथ से बाध मारा जाता है, उसी की सम्पत्ति हो जाता है।

शिकार में हमेशा यही नियम चला है। इसलिए होड़ करके बहादुरी दिखलाना राजपूतों के शिकार में बराबर देखा जाता था। परदेशी की तुलना में अपने को बड़ा करके देखने के फलस्वरूप बहादुरी सम्बन्धी यह होड़ अक्सर विरोध का कारण भी बन जाती थी। सम्राट् श्रक्ष्वर ने महाराणा प्रताप के विशद्व न केवल बड़े-बड़े राजाओं को खद्दा कर दिया था, बल्कि उनके सभे भाई शक्तिसिंह को भी उनके विशद्व लड़वाया

था। दो महावीर भाइयों में भगड़े का सूत्रपात शिकार से ही हुआ था। दोनों एक साथ घोड़े दौड़ा रहे थे, शिकार के समय इस बात पर भगड़ा हो गया कि कौन अधिक दक्ष है।

पर भगड़ों से क्या फ़ायदा? छत पर पतंग उड़ाते समय पड़ीस की दो छतों में से किस से सुतली मैं ढेला बाँधकर पतंग को काट दिया गया, इस पर कई बार हम दुर्वल लड़कों में भगड़े हुआ करते हैं। हमारा यह बचकाना भगड़ा भी मुगल और राजपूतों की लड़ाई की तरह होता है, उसमें क्षमा का कोई स्थान नहीं होता। अन्त में हम लोग मुहल्ले के मोड़ पर मुक्के तान-तानकर दूसरे गुट के लड़कों को ललकारते हैं कि अगर मर्द हो, तो उतर आओ, हो जायें दो-दो हाथ! ऐसे गाल बजाने से क्या फ़ायदा?

तब दूसरे पक्ष के लड़के मजवूर होकर मैदान में आते हैं, और गालियों और तू-तू, मै-मै के बदले घूसे और थप्पड़ चलते हैं। कुछ भी हो, परन्तु हम इस भगड़े को इस हद तक नहीं ले जाते कि अखाड़े मैं जा बाकायदा डंड-बैठक करते या कुश्ती लड़ें। हाँ, हमारे गुरुजन यह देखकर थोड़े दिनों के लिए अप्रसन्न अवश्य हो जाते हैं कि अच्छे लड़के बनने के मार्ग में अड़चनें पैदा हो गई हैं।

पर उन्हें ऐतिहासिक भाइयों के भगड़े में यह तय हुआ कि कौन अधिक बहादुर है, यह सम्मुख युद्ध में तय हो जाय। इसलिए दोनों भाई बछियाँ लेकर एक दूसरे पर टूट पड़े।

बड़ी भयंकर बात थी। श्रपने बाप के चौबीस बेटों में प्रतापसिंह और शक्तिसिंह सबसे साहसी और युद्धकुशल थे। भेवाड़ के पहाड़ों के ऐन उस पार मुगल सेना देश पर कूद पड़ने के लिए तैयार खड़ी थी, पर यहाँ शिकार को लेकर भाई-भाई में लड़ाई शुरू हो गई।

द्वन्द्व युद्ध के लिए जिन नियमों का निभाना आवश्यक था, वे भी ठीक कर लिये गये। जितनी दूरी से बर्ढ़ी लेकर हमला करते का नियम था, वह पैरों से नाप ली गई। सामन्तगण सांस रोककर देख रहे थे कि अब क्या होगा? लड़ाई रोकने का कोई उपाय दिखाई नहीं पड़ता था। कहते हैं कि वीरधर्म में ऐसे भौकों पर क्षमा का कोई स्थान नहीं होता।

इतने में दोनों भाइयों के बीच में राजपुरोहित आकर खड़े हो गये। उन्होंने अनुरोध किया कि वे युद्ध से बाज आवें। पर युद्ध का नशा सवार था, एक भाई को मरना ही था।

पुरोहित ने जब यह हाल देखा, तो उसने श्रपने सीने मैं छुरी भोक्कर आत्म-हत्या करली। ब्रह्महत्या से राजरक्त की पिपासा शान्त हो गई।

पर शक्तिसिंह को भेवाड़ छोड़कर चला जाना पड़ा । वह कहाँ गये ? वह अपने भाई और अपने देश के शत्रु सम्राट् श्रक्कबर के शिविर में चले गये ।

इसी प्रकार एक परिस्थिति संकड़ो वर्ष मांटेग्यू साहब की शिकार पार्टी में उत्पन्न हुई । भगड़ा इस बात पर हुआ कि किसके हाथ से शिकार मारा गया । इस पर बुद्धिमान् मांटेग्यू साहब ने हँसकर यह फैसला किया कि चिट्ठी डाल दी जाय । जिसका नाम निकल आयेगा, उसे शिकार का सम्मान दिया जायगा ।

दोनों अंग्रेजों ने इस फैसले को खुशी-खुशी मान लिया । इसी को रिपोर्ट (खेल) कहते हैं ।

व्यक्तिगत बीरता में हम भारतीय कभी किसी से पीछे नहीं थे । पर हम लोगों ने देश को छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त कर रखा था । जब बाहर के आक्रमणकारी एक पर हमला करते थे, तो दूसरे मीठी नींद सोया करते थे । इसी प्रकार विदेशियों ने एक-एक कर सारे देश को अपने पंजे में कर लिया और अंग्रेज़ों ने ऐसा सबसे बड़ा साम्राज्य क्रायम कर लिया । जिसमें सूर्य कभी प्रस्त नहीं होता था । क्या हमने इति-हास से वह सबक सीखा ?

शिकारी और स्वप्नदर्शी

उस शिकार पार्टी की बात में कभी नहीं भूल सकता ।

उन दिनों मैं राजस्थान के जिस इलाके में था, उस पर बाघ महाराज ने दया करना शुरू कर दिया था । उसी प्रकार की दया जैसी बंगल में श्रोता बीबी (हैजा) की होती है । कोई उसके हाथ से बच नहीं सकता । शेर एक ही था, पर चार सौ भादमियों का जीवन दूधर किये था । कोई भी किसी दिन उसके भुंह का कौर बन सकता था । तीस भेंसों के कंकाल तथा टेढ़े-मेढ़े सींग जंगल में उसके अस्तित्व की गवाही देते थे ।

हम लोग एक लड़खड़ाती हुई कार पर सवार थे । रास्ते के नाम पर कुछ भी नहीं था । केवल पगड़ंडी की रेखा थी । कभी तो हम कार पर सवार रहते, और कभी कार हम पर इस अर्थ में सवार रहती कि हमें उसको ठेलकर आगे बढ़ाना पड़ता । इस रास्ते से शायद कभी कोई भैसागाड़ी जैसे-तैसे जाती हो, पर कार कभी नहीं चली होगी । इंग्लैण्ड या अमेरिका में जो लोग कारें बनाते हैं, उन्हें अगर यह मालूम हो जाय कि इस प्रकार की पगड़ंडी में वे चलेंगी, तो शायद कारें बनाना ही छोड़ दें ।

—यह भी तो हो सकता है कि कारों की भाँग बढ़ने की ग्राशा में वे उत्साहित होकर और अधिक कारें बनाते । मेरे मजाकपसन्द मेज़बान ने उत्तर दिया ।

उनकी राय यह थी कि हूँकाई करने वालों की सहायता से शेर के शिकार में क्या बहादुरी ? उससे कहीं अधिक आनन्द और बहादुरी भचान बनाकर शेर के आगमन की प्रतीक्षा करने में है । जैसे देवताओं को अर्ध देकर उनका आह्वान किया जाता है, उसी प्रकार शेर को खाना देकर लुभाया जाता है । यदि शेर कृपा करके उस दान को स्वीकार करने आये, तभी मुलाक़ात हो तो सबसे श्रच्छा है ।

श्रीर पूजा का मंगलघट कहाँ स्थापित करना पड़ेगा ? जहाँ इसके पहले उनका आविर्भाव हुआ था । सम्भव हो तो इसके पूर्दं जिस पर उन्होंने दया की थी, उसी के बचे-झूचे हिस्से को लेकर घट बनाया जाय ।

गत तीन महीनों से शेरसिंह (राजपूतों के देश में बाघ को भी सिंह कहने को जी चाहता है) प्रतिदिन या बीच में एक ग्राघ दिन का अंभा देकर एक भैस का बलिदान गृहण करते थे । और गत दो दिनों से, मैं भूल गया था कि दो रातों से हम

लोग उनका बलिदान करते के लिए वनवासी हो चुके थे ।

यह तस्खल-वास नहीं था, बल्कि हम तस्खल-शिरन्वास कर रहे थे । मैं विलकुल अनाड़ी, अनभ्यस्त और असहिष्णु तरीके से एक पेड़ पर बैठे हुए मचान से हिलगा हुआ था, और मेरे साथ थे मेरे वृक्षसाथी राव किशनलाल जी । मैं जो वचपन से सब तरह के नटखटपन से दूर रखा जाता था, जिसे छीक, छिपकली और दायीं आंख फड़कने के शुभाशुभ लक्षणों के संस्कार मिले थे, भले ही वह इन विधि-निपेधों की लक्षण-रेखा से बाहर आने को सदा उत्सुक, साथ ही अक्षय रहा हो, जो तेल और पानी में बनी दाल-भात और चड्ढवड़ी^१ से पाला गया हो, उसके जीवन में ऐसे साहसिक काम या एडवेन्चर का मौका आयेगा, यह कौन जानता था । नये ढंग की बन्दूक जबन्तव हाथों की शोभा बढ़ाती थी, पर यह कभी सार्थक भी होगी, इसका पता न घर्मतल्ला स्ट्रीट के उस बन्दूक वेचने वाले को था, न खरीदने वाले को ।

हमारी पार्टी इस बीच तीन रात आकर लौट गई है, क्योंकि वाघ महाराज के दर्शन नहीं हुए । आज अन्तिम चेप्टा थी, और हमारे भेजवान महोदय यह प्रतिज्ञा कर चुके थे कि यदि आज शिकार हाथ न लगा, तो कोई भयंकर घटना घट जायगी । यह भयंकर घटना क्या होगी, इस पर भी साथियों में आलोचना हो चुकी थी । मुझे 'चन्द्र टरे सूरज टरे' वाली राजा हरिचन्द्र की प्रतिज्ञा याद आ गई ।

जब तक धरती पर वाघ का बच्चा चलेगा, तब तक धरती पर पैर न रखेंगे, शायद प्रतिज्ञा यही हो । वचपन में गिल्ली-डण्डा खेलते समय जिस तरह पेड़ की डालों से लटके रहते थे, उसी तरह मचान पर बैठे रहना होगा । यही प्रतिज्ञा का परिणाम था ।

संस्कृत काव्यों में निर्वात निष्कंप प्रदीप की बात पढ़ी थी, पर रात्रि के ओरेंदेरे में हमारी हालत सिर्फ इतनी ही न थी । हम तो पूरी तरह से बुझे दीयों की भाँति बैठे थे । पेड़ की सबसे ऊँची डालों पर बाँस की खपच्चियों और लता-पत्र के सहारे यह धोंसला बना था । इसे डोगी भी कह सकते हैं । वहाँ हम खामोश बैठे थे—इस प्रकार चुप जिससे साँस लेने का शब्द तक नीचे न पहुँचे । हम इस प्रकार इन्तजार कर रहे थे, और इस इन्तजार की उन इन्तजारों से तुलना कर रहे थे, जिनका वर्णन पुस्तकों में पढ़ा था ।

सामने बैचारी भैस बैधी थी । पता नहीं, उसे मालूम भी था या नहीं कि किस लिए उसे यही वांछ रखा गया है । क्या उसे अपने भविष्य का कुछ आभास था? किनके भनोरंजन या कल्याण के लिए उसका यह अनवाहा बलिदान था, इसका उसे

१. बंगलियों की एक प्रकार की तरकारी जिसमें हर चीज़ खप जाती है ।

क्या पता ? संध्या समय कुछ कौवे उसके सींगों पर अन्तिम बार बैठ इधर-उधर देख 'कां कां' करते उस पात्र से पानी पीकर उड़ गये, जो शेर के लिए रखा था। क्या इन कौवों को कुछ पता था ?

नहीं, शब्दरी की प्रतीक्षा में ऐसी वेवसी न थी, क्योंकि उसके आराध्य तो उसके हृदय में ही वसे हुए थे। वह बाहर आकर कब दर्शन देंगे, प्रतीक्षा वस इसकी थी। उमा की तपस्या में भी नहीं, क्योंकि देवाधिदेव तो उसकी आँखों के सामने ही थे। वह आँखें खोलें या न खोलें, उमा तो जी भरकर देख रही थी। साथ ही आशा थी कि कभी न कभी तो समाधि टूटेगी ही।

और यह वेचारी भैंस कई रातों से मृत्यु के द्वार पर बैंधी हुई थी। वह उसी पथ की पथिक थी, जिस पर तीस भैंसें पहले जा चुकी थी। आत्मरक्षा या पलायन करने का भी कोई रास्ता नहीं।

अंतिम कौवे की काँच-काँच वहुत पहले ही रात्रि के श्रागमन की घोषणा कर पहाड़ की आड़ में विलीन हो गई थी। उस वेचारी भैंस का काला रंग रात की कालिमा में मिल गया। शायद उसके मन में बाहर से भी अधिक अँधेरा था। ऐसा लगता था जैसे उसकी आँखों के सफेद कोने अँधेरे को चीरकर व्याकुलता के साथ मकान की ओर ताक रहे थे, और मीन भाव से प्राणों की भीख माँग रहे थे।

नहीं, मैं शिकारी नहीं हो सकता।

मचान में प्रथम कुछ घण्टे बुरे नहीं कटते। कैसे (पतति पतत्रे विचलित पत्रे) पत्ता गिरने से होने वाली आवाज तक न कर पैरों को फैलाया या सिकोड़ा जाता है, कैसे चुपचाप थर्मेस खोलकर चुस्की लेने की आवाज किये विना कॉफ़ी पीकर शरीर और मन को ताजा किया जाता है, इन कौशलों को मैने जल्द ही सीख लिया। यह भी समझ में आगया कि स्पारों के हुवा, हुवा सहगान की तरफ़ ध्यान देने से खांसी कम आती है। तारों को गिनने में कितना समय कट सकता है, वह धन्निर्या गिनने से आसान है या कठिन, इन समस्याओं को सुलझाने में कुछ समय कटा। आँखें कड़वा रही थीं, जैसे कोई पलकों को सी रहा हो।

वचपन में कलकत्ते के पास रात भर जगकर मैने बंगला नीटंकी या यात्रा देखी थी। कंसवध या कालीय-दमन इस प्रकार का कोई खेल था। उस समय किस कौशल से मैने नींद को अँगूठा दिखाया था, याद करने लगा। वह यात्रा तो सियार को भगाने मात्र की थी, पर इस बार तो शेर मारने की यात्रा है। वहुत अधिक मूल्यवान और वहुत अधिक रोमांचकारी, फिर भी नीद नहीं मानती।

मन ही मन मैने सब मित्रों को पत्र लिख डाले—शृण्वन्तु विश्वे मेरे सब मित्राः। पत्र का सिरनामा और सम्बोधन तो ठीक हो गया, पर लिखूँ तो क्या लिखूँ ?

ऐसी कोई बात निखनी चाहिए, जो शरत् वादु के श्रीकान्त की रात्रिकालीन यात्रा की सरह दिलचस्प हो……

इतने नें, इतने में क्या था, जैसे कुछ हिला। हाँ, साँस सीने के भीतर ही थम गई।

छींह, छींह, राव किशनलाल अपने को सम्माल न सके और उनकी छींक एक मचान से दूसरे मचान में होती हुई सारे जंगल में गूँज गई। कुछ सियार जोर से भागे, पर भैस ज्यो की त्यों खड़ी पगड़ा रही थी।

बगल के पेड़ से एक मचान से भेरे भेजवान वी बहुत दबी हुई, पर तीखी आवाज आई—उल्लू को सम्मालो !

भागती हुई हिरनी पर भपटता थेर भी इतने जोर से न दहाड़ता होगा। किर वही भीष्म-प्रतिज्ञा याद आ गई कि धरती पर जब तक वाघ का बच्चा चलेगा, तब तक धरती पर नैर नहीं रखेंगे।

पता नहीं कल राव जी की तरुदीर में क्या बदा है? इधर मेरा खून जोरों से दौड़ रहा था। माथ ही साथ मन में खुशी की लहर भी तेजी से उठ रही थी।

नीचे के गमले में कोई जानवर पानी पी रहा था, और भैस बेचारी डर के मारे छटपटा और हाँफ रही थी। मैने बहुत ही धीरे से राइफल को हाथ में लिया, और पत्तों के परदे को जरा हटाया।

अब भैस न तो हाँफ ही रही थी, और न रस्सी तुड़ाने की ही कोशिश कर रही थी। शायद डर से मुन्न हो गई हो। उधर थेर महोदय पानी से निपटकर नाक से घरं-घरं कर पानी निकालने लगे।

एकाएक झेंधेरे की छाती चीरकर विशाल शक्तिशाली टाचं की रोशनी थेर पर फैल गई। मेरे वृक्षसाथी ने अनेक शिकारों के धम्यस्त हाथों से राइफल चलाई। बड़े जोर से गरजकर थेर भागने के लिए तड़पा। साथ ही एक दूसरे मचान से विजली की एक रेखा कोंध गई। थेर और भी जोर से गरजा, पर क्षण भर गरज कर ही चुप हो गया। थोड़ी देर तक उसके सीने को चीरकर एक घरं-घरं आवाज निकली, किर सन्नाटा छा गया।

रात के उस अन्तिम पहर में मैने जरा भपकी ले लेने की कोशिश की। पणंशुया भी ही देवी अपर्णा की कृपा हो गई। पांच सी साल का परदा उठकर विलीन होने लगा। राजपूत जीवन के एक न्यारे अध्याय में मेरा मन बहक गया। उन दिनों फागुन का महीना था। राजपूतों का वसन्तोत्सव फूलों के हारों तथा रंग की फुहारों से ही समाप्त नहीं हो जाता था। इस बात का उल्लेख कर उदयपुर के महाराणा ने मुस्कराकर कहा—चलो, आज तुम्हें एक नये वसन्तोत्सव में दीक्षित करें।

देश में जाकर तुम अपने कवि जयदेव से कहना कि घब 'रण छोड़' कन्हैया के गीत न लिख गौरी के गीत लिखें । तुमने तो शायद इम्तहान पास करने के लिए धुड़सवारी सीखी थी, जल्दी से इस पहाड़ी घोड़े पर सवार हो जाओ । अहेरिया उत्सव में चलना है ।

ज्योतिषी ने विचारकर शुभ घड़ी बता दी । महाराणा ने सब सामन्तों और साथियों को हरे रंग की पोशाक उपहार में दी थी । उन पोशाकों को पहनकर लोगों ने माथे पर केसरिया रंग का चंदन लगाया और उसके बीच में लाल चन्दन का एक तिलक लगाया । इसके बाद वमन्त के फूलों से लदे बृक्षों के बीच से हम लोग जंगल में दाखिल हुए । बात यह है कि गौरी देवी के चरणों में चढ़ाने के लिए एक बन-सूम्र की ज़रूरत थी । आज के शिकार की सफलता पर सारे साल का भाग्य निर्भर समझा जाता था । इसलिए कोई भी राजपूत घोड़ा शिकार पाने में कोई कसर नहीं रखता था । सब लोग घोड़े दौड़ाकर एक दूसरे से होड़ करते हुए शिकार की तलाश करते थे । आज के दिन यदि वर्ढी शिकार पर न लगकर शिकारी पर लग जाय, तो इसकी शिकायत महाराणा के दरबार में नहीं आती थी । यदि कोई दुरी नियत से भी ऐसा करे, तो उसकी हत्या की बात गुप्त रह जाती थी ।

राजपूत घरानों में प्रायः पुष्टनी दुश्मनी चलती है । इन दुश्मनियों से बराबर ही न केवल अपने को नुकसान रहा, बल्कि राज्य भी कमज़ोर पड़ते रहे । पर अहेरिया वाले शिकार में यदि किसी का तीर जाकर दुश्मन घराने के किसी व्यक्ति को लगता था, तो उसमें कोई प्रतिर्हिसा की बूँ नहीं खोजता था । और यदि घोड़ा भय अपने शिकारी के पर्वतचूड़ा पर से किसी खाई में गिर पड़ता था, तो उस शिकारी की हँसी नहीं होती थी ।

तो वह देखिये, घोड़ा पहाड़ी नदी पार करता हुआ सँकरी घाटियों में दौड़ रहा है । सालुम्बर का चन्दावत रावत, बदेला के चौहानराव, वेदनोर के राठोर ठाकुर, सदरी के भालाराज जा रहे हैं । ये ही लोग भेवाड़ के महाराणा के संग्राम में साथी, और संन्यास में अनुगामी थे । जीवन स्वतन्त्र था, पर तरह-तरह के दुःख और कष्ट थे । इन्हीं लोगों के सम्बन्ध में कवीन्द्र ने कहा था कि जीवन और मृत्यु इनके चरणों के दास हैं, और इनका चित्त चिन्ताओं से मुक्त है । इन लोगों की आखों में सुनहला स्वप्न था, और वेहरे पर मुखमय शान्ति ।

अभी यह चित्र उभर ही रहा था कि राव किशनलाल ने मुझे बगल से झकझोरते हुए कहा—उठिये, उठिये, घब कितना सोइयेगा । सब लोग तम्बू में जमा हो चुके हैं ।

मैं जल्दी से उठ बैठा । पर राव साहब घोले—प्राप्तके चेहरे से हँसी फूटी

पड़ती है, क्या वात है ? सपने में शायद घर पहुँच गये थे ।

मैंने उनको स्वप्न की वात बताई । घर पहुँचने की नहीं, बल्कि घर ढोढ़कर स्वदेश के लिए, शनु पर जग प्राप्त करने के लिए विपत्तियों से भरे मार्ग पर मृत्यु से अभिसार की कहानी, जिसका अभिनय अरावली की एक-एक चौटी पर संकढ़ी वर्षों तक होता आया है और जिसका स्वप्न हमने उत्तने दिनों तक गंगा और मेघना के किनारे बैठकर देखा है, जिसकी तेजोमय पुकार पर बगाल के साहित्यकारों की कलम ने तोप की तरह आग उगानी है ।

राव साहब ने कहा—वंगाल के साहित्यकारों ने राजपूताने की बड़ी सेवा की है । पर मेरे दुर्भाग्य की वात मुनिये । जब आप स्वप्न में अहेत्यिया शिकार का मजा लूट रहे थे, उस समय मेरी वया दुर्दंगा हो रही थी, यह भी मुन लोजिये । उस दिन मचान पर जो छीक आई थी, वह तो याद होगी । वैसी एक छीक तीस साल पहले मुझे आई थी, तब मैं दरवार में नौकर हुआ ही था । हिज्र हाइनेस जैसे प्रतापी और तेजमिजाज । रेसिडेंट के अलावा किसी का भी सिर धड़ से अलग कर सकते हैं । पहले ही दिन जब मैं शिकार में गया, तो भंच पर से ज्यों ही शेर दिल्लाई पड़ा, धड़ जोर से छीक आई । मैंने तेज़ी से सारी पगड़ी मुँह में ढूँस ली । पर हाय-पैर ठण्डे हो गये, क्योंकि छीक की आवाज तोप के गर्जन की तरह चारों तरफ फैल गई थी । महाराज ने उससे भी अधिक हूँकार के साथ हृकम दिया—फैक दो उसको पेड़ से । कहना था कि सब लोग मुझे पेड़ से फेंकने के लिए तैयार मालूम पड़े । वात यह है कि मैं रियासत के बाहर का आदमी थी, और अभी बड़ी नौकरी लेकर आया था । मुझे लोग पहचानते भी कम थे । यदि मैं शेर के पेट में चला जाऊँ, तो इनकी कुछ भलाई ही होती थी, क्योंकि एक नौकरी खाली होती, और शायद वह किसी मुल्की को मिल जाती । इस प्रकार लोग शेर का गुणगान ही करते । दूसरी वात यह भी थी कि हिज्र हाइनेस ने फोध के आवेदा में जो कुछ कह डाला, उसकी तामील करने पर किसी का कुछ विगड़ नहीं सकता था ।

अगले दिन मिजाज ठाक होने पर स्वयं हिज्र हाइनेस किसी को दोष नहीं दे सकते थे । हाँ, भचान से गिरकर शेर के पेट में जाने के कारण मेरी स्त्री का एक मासिक भत्ता बँध जाता, पर उससे मेरा क्या ?

राव साहब की कहानी सुनने में बड़ी मजेदार मालूम हो रही थी, पर उनके चेहरे को देखने पर पता लगता था कि तीस साल पहले उनको कितना भय लगा होगा । अब भी उस भय की झलक उनके चेहरे पर देखी जा सकती थी । कोई हानि तो नहीं हुई थी, पर धाव बड़ा गहरा था ।

राव साहब बोले—अब शायद आपको हँसी आवे, पर अगले दिन हिज्र

हाइनेस ने सचमुच खबर ली थी कि उनके हुक्म की तामील की गई थी या नहीं। मैं क्रसम खाकर कहता हूँ कि अब भी मैं स्वप्न में कभी-कभी वह दृश्य देखता हूँ, और उस समय जिन्दा ही मर जाता हूँ। गालपट्टी बैधी दाढ़ी-भूँछों के बीच से निकला वह दहकता हुक्म यमदूत की तरह मेरा पीछा करता है।

इस बीच सभी काँच के ग्लासों में पड़ी वरफ को हिलाकर ठन-ठन का शब्द करते हुए तथा ग्लासों को सिर तक ले जाकर सम्मान दिखाते हुए हमारे भेजवान को उनकी रात की सफलता पर अभिनन्दित कर रहे थे।

हमारे भेजवान ने भी प्रतिज्ञा पूरी होने के उपलक्ष में पानी पीया। यह पानी सात समुद्र-पार से आया सुनहला पानी था।

विवाह और प्रथम प्रश्न

प्रथम प्रेम की बात हो रही थी ।

इस सम्बन्ध में सबसे उत्साही थे कल रात के वही हिज हाइनेस महोदय । प्रेम की बात सुनते ही लोग सोचेंगे कि शाम के बाद बैठकखाने में जहाँ नीले और सुनहले बैल-बूटों वाले रेशमी परदे टेंगे थे, सोँकों पर आराम से लेटे शेरी का ग्लास हाथ में लिये गपशप कर रहे थे । बात ठीक ही है, राजे-महाराजे प्रथम प्रेम की बात और किस तरह कर सकते हैं ?

इसलिए उनके मुसाहब और संगी-साथी भी ऐसे ही बातावरण में बातचीत करेंगे, इसमें आश्चर्य ही क्या ? पर बात ऐसी नहीं थी । शिकार की सफलता पर हमारी पार्टी के सब लोग दिलफेंक बन चुके थे । नशे में विशेषकर कोई प्रिय नशा चढ़ने पर मनुष्य के हृदय के द्वार बेरोकटोक खुल जाते हैं । लाल डोंगी पर सवार होकर मन लहरों का भजा लेने लगता है, ऐसी लोगों की धारणा है । पर अफ़सोस है कि मैं तो लाल डोंगी क्या, किसी भी डोंगी की सवारी के सुख से बंचित था । इस पर अफ़सोस है भी और नहीं भी है, क्योंकि मैं कवि ब्राउनिंग का शिष्य हूँ । वह कह गये हैं कि जो कुछ दिल से करोगे या खुश होकर लोगे, वही तुम्हारे लिए सार्थक है । जो कुछ भिला है, उसी से सन्तुष्ट हूँ । दरियादिल उमरखय्याम की बात याद आ गई । उन्हें जो कुछ कहना था, पहली रुचाई में ही कह दिया है । जिसने इस लोक में ही सारे सुखों का ठौर-ठिकाना जान लिया है, वह परलोक की चिन्ता कर क्यों दुःखी होगा । वह तो प्रसन्न-मन वसन्त के गीत गायेगा ।

शिकार से लौटते समय हम लोगों ने भी अनुभव किया कि मटुवे के बाग में वसन्त की बयार बहने लगी है । फागुन का पहला स्पर्श पाते ही मटुवे की डालों में आग लग गई है । आकाश का एक-एक टुकड़ा लाल हो गया है । राजस्थान के इस प्रदेश में मटुवे को केशोला कहते हैं । कियोर अवस्था में कलकत्ते में मैने एक नाटक देखा था, जिसमें जंगली युवक-युवतियों ने नाचते हुए यह गाना गाया था— किसने जूँड़े में दिये मटुआ के फूल ।

फूल किसने गूँथ दिये, इस पर मन में एक प्रश्न उठा था । फूल सखी ने गूँथ दिये थे, या सखा ने, या अशरीरी प्रकृति ने ही मटुवे कीट हनियाँ तोड़-तोड़कर जूँड़े में मटुवे की डालियाँ रोप दी थीं । आज मटुवे के बाग की लाली देखकर पुरानी याद

ताज्जा हो गई थी और कविता की एक कड़ी भी गढ़ डाली थी कि सनीमत हुई पुरानी कार का उससे भी पुराना टायर फट गया। हिज्ज हाइनेस का मन इस समय इतना प्रसन्न था कि वह विलकुल नाखुश नहीं हुए। पर ड्राइवर आदि को जो इस समय काम आ सकते थे, उन्होंने जंजाल समझकर पहले ही एक स्टेशनर्वेंगन में रवाना कर दिया था। उन्हें खबर भेजने की व्यवस्था की गई, और हम पाँच व्यक्ति फूलों से लदे केशोला के नीचे एक बड़े-से पत्त्वर की छाया में बैठ गये।

मेजबान को और से प्रस्ताव हुआ कि एकमात्र वाहरी श्राद्धी होने के कारण में ही बताऊं कि यह वक्त कैसे काटा जाय? मन ही मन में घबड़ा गया। कहूँ तो क्या कहूँ? मुल्ला की दौड़ मसजिद तक, और बंगाली की दौड़ बैठक तक। गाँव-देहात के चण्डीमण्डप मिट जाने के कारण बैसी बैठकबाजी भी नहीं होती। अबतक उनकी जगह बैठकबाजी के कोई राष्ट्रीय अड्डे खुले नहीं। पढ़ाई और पण्डित जी की छड़ी—उस छड़ी का युग भी अब चला गया है, अब तो हमी पण्डित जी को मुक्का दिखाते हैं—इन दो दुश्मनों से श्रौत बचाकर जो समय मिलता उसे भी मैंने काटा है। अपने नजदीक के मकान के बिना किराये के चबूतरे पर या गली के मोड़ वाले सार्वजनिक पार्क में, जो पार्क संयासी के सिर की भाँति सफाचट है, घास की एक चकत्ती तक उसमें नहीं उगती।

ऐसी जगह कोई रसमय भाव पैदा होगा कैसे? मुझे तो कुछ नहीं सूझा।

हमारे बचपन के साथियों में ऐसे लोग थे, जो ताश, चौपड़ आदि खेलते थे और सिनेमा-थियेटर के रसिक थे। अवश्य यह रसपान पिता की कमाई पर होता था। फिर भी उनके जीवन में कोई ऐसी मजेदार घटना नहीं घटी, जिसे याद कर मैं इन लोगों को सुनता और इस प्रकार इनका मनोरंजन कर सकता। आज मैंने बड़े दुःख के साथ अनुभव किया कि मैंने अपना फुसंत का समय यों ही गँवा दिया है, न खेल-कूद में हिस्सा लिया, न मेल-जोल पैदा किया। छुट्टियाँ भी बेकार जाती थीं। नतीजा यह है कि हम ही बेकार हो गये।

उधर तभी मुझ पर जोर डालने लगे कि बंगाली ढंग से समय काटा जाय।

नंदी किसी चीज के स्वाद की आशा से शेर के ये शिकारी चटखारे लेने लगे। राव किशनलाल ने मेरे कान में कहा—ग्रे भाई, जल्दी कुछ शुरू कीजिये, नहीं तो पलास्क की चाय आपके हिस्से में विलकुल नहीं पड़ेगी।

मैंने देखा कि सचमुच सब लोग जल्दी-जल्दी चाय समाप्त करने में लगे हैं। चाय कितनी बड़ी नियामत है, यह मैंने यहाँ बैठकर अनुभव किया। चाय मीठी है, चुम्बन से भी मीठी है, यह घोषणा नित्यानंद ने नीलकण्ठ केविन में चाय नाम से चलने वाला जहर पांते हुए की थो। उससे भी सन्तुष्ट न होकर उसने अन्तिम धूंट में

उसके तलछट को पीकर कहा था—चाय मीठी है, यहाँ तक कि प्रथम प्रेम से भी मीठी, यह बात याद आते ही मुझे प्रेरणा मिली। अन्त में इस वैठक की बातचीत का स्मरण ही मेरे काम आया। मैंने लम्बी-चौड़ी भूमिका बांधते हुए कहा कि सबको अपने-अपने जीवन के प्रथम प्रेम की कहानी बिना किसी लाग-लपेट के बतानी पड़ेगी। और यहाँ जी कुछ बातचीत होगी, उसका सर्वाधिकार सुरक्षित रहेगा, यानी घर लौटने पर कोई उसका उल्लेख बताने वाले की पत्ती से न कर सकेगा। मट्टवे के नीचे होने वाली बात यही रह जायगी।

सुनते ही हँसी का वह फौवारा छूटा कि राजपूतों की गालपट्टियों में बँधी दाढ़ियाँ हिलने लगी। हिज हाइनेस तो पुलकित हो गये, और इस प्रस्ताव के नयेपन की तारीफ़ करने लगे। सब लोगों ने हामी भरी। न भरते, तो करते क्या? पर उस सबसे मुझे क्या लेना-देना? सब लोग खुश हो गये, यही क्या कम था। मैं अपनी प्रशंसा तो नहीं करता, पर हिज हाइनेस समर्थन न भी करते, तो भी और लोग मेरे प्रस्ताव को पसन्द करते, इतना मुझे विश्वास है।

अब प्रश्न यह आया कि कौन सबसे पहले अपने मन के भीतरी कमरे को खोलकर सामने रखे। प्रेम करने से अधिक उसको स्वीकार करना कठिन होता है। कहते हैं कि प्रेम के नाम से ही राजपूत शरमा जाता है। यह शरम लज्जा की पुलक के कारण है, या पत्नी के डर के कारण है, इतनी गहराई तक जाकर समझने की चेष्टा शायद वह नहीं करता।

ठाकुर करणसिंह ने पगड़ी उतारकर अपने सिर पर जरा हवा की, फिर उन्होंने मुझी से अनुरोध किया कि मैं ही इस शुभ विषय का श्रीगणेश करूँ। बोले— हम राजपूतों को प्रेम से क्या मतलब? घोड़े पर सवार होना, जान दे देना, दूसरे जागीरदारों से लड़कर उनको जागीर का कुछ हिस्सा ले लेना हमारा काम है। हम ऐसे बखेड़ों में भी रहते हैं, जिनमें चार-छ़: स्त्रियों का सम्बन्ध हो। पर प्रेम का सबाल कहाँ उठता है?

इस बात को सुनकर सब लोगों ने जैसे शान्ति की साँस ली। सबने बड़े तपाक से बक्ता का समर्थन किया। छिछिछिराजपूत और प्रेम? इससे तो कही अच्छा है कि जान दे दी जाय। पर मैंने भी कच्ची गोली नहीं खेली थी। मैंने फहा—ऐसी बातों से काम न चलेगा। भला, कोई ऐसा पुरुष हो सकता है, जो कभी न कभ। प्रेम में न फैस्ता हो। कम से कम यह न सोचा हो कि वह इश्क में फैसा है। आप लोगों की मर्दानगी को यह कहते हुए लज्जा नहीं मालूम होती कि आप कही इश्क में नहीं पड़े?

मर्दानगी का नाम लेकर चुनौती देते ही हिज हाइनेस बहुत विचलित हो उठे, मानो सारे राजस्थान की मर्यादा की रक्षा का भार उन पर था पड़ा। वे बोल उठे—



आमोर-के मन्दिर ।



मैंने एक बात यह समझ ली है कि यदि प्रेम करना है, तो बंगाल ही इसके लिए उपयुक्त सेवा है। उस बार जब मैं वाइसराय साहब की घुड़दौड़ में कलकत्ता गया था, तो मैंने यह बात समझ ली थी। जहाँ लड़कियाँ, चोटी, लटकाकर कालेज जाती हैं, द्राम और बस में अकेली घूमती हैं, यहाँ तक कि सिनेमा में अकेली जाने से नहीं घबड़तीं, वहाँ प्रेम की सम्भावना है। क्या आपने राजस्थान के किसी शहर में लड़कियों को बाहर घूमते देखा है? इस मरुभूमि में धास तक तो उगती नहीं, फिर प्रेम का पौधा कैसे जमे?

मैं इतनी आसानी से छोड़ने वाला नहीं था, मैंने कहा—स्त्रियाँ रास्ते में तो नहीं निकलतीं, पर भरोखों पर तो आती हैं। खुले मुँह भले ही न दिखाई पड़ें, पर धूंधट के ग्रन्दर से तो दीखती हैं। जिसे अच्छी तरह देख नहीं पाते, भलक मात्र दिखती है, वह अधिक सुन्दर मालूम देती है। दूर के होल सुहावने होते हैं, प्रेम का यही पहला पाठ है।

—यानी? बनावटी क्रोध दिखलाते हुए हमारे भेजवान ने कहा—इसके माने यह है कि हम इश्क करते हैं? कहिए तो फिर से, क्या कहा?

मैंने कहा—यदि नहीं किया, तो आपको करना चाहिए था। परदे के मुल्क में इश्क, यह सुनते ही खून में हिलोरें आने लगती हैं। आप यह नहीं समझते कि वाधा जितनी अधिक होती है, राधा उतनी ही व्याकुल हो जाती है।

पर उन्होंने इस बात को मानने से इन्कार किया। बोले—यह सब कवियों की बातें हैं। हमारे देश में स्त्रियों से सावका ही नहीं पड़ता, फिर प्रेम कहाँ से हो? हम स्त्रियों की मर्यादा की रक्षा के लिए जान लड़ा देते हैं, पर उनसे इश्क नहीं करते। ऐसा करना तो विलकुल अशास्त्रीय है।

अब की बार मैंने खुलकर यह बता दिया कि राजस्थान में स्त्रियों से कवन्कव और किन-किन मौकों पर सावका पड़ता है। मैंने कहा—आपके यहाँ विवाह-सम्बन्धी बड़ी अच्छी प्रथायें हैं। उदयपुर में विवाह की जो तोरण-तोरण प्रथा है, उसमें इश्क के लिए कितनी गुंजायश है। व्याह के समय दुलहिन के घर पर एक तीसरा खूंटा लगाकर एक त्रिभुज बनाया जाता है। डरिये मत, मैं चिरत्तन त्रिभुज की तलाश में कुछ कहने नहीं जा रहा हूँ। हाँ, तो उस त्रिभुज पर विभिन्न रंग के कागज और रेशमी कपड़े लगाकर उसकी चोटी पर एक मोर की मूर्ति बैठायी जाती है। इसके बाद यह तोरण ऐन दुलहिन के घर के फाटक के सामने रखा जाता है। इसके बाद दूल्हा पोड़े पर सवार होकर हाथ में वर्ढी लेकर बीर रूप में लड़ाई करता हुआ आता है। तोरण तोड़कर दुलहिन को प्राप्त किया जाता है। आधारभूत बात वही है, जो एक अंगे पी

कहावत में कही गई है कि सुन्दरी और भोग्या होती है। दुलहिन के पक्ष की स्त्रियाँ तोरण की रक्षा करती हैं। उनके पैरों में नूपुर वैधे रहते हैं, मानो युद्ध के लिए उत्साह बढ़ाने वाले हों। वे लोग रंगीन लहेंगे, श्रोडनियाँ, चौलियाँ, कुर्तियाँ पहने होती हैं। यह रूप याद आते ही वसन्त की कोयले कूक उठती है। और वे जिन अस्त्रों को घारण करती हैं, वे भी एक से एक पैरे और जानमारु होते हैं। वे मृष्टियों में पराग भर-भरकर वरातियों पर मार करती हैं। इस पर मनमोहक गाने गाये जाते हैं, जैसे—

तोरण आया रह वर,
थारा रारा कामे राज ।
नेगां का नेग चुकांसा,
तब मे आग आसां ।

अन्त तक बड़ी चहल-पहल और खुशी के साथ तोरण तोड़ा जाता है, और लड़कियाँ दूल्हे का रास्ता छोड़ देती हैं। मैंने इन सब वातों का उल्लेख कर कहा—अब बताइये योर हाइनेस, इसमें कितना मीका है? हाँ, अब यह केवल रस्म ही रस्म रह गया है, फिर भी क्या इतना कम है?

उधर से उत्तर मिला—फिर भी क्या? मीका मान लीजिये है भी, तो हम राजपूत इतने छुई-मुई नहीं होते कि देखा और प्रेम में पड़ गये। फिर आप यह नहीं जानते कि तोरण-तोरणा के गीत अकसर द्व्यर्थक होते हैं।

मैं मान नहीं सका, मैंने कहा—रानी पद्मिनी की सखियों के वर्णन में आपके कवियों ने जो लिखा है, वह तो कुछ और नहीं है—

जा सउ वैर्ड हेरंहि चखु नारी,
वाकां नयन जनु हनहि कटारी ।

रजवाड़े का जो थोड़ा-बहुत ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ, उससे यह समझ में आता है कि कवि का वर्णन गलत नहीं है।

मेरे मेजवान ने बात पकड़ ली, बोले—साहब, आप जब इश्क के इतने बड़े माहिर हैं, तो आप ही इश्क की कहानी सुना दीजिये—कहकर वे मूछों पर ताव देने लगे और सब ने उनका समर्थन किया। मैंने भी सोचा कि कव तक टालूंगा। मैंने ही तो प्रस्ताव रखा था, फिर मैं उसे कैसे टालता? इन्होंने अतिथि-सत्कार में कोई कसर नहीं रखी, यहाँ तक कि शिकार खिलवाया, फिर मैं कैसे चुप रहूँ? आफत यह थी कि इन लोगों ने बंगाली होने के नाते मुझे द्वामख्वाह प्रेम का विशेषज्ञ करार दे दिया था। फिर भी मैंने बहुत कुछ हाथ-पैर मारे, अन्त में यह तब पाया कि मुझे प्रथम प्रेम की कहानी सुनानी पड़ेगी, पर अगर मेरी निजी कोई कहानी नहीं है, तो मैं किसी

और की कहानी सुना दूँ; पर हो कहानी दिलचस्प। मैंने शुरू कर दिया—

तो सुनिये। आप वह समझ सकते हैं कि शायद मैं आपको बना रहा हूँ, पर ऐसी बात नहीं है। एक थे राजकुमार; नाम न पूछिये। पांच साल की उम्र में ही उनकी शादी तय हो चुकी थी। उन दिनों वे अपने चाचा—एक अन्य राजा—के घर गये हुए थे। यहाँ दोनों पक्षों के अभिभावकों ने शादी पक्की कर ली। जिनकी लड़की से शादी तय हुई, वे रिश्ते में चाचा लगते थे। आप लोग तो जानते हैं, ऐसी शादी रजवाड़ों में होती है। ऐसी शादियों में जो बात होती है, वही हुई। वर्षों तक दूल्हा और दुलहिन में भेट नहीं हुई। उधर राजकुमार का सिंहासन भी खतरे में था। उनके पिता मर चुके थे, और चारों तरफ गड़बड़ी मची हुई थी। पांच साल की उम्र में जो शादी तय हुई हो, उसमें प्रेम की आशा कहाँ? इधर राजकुमार की उम्र सत्रह वर्ष की हो गई। राजकुमारी भी पन्द्रह साल की एक किशोरी के रूप में दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही थी। जब देखा गया कि राजकुमार को किसी बात की सुधावुध नहीं, तो राजकुमारी स्वयं अपने दूल्हे के पास पहुँची।

यद्यपि विवाह-शास्त्र में यह कहा गया है कि कन्यायें विवाह का प्रस्ताव सुनने के लिए उत्पन्न हुई हैं, न कि करने के लिए। पर जमाना खराब था। जब दूल्हा नहीं पहुँचा, तो दुलहिन या यों कह लीजिये, वागदत्ता प्रेमिका उसके पास पहुँची। व्याह हो गया, पर व्याह की कली खिली नहीं। पति को ऐसा प्रतीत हुआ कि पत्नी के प्रति कर्तव्य तो है, पर आकर्पण नहीं। देखने में अच्छी लगती थी, पर प्रेम नहीं था।

व्या यह लज्जा अथवा साहस का अभाव था, इस बात को राजकुमार स्वयं ही नहीं समझ पाये। पहले-पहल दस-पन्द्रह दिन के अन्तर से भेट होती थी, फिर यह अन्तर और भी बढ़ गया। इस बीच राजकुमार ने राज्य का भार सम्हाल लिया। राजमाता ने जब अपने बेटे की यह हालत देखी, तो वह बहुत चिन्तित हुई, और इस उदासीनता को साहस का अभाव समझ उसे जवर्दस्ती पतोहू के पास भेजने लगी। फिर भी वह महीने डेढ़ महीने में एक बार भेजने में समर्थ हुई।

इसी समय राजकुमार के जीवन में बदूरी नाम की एक तस्णी का प्रवेश हुआ। वह विलकुल साधारण घर की साधारण लड़की थी। वह उस किस्म के फूलों में थी, जो सढ़क के किनारे खिलते हैं, और लोग उनकी तरफ ध्यान भी नहीं देते, पर राजा के जीवन में वह चम्पा, चमेली से बढ़कर रूप लेकर सामने आई। पहली मूलाकात के बाद ही राजा ने अपने रोजनामचे में लिखा—मेर मिटा, मेर लुट गया, मेर कहीं का नहीं रहा, मेर उसके लिए मर रहा हूँ—

मन वा वह मेल पैदा करदम।

बल्कि वागे खुदरा जार व शैदा करदम॥

अब तक राजकुमारी के लिए उनके मन में जिस पैदान का अनुभव नहीं हुआ था, वह ववूरी के लिए अनुभूत होने लगा। सच तो यह है कि राजा का जीवन इतना डार्वांडोल हो रहा था कि उसे इन बातों का अवकाश नहीं था। अब उन्होंने लिखा—‘मैं प्रेम के आवेश में दीवाना हो गया, मेरा मन स्थिर नहीं रहा, कौन जानता था कि हृस्त हमें किसी भत्तद का नहीं रखेगा?’

एक दिन ववूरी राजा से मिलने आई, पर वे उससे इतना प्रेम करते हुए भी उसकी तरफ आँख उठाकर नहीं देते सके। उससे अच्छी तरह बात करके रिभाने की बात तो दूर रही, जाते समय उसे ढंग से विदा न कर सके। जब वह चली गई, तब उनका मन हाहाकार से भर गया कि वे पानी में रहकर भी प्यासे लौट आये। उनका मन अपने बश में नहीं था, फिर क्या करते? वह सुन्दरी उनके मन को रंग कर चली गई। लौटकर राजा कविता लिखकर अपने मन को हलका करने लगे। एक दिन वे कुछ सभासदों के साथ एक पतली गली के अन्दर से निकल रहे थे, इतने में ववूरी से भेट हो गई? पर वे न तो उसकी तरफ चुलकर देख सके, और न उससे कुछ कह सके, दिल चूर-चूर हो गया। वे खुद ही शरमाकर अलग हट गये। एक फारसी कवि के बचनों को राजा ने स्मरण किया, जिसमें कवि ने कहा था—‘यदि प्रिया से भेट हो जाय, तो मैं शरम से गड़ जाता हूँ। मेरे मित्र मेरी तरफ ताकते रहते हैं, और मैं दूसरी तरफ देखता हूँ।’

मैंने पैशन, इस अंग्रेजी शब्द, का व्यवहार इसलिए किया है कि मेरी धारणा है कि किसी भी देशी भाषा में इस शब्द की सारी व्यञ्जनाओं को भरना सम्भव नहीं है। इसका कारण शायद यह है कि हम प्रेम करते हैं, कामावेग का अनुभव भी करते हैं, पर पैशन में जो शरावोर होने का भाव, आधी रोशनी और आधा औंधेरा है, जो दीवाना बनाने वाला प्रेम है, उसे व्यक्त करने के बहुत कम मौके हमारे इस रक्तात्पत्ता-युक्त सभ्य सामाजिक जीवन में हैं। इसलिए जिस आवेग को व्यक्त करना ही सभ्य नहीं समझा जाता, साहित्य में व्यक्त करने की भाषा कहाँ से आवे? जाने दीजिये उस बात को। राजा साहब प्रेम के प्रभाव में राजमहल और राजकीय पोशाक छोड़कर गलियों में और कुज्जों में भटकने लगे। न उन्हें राजकार्य को समय मिलता और न मित्रों की तरफ वे ध्यान देते। जब अपनी ही सुध नहीं, तब दूसरों को कौन पूछता?

वह कविता पर कविता लिखने लगे, जिनमें वह कभी तो अपने हृदय को रक्त से सनी गुलाब की कली बताते, और यह कहते कि हजार बहारों की भजाल नहीं कि वे उस कली को खिला सकें, और कभी अपनी दशा पर तरस खाकर अपने हृदय को बुरा-भला कहते।

मैं राजा के प्रेम की कहानी कह ही रहा था कि सन्ध्या उत्तरने लगी, और महुवे का यह वाग मानो राजा के प्रेम के एक चित्र के रूप में आकाश में खिलकर सामने आया। सबके मन पर थही नशा छा गया, उस रग ने सब को छू लिया।

इस वीच में हिज़ हाइनेस ने सिर से पगड़ी उतार ली थी। मैं भी दम मारने के लिए चाय की चुस्कियाँ लेने लगा। ऐसा मालूम होता था कि चाय में भी राजा के प्रेम का कुछ पूट आ गया है। सब लोग उत्सुक होकर पूछने लगे—फिर क्या हुआ?

एक ने तो यहाँ तक पूछ डाला—जब इतना प्रेम था, तो शादी क्यों नहीं कर ली? जरा दिमाग़ को ठिकाने करके वे उससे सांसारिक ढंग से प्रम करते, तो भी थोड़े दिनों में यह दीवानगी दूर हो जाती।

राव किशनलाल जी को भी कुछ कहना था। वे बोल पड़े—यही है दुनिया। अच्छा साहब, इसके बाद क्या हुआ, यह तो बताइये।

मैंने कहा—होना क्या था? राजा के जीवन से बबूरी मिट गई। केवल उनके रोजनामचे के हरफों में उनके प्रेम की सुनहली कहानी गद्य और पद्य में रह गई। और वे क्या करते?

किसी ने कहा—क्यों? बबूरी राजवंश की नहीं थी, इसलिए क्या उससे शादी नहीं हो सकती थी?

मैंने कहा—राजा उसे कभी नहीं भूले। यह प्रेम उनके जीवन में अकस्मात् घूमकेतु की तरह आगया था और उल्का की तरह हट गया, पर पाँच साल बाद राजा ने लिखने की एक नयी शैली चलाई, जिसका नाम उन्होंने बबूरी-शैली रखा।

—यह सब तो हुआ, पर उन्होंने उससे शादी क्यों नहीं की? भला वह प्रेम कैसा था, जिसके बे दीवाने थे, पर उस लड़की से शादी न कर सके।

मैंने बड़ी गम्भीरता के साथ कहा—यह सम्भव नहीं था, क्योंकि बबूरी पुरुष था।

इस संक्षिप्त उत्तर से सब हतवृद्धि रह गये। किसी से कुछ कहते न वना। पर हमारे मेजवान ने कहा—यह तो बताइये कि किस राजा ने ऐसा अद्भुत प्रेम किया था। मुझे भरोसा है कि मैं उसे पहचान लूँगा। पर यदि आपके लिए निषेध हो, तो न बतायें। आप पहाड़ और मरुभूमि आदि की बात कह रहे हैं, इससे मैं अनुमान करता हूँ कि यह राजस्थान की ही बात होगी।

इस पर मैंने कहा—नहीं, आपका अनुमान सही नहीं है। यह न तो राजस्थान की घटना है, और न इस युग की घटना है। मध्य एशिया के तुर्किस्तान के फरगना चखताई के तुर्की राजा बावर को कहानी है। आज से साढ़े चार सौ वर्ष पहले की बात है। बावर ने स्वयं अपनी आत्मजीवनी में इस घटना का वर्णन लिखा है।

—वाह ! आप तो खूब रहे । राजस्थान में आकर आपने राजस्थान के दुश्मन की कहानी सुना दी ।

मैंने कहा कि हाँ, ऐसा तो मैंने किया । मैंने यह भी कहा है कि राजस्थान में आकर उसके दुश्मनों की बात सबसे अधिक याद आ रही है । यहाँ आने पर ही यह पता लगता है कि क्यों राजस्थान भारत के इतिहास को पलटने में समर्थ नहीं हुआ । यदि वावर को राजपूत हरा सकते, तो भारत का इतिहास और ही होता । हमें अपने को शत्रुओं के दृष्टिकोण की कसीटी पर कसना चाहिए ।

जिस युग, जिस देश, जिस समाज में नारी का स्थान बहुत नीचे था, विवाह एक सांसारिक जरूरत या राजनीतिक सुविधा मात्र थी । प्रेम अनावश्यक विलास या बहुत अधिक हुआ, तो पौरुष का परिचय मात्र था । उस देश तथा युग की परिस्थिति में इस कहानी को जाँचकर देखना पड़ेगा । यदि इसे अस्वाभाविक कहकर मुँह मोड़ लिया जाय, तो इसके काव्य-सौन्दर्य की उपेक्षा होगी । इस युग के आस्करवाइल्ड रचित 'हीरियन ग्रे का चिन्ह' नामक पुस्तक में पुरुष के प्रति पुरुष के प्रेम की कहानी कही गई है । पर इन दोनों कहानियों की तुलना करने पर भारत के मुगल साम्राज्य के प्रतिष्ठाता वावर की लेखनी की तारीफ़ करनी पड़ती है, यद्यपि उनके जीवन का अधिकांश भाग लेखनी नहीं हाथ में तलवार लेकर बीता ।

सर्वाई राजा जयसिंह की कहानी

सन्नाट औरंगज़ेब के चेहरे पर एक कूर हँसी खेल गई । पराक्रमशाली अम्बरवंश के भावी नरेश को विना लड़ाई तथा विना कुछ परिश्रम के अंकुर में ही नष्ट कर देने का अच्छा मौका हाथ लगा ।

उसके हाथ कुछ करने को व्याकुल हो उठे । उसकी राय में अम्बर राजवंश बड़ा खराब और बड़ा नमकहराम था । नासमझ परदादा अकबर इन लोगों को बहुत बढ़ा गये थे । सब बड़ी-बड़ी लड़ाइयों में, आसाम से कावुल तक सर्वत्र मानसिंह को प्रधान सेनापति बनाकर भेजने की ज़रूरत क्या थी ? फिर उसको बंगाल, विहार, उड़ीसा यहाँ तक कि दक्षिण में सूबेदार बनाकर क्यों भेजा गया ? मानसिंह को इतना अधिक बढ़ाने के कारण ही एक दिन इसकी नौवत प्राई थी कि उसे ज़हर देकर भारने की चेष्टा की गई । बूंदी के इतिहास में लिखा है कि हमारे नासमझ परदादा अकबर ने माज़म में ज़हर मिलाकर मानसिंह को देना चाहा था । पर ग़लती से जो मिठाई मानसिंह को देनी थी, उसे वे स्वयं खा गये, और उसी से वे मरे । पर मुग़ल दरबार के इतिहासकारों ने ऐसा नहीं लिखा । फिर भी यह चाल हमारे लिए नयी नहीं ।

इसके अलावा राजा मानसिंह ने मेरे दादा सलीम को प्रायः तख्ताऊस-हीन कर दिया था । खैरियत यह हुई कि राजपूतनों का बेटा खुसरू दिल्ली की गद्दी पर बैठ न पाया, नहीं तो कितना भारी अनर्य हो जाता । हमारे इस पवित्र चर्गतई तुर्की वंश का क्या होता ?

श्रीरंगज़ेब के चेहरे पर बादल छा गये ।

मानसिंह ने बुद्ध अकबर को खूब परेशान किया था । पर उनसे भी बुद्ध शाहजहाँ को अपनी राजपूत-तोपरा-नीति के कारण बहुत कट उठाने पड़े । यहाँ तक कि तमाम हिन्दुस्तान के मालिक मुझ शाहंशाह को भी इतने दिनों तक किसके कारण इतना दुःख भोगना पड़ा है ? मिर्जा राजा जयसिंह के कारण ही मुझे इतनी परेशानी उठानी पड़ी । इस राजा की बात सोचते ही इतनी खीभ होती है कि अपनी ही दाढ़ी उखाड़ डालूँ । मेरे बातिद के समय दरबार में इसकी कितनी चलती थी । इस शैतान ने काफ़िर दारा की सहायता की थी । गद्दी के लिए लड़ाई के समय एक इसी राजा का मुझे डर था । अल्लाह का शक्त है कि राजा ने अन्त तक मेरे विरुद्ध लड़ाई नहीं की । असली लड़ाई के समय चालाकी से छटक गया था । फिर भी क्या कम शैतान

है। पहाड़ी चूहा शिवा जी मेरे लंजे से छूट गया, इसके पीछे न सही उसकी साजिश, पर उसकी नालायकी जरूर है।

श्रीरंगजेव का चेहरा तमतमा उठा।

इतना ही नहीं। राजा जर्यसिंह के पीछे वाईस हजार सबार और वाईस सरदार हैं, इसलिए वह अपने को न मालूम क्या समझता है? हिन्दुस्तान का बादशाह उसकी आँखों में कोई चीज़ नहीं, यद्यपि मैंने ही उसे छः हजार का मनसव दिया है। अम्बर के दरवार में बैठकर यह नमकहराम छः हजार का मनसवदार दो हाथों में काँच के दो गिलास नचाता और जैसे कहता रहता है कि इनमें से एक सतारा है, और दूसरा दिल्ली, जिसे जब जैसे चाहूँ, रखूँ, और जिसे जब चाहूँ चकनाचूर कर दूँ। कहता है कि ये दोनों कुछ नहीं हैं।

सोचकर श्रीरंगजेव दाँत पीसने लगा। अच्छी बात है, इसका बदला लिया जायगा। राजा जर्यसिंह के छोटे लड़के को अम्बर की गद्दी का लोभ दिखाकर राजा को ज़हर दिलाया जायगा। पर अन्त तक मैं बड़े लड़के को ही गद्दी पर बैठाऊँगा, जिससे कि वह बाप की दुर्दशा की याद कर ठीक ढंग से चले। छोटे राजकुमार को भी अम्बर का एक टुकड़ा दे दूँगा, जिससे दोनों में वैमनस्य बना रहे, और राज्य कमजोर रहे। इस प्रकार मुगलों को किसी बात का डर नहीं रहेगा।

अम्बर वंश का यह बच्चा इस समय मेरी मुट्ठी में है। चाहूँ तो इसे यमुना में डुबा दूँ, जिससे कछवाहा वश के बच्चे कभी भी दिल्ली की राजगद्दी में रोड़ा न अटका सकें।

सम्राट् के चेहरे पर कूर हँसी भलकी। गर्जन और वर्षा के बदले केवल विजली कौदने लगी।

आगरा के लाल किले की छाया में यमुना के नील जल पर सन्ध्या समय नौका विहार करते समय श्रीरंगजेव इन बातों को सोच रहे थे। साथ में केवल कुछ विश्वस्त अभीर थे, और साथ ही उनके लाडले अम्बर-राजकुमार जर्यसिंह भी थे। वे उस बालक से और भी प्यार जताते हुए उसे पानी की तरफ लटकाकर पानी में झुलाते हुए बोले—
अच्छा बेटा, अगर मैं तुम्हें इस समय छोड़ दूँ, तो क्या होगा?

बालक तैरने में पटु न था, पर दरवारदारी में पटु था। वह जानसांथा कि इस समय उसे लटकाने वाले दो तगड़े पर अविश्वासी हाथों के अतिरिक्त उसका कोई सहारा नहीं, नीचे है यमुना का काला पानी।

राजकुमार बोला—शाहंशाह जब हम लोगों में शादी होती है, तो एक हाथ दुलहिन के हाथ में रहता है, और हम यह समझते हैं कि दुनिया के सारे भूमेलों से हमेशा के लिए छुट्टी मिल गई। पर मुझे तो एक हाथ के बजाय दो हाथों का आश्रय

मिला है, और वह भी किसके हाथ ? स्वयं दिल्लीश्वर के हाथ । दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा, फिर मुझे किस बात की फ़िक्र है ?

फ़ौरन ही श्रीरांगजेव की आँखों में जो हिल चमक थी, वह जाती रही । मुगल सम्राट् के मन में वीर की महत्ता का वोध जाग उठा । सम्राट् ने लड़के को पानी पर लटकाये हुए कहा—वेटा ! तुम बच्चे नहीं हो, तुम तो आदमी से भी सवा हो । तुम जयसिंह नहीं, सवाई जयसिंह हो ।

उसी दिन से जयपुर के सब राजाओं के नाम के आगे सवाई की उपाधि लगती है । उस दिन पहले-पहल सवाई जयसिंह शब्द बना । क्या यह कहानी सच्ची है ?

मैंने अपने अध्यापक मित्र से पूछा कि असलियत क्या है ? वे प्रमाणिक जयपुरिया थे । पुश्त-दर-पुश्त यही रहते आये थे, और हाल ही में स्थापित राजपूताना विश्वविद्यालय के अध्यापक थे, पर इतिहास के नहीं ।

इसीलिए मैंने विशेषकर पूछा । उन्होंने हँसकर कहा—आप तो लगता है, हिसाब लगाकर इतिहास की सचाई को जांचना चाहते हैं । आप तो जानते होंगे कि हम लोग यहाँ जिस शास्त्र की आलोचना करते थे, वह ज्योतिष था, अंकगणित नहीं ।

—पर ज्योतिष में भी तो अंकगणित की ज़रूरत पड़ती है ?

पड़ने दीजिए, पर उस शास्त्र के बल पर नील आकाश में मुक्त विचरण किया जा सकता है । इस आकाश में न भालूम कितनी कहानियाँ तथा कितने चारणों के गान तैरते रहते हैं । वही राजस्थान की सत्य घटनाएँ हैं । जिस घटना से किसी क़ीम के मन का सच्चा परिचय मिलता है, वही उसका असली इतिहास है ।

—जो घटित होता है, वही एकमात्र सत्य नहीं है, आपने यह बहुत ठीक बात कही ।

ऐसा ही सुविधाजनक दार्शनिक मनोभाव बनाकर सवाई राजा जयसिंह अपने समय के अशान्तिमय बातावरण से दूर रह सकते थे । अठारहवीं सदी के भारत में कहीं शान्ति न थी । किसी भी राज्य में लोग विना विपत्ति के शान्तिपूर्वक दिन नहीं काट सकते थे । राजा-प्रजा में बहुत अधिक प्रेम या सहानुभूति का सम्बन्ध न था । राजाओं में आपस में एक सम्बन्ध ज़रूर था, पर वह था साजिश कर के दूसरों को ठगने तथा पराये राज्य को लूटने या उसे जीतने का, भारत में कोई ऐसी सार्वभौमशक्ति न थी, जो दूसरों की रक्षा कर सकती । मुगलों का शासन बुझता हुआ चिराग था, और मराठाशाही एक ऐसे चिराग के रूप में थी, जिससे घर में आग लगती थी । भाईयों या रिश्तेदारों की लड़ाई बड़े-बड़े राजघरानों की कुलरीति थी । बाहर से बराबर विदेशी लुटेरे आते, और उत्तर भारत का तहस-नहस करके चल देते । इस बातावरण में शास्त्र या कला का अनुशीलन किस प्रकार हो सकता था, और कौन उसमें सिर खपाता ?

पर एक व्यक्ति इन समस्याओं पर विचार किया करता था। वह ये सवाई राजा जयसिंह। मराठों की उठल-कूद तथा नादिरशाही तूकान से उनके मानसरोवर में कोई उथल-पुथल नहीं भयी। उन्होंने वड़ी चतुरता से जयपुर को इन झगड़ों से अलग रखा और वे स्वयं उस सरोवर में राजहंस की तरह विहार, और तरह-तरह की शास्त्र-चर्चा, समाज-सुधार, शोध और सोज तथा शिल्प को राहायता करते रहे। फिर भी वे राजनीति में किसी से कम प्रबोध न थे।

हम अम्बर में इस समय जिन विराट पहाड़ी किंते और राजपृष्ठजौ देखते हैं, और जिस आधुनिक जयपुर की हम प्रशासा करते हैं, वे वास्तव में सवाई राजा जयसिंह के कोर्त्ति-स्तम्भ हैं। जयपुर, दिल्ली, मधुरा, काशी और उज्जयिनी में हम जो मान मन्दिर देखते हैं, जिनकी प्रशासा आधुनिक ज्योतिषविद्या विशारदों ने की है, वे भी सवाई जयसिंह की अभ्यर कीति हैं। उन्होंने ज्योतिषविद्या में जिन सिद्धान्तों की स्थापना की थीं, आज भी सभी भारतीय पंचाग तथा ज्योतिष-गणना में उन्हीं पर निर्भर करते हैं। उन्होंने यूनानी ज्यामितिविद् यूविनड की रचनाओं से लेकर बहुत से पाश्चात्य गणितज्ञों की रचनाओं का सम्मुख में अनुवाद कराया। वे समरकन्द के राज्य-ज्योतिषी पुलुगवेग के गणना सम्बन्धी सिद्धान्त से संतुष्ट न हो सके, इसलिए सात वर्षों तक स्वयं निरीक्षण करते रहे, और अन्त में गणना के सम्बन्ध में एक स्वतन्त्र सिद्धान्त स्थापित किया। उस अन्धकार युग में जब समझा जाता था कि समुद्रयात्रा करने से धर्म नष्ट होता है, उन्होंने पुतंगाल के राजा इमेनुपेल के दरवार में अपने यहाँ के शिक्षार्थी भेजे, और वहाँ से ज्योतिषी वृतवाये।

यह न समझा जाय कि उन्होंने विशुद्ध ज्ञान-विज्ञान की चर्चा में ही जीवन काट दिया। उन्होंने कई ग्रावश्यक सामाजिक सुधारों के लिए भी प्रयत्न किये। हम अंग्रेजों के लिखे इतिहासों में पढ़ते हैं कि लॉड वैन्टिक ने सती-दाह बन्द कराया, पर वैन्टिक से बहुत पहले गृहन्युज्ज्वल और वाहरी आक्रमण के प्रत्यन्त अशान्तिमय वातावरण में भी केवल अम्बर के राजा होते हुए भी इन्हीं सवाई पुरुष ने सारे राजस्वान में सती-दाह बन्द कराने के लिए एक नीति शास्त्र रचा और उसके प्रचलन का प्रयास किया। दहेज का परिमाण बहुत अधिक होने के कारण राजपृष्ठ अपनी लड़कियों को पंदा होते ही मार डालते थे। सवाई जयसिंह ने इसलिए विवाह-प्रथा में भी सुधार का प्रयास किया। श्रीरंगजेव ने हिन्दुओं पर जो जजिया कर लगाया था, वह उन्हीं के प्रयत्न तथा प्रभाव से हटा लिया गया था। नवजाग्रत मराठा शक्ति उन्होंने की सहायता से पहले-पहल उत्तर भारत में आने में समर्थ हुई थी।

बहुत से विदेशियों और विधर्मियों के सम्पर्क में आने पर भी सवाई राजा जयसिंह सोलहों आने हिन्दू थे, पर वे ऐसे हिन्दू नहीं थे कि दूसरों के मत या सिद्धान्त में अच्छी

चीज़ को देख न पावें। उनकी नज़रों में जैती, मुसलमान, ईसाई सब बराबर थे। सबके शास्त्रों में वे सत्य की खोज करते थे। प्रसली ज्ञानी का लक्षण यही है। पूरोप मे नगर-निर्माण-योजना का प्रारम्भ हो रहा था, पर उन्होंने वंगाल से विद्याधर भट्टाचार्य को बुलाकर उनकी सहायता से जो नगर बनवाया, उसमें रास्तों की परिधि तथा समान दूरी पर निर्माण का जो सिद्धान्त अपनाया गया है, उसके मुकाबले में औभी तक पाश्चात्य नगर-निर्माण इस दृष्टि से कुछ उन्नति नहीं कर सका। जयपुर के हल्के गुलाबी रंग के शिल्प में जहाँ सौन्दर्य है, वही व्यावहारिकता भी है, इसलिए वह आज भी दुनिया के लोगों का ध्यान खीचती है। नगर के बाजार के बीच हवा महल की कला ऐसी है मानो एक स्वप्न मूर्ति हो गया हो।

राजपूतों की साड़ी और पगड़ी की सुन्दर रंगाई और पीतल तथा ढूसरी धातुओं पर नकाशी में जयपुर का नाम उसी समय से फैलने लगा। जयपुर अपने संगमरमर शिल्प के लिए बहुत पहले से प्रसिद्ध था, पर अम्बर के गढ़ और राजमहल के प्रसार और जयपुर के नये नगर के निर्माण में जो सवाई जयसिंह के समय हुआ, उसमें चार चाँद लग गये, और जयपुर शिल्प की एक नयी शैली बन गई।

जयपुर की दूरदर्शी राजनीतिक प्रतिभा के सम्बन्ध में हमारे अध्यापक मित्र ने जो कहानी सुनाई, उसकी परिपोषक एक घटना पहले-पहल सवाई राजा जयसिंह के राज्यकाल में ही घटित हुई थी। मुगलों ने बराबर भेदनीति से हिन्दू राजाओं को परास्त किया, और हिन्दू राजाओं में राष्ट्रीयता तो दूर रही, हिन्दू भावना भी नहीं रही, इसलिए वे मुसलमानों की भेदनीति में भी सहायक सिद्ध हुए। इसके अतिरिक्त बहु-विवाह की प्रथा होने के कारण सौतेले भाइयों में यहाँ तक कि सहोदर भाइयों में बराबर युद्ध होता रहा, और राजपूत राजा दुर्बल और अक्षम बने रहे। सवाई राजा के क्षेत्र में भी उसी कूटनीति की पुनरावृत्ति हुई।

जयसिंह और विजयसिंह सौतेले भाई थे। यदि छोटे भाई को चारेक्य प्रचारित साम, दाम, दण्ड और भेदनीति जात हो, तो वह इस महाविद्या के भरोसे सिहासन पर अधिकार जमा सकता था। मुगल सम्राटों के क्षेत्र में यही हुआ था, इस बात को विजयसिंह ने अच्छी तरह देख लिया था। इसलिए विजयसिंह ने सम्राट् के दरबार में दाम-नीति से काम लिया और सम्राट् के बजीर को जवाहरात भेंट कर अम्बर राज्य के एक-तिहाई सबसे उपजाऊ हिस्से पर अपना दावा दायर कर दिया। सवाई राजा ने जब देखा कि और कोई चारा नहीं, तो उसने बजीर के हुक्म को तामील किया। तब और भी पाँच करोड़ रुपये और पाँच हजार घुड़सवार सेना को देकर—विद्वान् पाठक इसे रिश्वत न कहेगे, ऐसी आशा है—विजयसिंह ने पूरे अम्बर पर ही अपना दावा पेश कर दिया, और मुगल दरबार में सनद तैयार होने लगी।

पर जयसिंह एक व्यक्ति नहीं, वल्कि सबा थे, इसलिए वे सहज बुद्धि से समझ गये कि दान के जवाब में दान देने से पांसा ठीक न पड़ेगा। अब चारणक्य की दूसरी नीति याने भेद-नीति चलनी चाहिए। उन्होंने सब सरदारों को निमंत्रण देकर बुलाया, और यह कहा कि मैं आप लोगों की इच्छा से ही गद्दी पर बैठा, और अब सम्राट् के बज़ीर साहब की यह इच्छा है कि मेरे भाई गद्दी पर बैठें, इसलिए अब जो प्रभु की मर्जी है, वही हो, मुझे उसमें कोई आपत्ति नहीं।

अम्बर के बारह प्रधान सामन्तों को यह आश्वासन मिला कि जयसिंह विजयसिंह के लिए एक-तिहाई राज्य छोड़ देंगे। उन्होंने विजयसिंह के पास यह सदेशा भेजा, साथ ही यह भी कि यदि जयसिंह ने अपनी बात न रखी, तो वे खुद विजयसिंह को अम्बर की गद्दी पर बैठा देंगे।

अन्त में काफ़ी फ़ौज-फाटे के साथ विजयसिंह को एक तिहाई राज्य पर अधिकार करने के लिए भेजा गया। सरदारों ने चाहा कि इस मीके से लाभ उठाकर दोनों भाइयों में सचमुच मेल करा दिया जाय। विजयसिंह को इस बात के लिए राजी होना पड़ा, क्योंकि विशाल हृदयता के उत्तर में विशाल हृदयता यह राजपूत धर्म था। फिर भी शेर की माँद में घुसकर सवाई सिंह के साथ दोस्ती और मिलन नहीं हो सकता। इसलिए कुछ मील की दूरी पर एक पहाड़ी किले के पास विजयसिंह ने तम्बू गढ़े। जिस समय जयसिंह भाई से मिलने के लिए रवाना हो रहे थे, उस समय नाजिर ने आकर उनके हाथ में एक पत्र दिया। राजमाता ने इस पत्र में यह लिखा था कि वे दोनों लाल जी के मिलन का दृश्य अपनी आँखों से देखना चाहती है। इस पर डबडबायी आँखों से सवाई राजा ने सामन्तों की ओर देखा। रुंधे हुए कण्ठों से सबने इस शुभ प्रस्ताव का स्वागत किया। सब लोगों ने कहा—ज़रूर-ज़रूर।

सवाई राजा के लोगों ने तैयारी शुरू की। बात यह है कि राजमाता की सखियों की सेना भी थोड़ी न थी। उनके लिए परदों से घिरे तीन सौ रथ सजाये गये। दो-दो स्त्रियाँ एक-एक रथ में थी। छः मील लम्बी डगर में प्रजा की भीड़ उमड़ी पड़ती थी। सब लोग इस बात के लिए दोनों भाइयों की जय बोल रहे थे कि अब भाइयों में मेल होगा। रास्ते में जमा लोगों को रूपये-पैसे लूटाये जा रहे थे। अम्बर राज्य के इतिहास में आनन्द की ऐसी शुभ घड़ी कभी नहीं आई थी।

सन्देशवाहक दूत ने आकर जमीन तक भुक्कर, सीने पर हाथ रखकर यह निवेदन किया कि राजमाता गढ़ के राजमहल में आ पहुँची है। राजा और सामन्त वहाँ आने के लिए तैयार हो गये। दोनों भाई रुंगासे होकर प्रेमालिंगन में बैঁध गये। जयसिंह ने भाई के हाथ में एक-तिहाई की सनद देते हुए रुंधे हुए कण्ठ से कहा—भाई, यदि तुम्हारी इच्छा है, तो अम्बर का सिंहासन ले लो। हाँ, यदि चाहो, तो मेरे ख़ुन्न के

लिए एक जागीर दे दो ।

राजपूत होकर कोई किसी से उदारता में पीछे कैसे हटता ? विजयसिंह ने उससे भी अधिक उदारता दिखाकर कहा—मैं कुछ नहीं चाहता, बस, मुझे तुम माफ करदो ।

अब विदाई का समय आया । इतने में नाजिर ने आकर खबर दी कि यदि सामन्त हृष्ट जायें, तो राजमाता आकर दोनों भाइयों को आशीर्वाद दे जायें । जयर्सिंह अब तक हँगासे बने हुए थे, बोले—वारह घरानों की जो राय होगी, वह उनके लिए शिरोधार्य है ।

वारह घरानों ने यह इच्छा प्रकट की कि दोनों भाई राजमाता के पास चले जायें, और आशीर्वाद लें । इस पर दोनों भाई हाथ पकड़कर चले । ड्यूड़ी के सामने जयर्सिंह ने कहा—माता से मिलते समय इसकी क्या जरूरत ? कहकर उन्होंने अपनी तलवार निकालकर एक लोजा सन्तरी को दे दी । विजयसिंह भी पीछे क्यों रहते । उन्होंने भी ऐसा ही किया ।

उनके पीछे नाजिर था, उसने दखवाजा भेड़ दिया । राजमाता और दो भाई, दो आपस में लड़ने वाले भाइयों का पुनर्मिलन, कितना सुन्दर दृश्य था ! राजा रामचन्द्र से अवतीर्ण कुशध्वज वंश के ऐतिहासिक राजपत्रिवार के भागड़े का अन्त होने वाला था । बाहर सामन्त प्रतीक्षा कर रहे थे । इस बीच राजमाता धीरे-धीरे अपनी छः सौ सखियों के साथ अम्बर लौट चली ।

पर वह राजमाता नहीं थीं । राजमाता के भेष में मल्लवीर सेनापति था । और राजमाता की सहेलियों के रूप में जो लोग थे, वे पुररक्षक सिपाही थे । राजमाता के साथ याने राज सेनापति के साथ अब हाथ-पैर बैंधे बन्दी विजयसिंह थे । विशाल शरीर वाले राज सेनापति ने पलक मारते ही विजयसिंह को गिराकर बन्दी कर लिया था ।

अम्बर के पहाड़ी किले में बन्दी के पहुँचने की खबर पाने के बाद जयर्सिंह अकेले सामन्तों के सामने आये । सब लोग पूछने लगे कि विजयसिंह कहाँ गये ? जयर्सिंह ने इसके उत्तर में कहा—वह मेरे पेट में है । स्वर्गीय महाराज के दो पुत्र हैं । मैं उनमें से ज्येष्ठ हूँ । यदि आप समझते हैं कि विजयसिंह को राजा बनना चाहिए, तो आप मुझे मार सकते हैं ।

सामन्तगण इसका कोई उत्तर नहीं दे पाये । फिर भी विश्वासघात से वे चिढ़े हुए हैं, इस बात को जयर्सिंह समझ गये, इसलिए उन्होंने कहा—मैंने आप लोगों के लिए ही यह पाप किया है । विजयसिंह के राजा होने पर उसके साथ आये हुए मुग़ल वज़ीर के छः हजार पठान देश को लूटते रहते, और आपके पल्ले कुछ न पड़ता ।

सामन्तगण परिस्थिति को समझकर लीट गये । दिल्ली की ओर से जयसिंह के साथ जो अन्याय किया गया था, उन्होंने अपनी कूटनीति से उसका निराकरण कर दिया । उनके इस कौशल के कारण जयपुर को कभी पछताना नहीं पड़ा । सच तो यह है कि उस युग में उनकी तरह का राजनीतिज्ञ, कानून बनाने वाला, शास्त्रज्ञ और वैज्ञानिक नहीं मिलता ।

हिन्दू केवल दार्शनिकता में छूटे रहते हैं । सांसारिक जीवन में वे तिलतिलकर मिटते रहते हैं, सशक्त होने पर भी शब्द के मुकाबले में ठहर नहीं पाते । पर सवाई राजा जयसिंह में दार्शनिकता और व्यावहारिकता का अद्भुत सम्मिश्रण था । हिन्दुओं में इतिहास लिखने की प्रथा नहीं है, पर उन्होंने अपनी पुस्तक में सारी उल्लेखनीय घटनायें लिखवा दी है । जब वे मरे, तो तीन पत्नियाँ यहाँ तक कि कई उपपत्नियाँ उनके साथ चिता पर चढ़ीं । पर इस बात को राजस्थान के किसी व्यक्ति ने नहीं समझा कि उनकी मृत्यु के साथ-साथ बहुत-सी विद्यायें भी चिता पर चढ़ गईं ।

राजपूत का युद्ध-वर्णन

अम्बर के साथ वंगालियों का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इसीलिए शायद इसे राजपूतों के आमेर कहने पर भी वंगालियों ने अम्बर के अतिरिक्त कुछ नहीं कहा।

मुग्गल युग में वंगाल बारह भुइयों में विभक्त था। वहाँ ऐसा कोई व्यक्ति पैदा नहीं हुआ, जो इन सब भुइयों को मिलाकर भागती पठान-शक्ति तथा उदीयमान मुग्गल-शक्ति को हटाकर बगाल को स्वतन्त्र करता। मुग्गल पठानों के युग में एक-एक कर सभी भुइयों ने इन शक्तियों से लोहा लिया, पर वे हार गये। राजा प्रतापादित्य भी इसी प्रकार हार गये, और मानसिंह ने उनकी कुल प्रतिमा यशोरेश्वरी की मूर्ति को ले जाकर अम्बर में स्थापित किया।

एक जनश्रुति यह भी है कि मानसिंह पहली बार प्रतापादित्य से हार गये, पर उन्होंने स्वप्न देखा कि पास ही में काली माई मिट्टी के नीचे गड़ी हुई है, और मानसिंह उन्हें निकालकर उनकी पूजा करें, तो वे युद्ध में सफल हो सकते हैं। मानसिंह ने ऐसा ही किया, और वे लड़ाई में जीत गये। बगाल-विजय के बाद मानसिंह ने इस मूर्ति को अम्बर में प्रतिष्ठित किया। पर यहाँ मूर्ति का नाम यशोरेश्वरी नहीं, शिल्लादेवी है।

फिर भी यह ध्यान देने योग्य है कि मूर्ति के साथ वंगाली पुजारी आये, और उन्हीं के बंशधर अभी तक पहाड़ी किले के मन्दिर में पुजारी का काम करते हैं। अम्बर में इतने मन्दिर हैं कि यह स्थान गिरि-दुर्ग होने के साथ-साथ गिरि-मन्दिर भी हैं।

एक बगाली और उसकी सहर्घमिरणी जमीन तक झुककर बंगाल के बाहर आई हुई मूर्ति को प्रणाम कर रहे थे। दोनों गरद नामक लाल रेशमी वस्त्र पहिने थे, हाथ में ताम्रपात्र में लाल चन्दन, और लाल जवा फूल थे। चरणों पर मुट्ठियाँ भर-भर लाल जवा फूल पाकर व्या माँ को अपने श्यामल बगाल की याद आ रही थी? इच्छा हुई कि मन ही मन पूछूँ, पर मन्दिर के दरवाजे की दीवार पर संगमरमर में बने हुए हरे केले के पीछों की तरफ मैं धूरता रह गया।

युद्ध के फलस्वरूप मूर्ति प्राप्त करने की और एक कहानी जयगुर के इतिहास में है।

सबाई राजा की प्रधान कमज़ोरी यह थी कि वे पियकड़ थे। अम्बर के

राजलेखकों ने उनकी प्रिय शराबो का तैयार करने के ढंग पर कुछ नहीं लिखा। यह कला भी वाकी सब सुकुमार कलाओं की तरह एक कला है। कोई एक हजार वर्ष पहले प्राच्य और पाश्चात्य अनेक विद्याओं में पारंगत गुणी विद्वान् अलबर्लनी ने हिन्दुओं की अपनी विद्याओं और कलाओं को छिपा रखने की मनोवृत्ति की तीव्र निन्दा की थी। अलबर्लनी शब्द का अर्थ ही विदेशी है, वे यहाँ इसी नाम से पुकारे गये, और शिक्षार्थी होने पर भी भारतीयों ने उन्हें बहुत कम बातें सिखाई। कुछ हो, सवाई राजा जर्सिह ऐसी शराब पीते थे जिससे बढ़कर उत्तेजक शराब कहते हैं राजस्थान में भी नहीं मिलती थी। जिस समय राजा नशे में होते थे, उस समय उनके सामने कोई राजकाज लाना निषिद्ध था। कई बार ऐसा भी हुआ कि प्रार्थीगण राजा से साफ कह देते थे कि वे स्थिरमति राजा से फैसला चाहते हैं, न कि शराबी राजा से। शराबी राजा के बदले स्थिरमति राजा से आवेदन की कहानियाँ तो बहुत मिलती हैं। यहाँ इसके विपरीत स्थिरमति के बदले शराबी राजा से आवेदन की एक कहानी दी जाती है।

एक दिन की बात है कि जब राजा सवाई जर्सिह ग्रन्वर के शीश महल में प्याले पर प्याले चढ़ा रहे थे, वीकानेर के राजा भक्तसिंह के दूत ने ग्राकर उनसे मिलना चाहा। पर ऐसे समय किसी को मिलने का अधिकार न था। हाँ, बंगाली प्रधान मंत्री विद्याधर का असीम प्रभाव था। उन्हीं की सहायता से दूत को यह मौका मिला कि वह राजा साहब के निकट अपनी अर्जी पेश करे। वह खड़े-खड़े कुछ निवेदन करना चाहता था।

निवेदन भी भक्तसिंह के पत्र में लिखा था। मारवाड़ के भाराराजा अभयसिंह और वीकानेर के राजा भक्तसिंह भाई-भाई थे। वीकानेर मारवाड़ का ही छोटा अंश था। बंगाली जमींदारों में कुछ दिन पहले तक दो भाइयों में लड़ाई का फैसला लाठियों से होता था। इसलिए यदि राजपूतों के देश में राजाओं में यही तरीका प्रचलित था, तो इसमें आशर्चर्य की क्या बात ?

वीकानेर के भक्तसिंह मारवाड़ के राजा के प्रति यथेष्ट सम्मान प्रदर्शित कर रहे थे, इसीलिए अभयसिंह ने भाई के राज्य पर आक्रमण कर उस पर धेरा डाल दिया था। भक्तसिंह ने अपने निवेदन में लिखा था कि वे जयपुर के भगत राजा जर्सिह के अलावा और किसी के सामने सर नहीं झुका सकते। इसलिए यह अनुरोध किया गया था कि वे चलकर भक्तसिंह की सहायता करें।

शराब के साथ-साथ अहं ने जोर मारा, और जर्सिह ने पानपात्र (प्याला) छोड़कर भसीपात्र (दावात) पकड़ा, और अभयसिंह को लिखा कि वे फौरन वीकानेर का धेरा उठा लें। दावात सामने से हट गई, और प्याला फिर सामने गया, इतने में „ने कहा—महाराज ! इसमें इतना और लिख दें कि मेरा नाम जर्सिह है।

फिर शराब ने जोर किया, और जयसिंह ने मूँछो पर ताव देकर वही काम किया। पलक भारते हीं दूत वंहाँ से रवाना हो गया, और उसने अम्बर के बाहर जाकर ही साँस ली। सन्देश अभयसिंह तक पहुँचाया गया, तुरन्त उसने उत्तर भेजा— तुम कौन होते हो, मुझे हुबम देने वाले। यह हमारे राज्य का अन्दरूनी भगड़ा है, इसके बीच में पड़ने वाले तुम कोई नहीं हो। यदि तुम्हारा नाम जयसिंह है, तो मेरा नाम भी अभयसिंह है।

वस, युद्ध के नगाड़े घोर रव करते मारवाड़, बीकानेर और अम्बर में बज उठे। अभयसिंह ने बीकानेर का धेरा उठा लिया, और वह जयसिंह के साथ लड़ने के लिए सन्नद्ध हो गया। सबसे मजे की बात यह हुई कि भक्तसिंह भी जयसिंह के साथ लड़ने के लिए आगे बढ़ आया। इसी को कहते हैं, होम करते हाथ जलना। ऐसी बात राजपूताने के लिए आश्चर्य की नहीं। राजपूतों में गोत्रों का प्रभाव और किस बन्धन से ज्वरदस्त था। इसलिए एक राठौर के अपमान की सम्भावना से भक्तसिंह एकाएक आतृभक्त बन गये, और बोले कि मैं अकेला ही जयसिंह को मारवाड़ के बाहर कर आऊँगा। पर अभयसिंह साजिश में कम नहीं थे, इसलिए उन्होंने इस प्रस्ताव को पहले तो नहीं भाबा, पर जब देखा कि भक्तसिंह युद्ध की सारी जिम्मेदारी उठाने को लालायित है, और राठौर बश के लिए लड़ना चाहता है, तो बात मान ली। महामुनि कौटिल्य के कंटकेनैव कटकम् वाक्य को मानकर ही अभयसिंह ने ऐसा किया, यह किसी को न सोचना चाहिए।

राजपूतों की युद्धयात्रा का एक सुन्दर नमूना इस कहानी में प्राप्त होता है। कोई दो सी वर्ष पहले की घटना है, पर राजपूत इतिहास के आरम्भ से उनके योद्धा जीवन के अन्त तक इसी प्रकार युद्धयात्रा हुई। विशाल तोरण पर नगाड़ा बज उठा। 'खेर' यानी सामूहिक रूप से युद्ध करने का आह्वान किया गया। तोरण के पास भक्तसिंह आकर खड़े हो गये। दो तरफ ताँबे के दो बड़े पात्र रखे गये। एक में अफीम का श्रक्त था, और दूसरे में केसरिया पानी। तोरण के नीचे से जितने भी राजपूत निकले, उनको भक्तसिंह ने अपने हाथ से अफीम का श्रक्त पिलाया, और दाहिने हाथ से उनके सीने पर केसरिया पानी की छाप लगा दी। इस प्रकार से आठ हजार मृत्यु बरण वाले योद्धा जमा हो गये। तब भक्तसिंह ने कहा—जो लोग मरने से घबड़ते हों, वे अब भी लौट सकते हैं, और किसी को कानोंकान पता नहीं चलेगा। हम लोग युद्धयात्रा के समय बाजरे के खेत के अन्दर से चलेंगे। उस समय वे लोग जो बिना जीते ही लौटना चाहते हैं, चुपचाप खेत के अन्दर खिसक जायें। मैं पीछे मुड़कर नहीं देखूँगा कि कौन साथ है, और कौन पीछे लौट रहा है?

पाँच हजार से अधिक राजपूत मरने के लिए प्रस्तुत होकर आगे बढ़े, पर

विशाल शब्द-सेना के सामने वे टिक न सके, और बहुत थोड़े सैनिक जिन्दा लीटे। इन लीटने वालों में एक भक्तसिंह भी थे। अपनी सेना की यह दशा देखकर वह रणवाँकुरा वीर जो शत्रु के व्यूह को बार-बार भेदकर आगे बढ़ चुका था, अश्रुधारा घहाने लगा। भक्तसिंह की वीरता का वर्णन शत्रुपक्ष के चारणों के गीतों में पाया जाता है। वीरता हो, तो ऐसी हो कि शत्रु भी प्रशंसा करे। जयसिंह के दरवारी चारणों ने राजस्थानी डिगल भापा मुँ भक्तसिंह का यश गाया है। जिसका भावार्थ इस प्रकार है—

काली का रण धोप है,
या हनुमत का हुँकारा है।
कपिल मुनि का रोप है,
या शेष की फुँकारा है॥
नृसिंह श्रवतार धारा है,
या सूर्य किरण विस्तारा है।
डंकिनी की मृत्युदायिनी दृष्टि,
या शिव के तृतीय नेत्र की वृष्टि।

भक्तसिंह जब तलवार खीचते हैं तब उसकी ज्वाला को कौन रोक सकता है !

शत्रु वीर था, तो जयपुर वाले भी कम वीर नहीं थे, यह इन गीतों से ही स्पष्ट हो जाता है। वीरता का इस प्रकार सम्मान करना वीरधर्म के ही उपयुक्त है।

यहाँ पर स्वतः एक ऐसा प्रसंग याद आता है, जिसमें शत्रु की वीरता की प्रशंसा की गई है। इस प्रसंग में भी राजपूतों की वीरता का वर्णन किया गया है। किसने यह वर्णन प्रस्तुत किया यह भी सुन लीजिये। वर्णन प्रस्तुत करने वाले हैं, राजपूत जाति के उत्थान की आशा को जड़-मूल से नष्ट करने वाले, मुगल साम्राज्य के स्थापक सम्राट् बाबर।

फतेहपुर-सीकरी की लड़ाई में भेवाड़ के राणा सांगा के नेतृत्व में सम्मिलित राजपूत सेनाओं ने जब मुगलों को धेर लिया था, उस समय का वर्णन बाबर ने तुर्की भापा में अपनी आत्मकथा में किया है। यह वर्णन बहुत ही भार्मिक है। इसका भावार्थ इस प्रकार है—

“मृत्यु की सस्था के समान शत्रु का दल बढ़ा चला आ रहा है। शत्रु नीच पिशाच है। वह रात्रि के धोर अँधकार के समान काला है। उनकी संख्या आसमान के तारों के समान अनगिनत है और आग की लपटों की तरह वे बढ़े आ रहे हैं। ऐसा मालूम होता है मानो धुएँ के नीले गुब्बारे हिसा रूप धारण किये हुए सिर उठाये चले आरहे हैं। हजारों घुड़सवार और पैदल चीटी दल की तरह दायें और बायें से उमड़ रहे हैं।”

इसी युद्ध के वर्णन में उन्होंने आगे चलकर रवाइयों की सहायता ली है, और राजपूत सेना की तुलना वज्र और विजली से की है—

“समुद्र के गर्जन की तरह या भीषण तूफान के तर्जन की तरह आकाश में रेत के बादल बनकर क्षण मात्र में युद्धक्षेत्र पर शत्रु छा गया। उसकी तलवारों की चमक ने विजली की चमक को भी भात कर दिया और उसे देखकर सूर्य भी काला पड़ गया।”

यह कहा जा सकता है कि शत्रु की वीरता का तारीफ़ करना ज़रूरी इसलिए था कि अपनी वीरता उभरकर सामने आवे, वयोंकि आखिर राजपूत सेना हार गई, और विजय का सेहरा तो बाबर के ही सिर पर बँधा। पर भक्तसिंह वाले प्रसंग में यह बात नहीं कही जा सकती। यह राजपूतों का गुण रहा है कि शत्रुता चाहे जैसी विकट वयों न हो, शत्रु की वीरता का उन्होंने सम्मान किया है। जो खोलकर प्रशंसा की है, रंचमात्र कंजूसी नहीं दिखाई।

कुछ हो, राजपूतों की शिवेलरी (वीरता) बहुत ऊँचे दर्जे की थी। कहाँ तो भाई से लड़ाई, और कहाँ भाई पर विपत्ति आते ही स्वयं मर मिटे। वीरता में राजपूत ही प्रथम हैं। यूरोप का सारा इतिहास एक तरफ़ और राजपूतों की वीरता का इतिहास एक तरफ़।

सबाई राजा की बात पर लौटा जाय। उस युद्ध में भक्तसिंह की एक देवमूर्ति जयसिंह के हाथ लगी। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार राजा मार्त्सिंह के हाथ पराजित वीर प्रतापादित्य की यशोरेश्वरी देवी लगी थीं। जर्यसिंह ने अम्बर की एक देवी की मूर्ति के साथ उसका विवाह कर दिया, और बाद में सौगातों के साथ उस मूर्ति को भक्तसिंह को लौटा दिया।

राजपूत हृदय की इस विशालता को हम जर्यसिंह की राजनीति में भी विशेष रूप से प्रतिफलित देख सकते हैं। देशभक्ति मनुष्य को कुछ हद तक संकीर्ण बना देती है, इसीलिए अम्बर वंश की देशप्रीति अम्बर राज्य को पारकर समग्र भारत या समग्र राजस्थान में फैल न सकी। इसीलिए अम्बर ने कभी राजस्थान की स्वतन्त्रता के लिए मुगल संग्रामों से लोहा नहीं लिया। दिल्ली से केवल डेढ़ सौ मील की दूरी पर अरावली पर्वतमाला की आड़ में रहकर जयपुर और कर ही वया सकता था? जहाँ राजशक्ति और जनता एकमन, एकप्राण नहीं, वहाँ इससे अधिक की वया आशा की जा सकती थी? उन दिनों सामन्तवाद ही राजशक्ति का एकमात्र अवलम्बन था, फिर राजशक्ति किस तरह हद से अधिक साहस दिखाती?

जर्यसिंह मेरे यह शवित नहीं थी कि मुग़लों के पतनोन्मुख साम्राज्य को बचा सकें। नादिरशाह की तरह महापराक्रमी बाहरी शत्रु को रोकने या भगा देने की शक्ति

उनमें नहीं थी, और न उनका प्रभाव इतना श्रद्धिक था कि वे सब राजाओं को एकत्र करके किसी शक्ति से भोचा लेते। मराठी में उदीयमान शक्ति का स्फुरण हो रहा था, पर उनके सामने लूट-प्यासोट का ही एकमात्र उद्देश्य था। वे इसी के लोभ से उत्तर भारत में बढ़ रहे थे। उन्हे दक्षिण में ही रोक रखना सम्भव न था। फिर भी सवाई राजा जयसिंह जयपुर को इन विपत्तियों से सुरक्षित रख सके, केवल यही नहीं, वे अन्य राजपूत राजाओं को भी बचा सके, यह उनके लिए बड़ी प्रशंसा की बात है। भले ही वे बड़े योद्धा न माने जायें, पर उनकी राजनीति कुशलता के सम्बन्ध में दो रायें नहीं हो सकती। विजय केवल बुद्ध में ही नहीं होती, शान्ति की विजय उससे कम नहीं होती।

अम्बर के पहाड़ी किले या राजमहल के भोतर के सुन्दर चित्रों को तथा संगमरमर के काम को देखकर सवाई राजा जयसिंह की बात फिर याद आई। एक तरफ उन्होंने अम्बर को कलाकार की दक्षता से सुसज्जित किया, और दूसरी तरफ उन्होंने जयपुर का एक स्त्रष्टा की दूरदृष्टि से न्यनिर्माण किया। उन्होंने प्राचीन प्राप्य विद्याओं का पुनरुद्धार किया, साय-ही-साथ पाश्चात्य की तरफ से आने वाली हवाओं के लिए जयपुर के झरोखे खोल दिये। बहुत से लोग यह समझते हैंगे कि अजायवधर, चिड़ियाखाना, ग्रस्तगाला, पोथीगाला आदि संस्थाएँ भारत में अंग्रेज के द्वारा स्थापित की गई हैं, पर अंग्रेजों से बहुत पहले ही सवाई राजा जयसिंह इन का बीज दो गये। सचमुच ही वे एक व्यक्ति नहीं, सबा थे।

यहाँ प्रदन उठता है, विजयसिंह का बया हुआ ?

किसी को मालूम नहीं।

अम्बर के पहाड़ी किले से भी ऊपर पहाड़ पर एक भयानक किला-सा दिखलाई पड़ता है। वह क्या है ? वहाँ कौन लोग रहते थे ? किन लोगों की लम्बी साँसें पैर की जजीरों की श्रावाज से मिलकर ऊपर उठ जाती थीं, पर नीचे के राजमहल से उठने वाली छमछम के मुकाबले में बीच रास्ते में ही परास्त हो जाती थीं, और किसी को कानोंकान इसकी खबर नहीं होती थी। पता नहीं वे कौन थे, जो उस किले की घटन में घुल-घुलकर भर जाते थे।

जब सप्तम एडवर्ड प्रिंस ऑब वेल्स के रूप में जयपुर प्रभारे थे, उस समय उन्होंने उस ऊपरी किले को, देखने की इच्छा प्रकृष्ट की थी, पर महाराजा साहब ने इतनी दृढ़ता के साथ बात बदल दी कि सप्त सागरा वृटानियाँ के भावी अधीश्वर को यह हिम्मत न हुई कि दोबारा उस प्रश्न को उठावे।

जयपुर की पर्वतमाला की चोटियों पर वनी चहारदीवारी के पीछे सूर्य ढूब रहा था। बन्दरों के भुंड इस बीच न जाने कहाँ चले गये थे। चारों तरफ चिन्ता में

उवा औंधेरा घिरने लगा था । यगोरेश्वरी के मन्दिर में सन्ध्या समय की आरती का घटा बजने लगा था । मेरा मन अचानक बंगाल पहुँच गया । यशोर की इच्छामती नदी के किनारे क्या कभी वह ध्वनि पहुँचती है ? पर इन बातों को सोचने का मीका नहीं मिला, क्योंकि जलदी उतर जाना था । दूर में जिसी पालतू हिरन पर शायद चोता हमला कर रहा था उसके गले की घंटी की आवाज के साथ-न्याय उसका आतंनाद तैरता हुआ आ रहा था । औंधेरे में श्रम्भर के पहरे पर सियारों के दल ढटे हुए थे ।

रसिक जीवन

रांधो विना तूने,
नाजो विना चूने पान ॥
टाका विना विये करे,
करो नाच • गान ॥

यह बँगला कवित्त मेंने कही गुना था । इसका अर्थ है—‘विना नमक के रसोई करो, विना चूने के पान लगाओ और विना रप्यों के शादी करके नाचो-गाओ ।’ मुझे यह कवित्त बहुत प्रभाव आया था । एक नाहव ने मुझ से यह कवित्त मुना, तो उन्हें यह कवित्त इतना अच्छा लगा कि वह इसे तान-स्वर में धाँधने की कोशिश करने लगे ।

सच तो यह है कि गाने के लिए इससे बड़ा प्रसंग और क्या हो सकता है ? इसमें यह नहीं कहा गया कि विश्व पर विजय प्राप्त करने के लिए चल पड़ो । न यही कहा गया कि अलाउदीन के चिराग की मदद ली जाय । यहाँ तक कि कोई मुद्दिल हिसाब करने के लिए भी नहीं कहा गया । केवल अपने अभाव और अमुविधावी को भुलाकर चैन की बाँसुरी बजाने के लिए कहा गया है ।

हम लोगों के सीधे-सादे गृहीतों के जीवन में इससे हितकर उपदेश नया हो सकता है ? मुहल्ले को चौपाल में बैठकर अखबारों के ‘आवश्यकता हैं’ वाले विज्ञापन-स्तम्भ पर आँख फेरते-फेरते अपनी अन्तिम बीड़ी का आराम से कथ लेने ; ए सभी लोग मान लेंगे कि यह सुन्दर कवित्त है । यदि इस कवित्त को अपना नारा बनाकर कोई उम्मीदवार यह धोपणा करे कि जीवन के प्रति उसका यही दृष्टिकोण है, तो उसे निर्वाचन की लड़ाई में सफलता अवश्य मिलेगी. ऐसा मैं हलफिया कहने को तैयार हूँ ।

चिन्ता और जिम्मेदारी से बचते हुए आराम कौन नहीं चाहता ।

पहले के ज़माने में राजाओं के सिर पर पगड़ी कितने दिन तक रहेगी, वह सिर राजछढ़व के नीचे शोभायमान होगा या शत्रु की वर्दी की नोक पर दिखाई देगा, यह किसी को पता नहीं होता था । इसलिए राजाओं की मनोवृत्ति ऐसी बन जाती थी कि भौका लगे, तो भौज उड़ाओ । हम साधारण लोग तो यही समझते हैं कि दो दिन की दुनिया है, हँस-खेलकर विता लो । जो ऊँचे दर्जे के लोग हैं, वे उमरखब्याम की भाषा में (कहते हैं कि असल में अह रुवाई हकीम तावा तावाई की लिखी हुई है, पर

रसिकों ने इसे उमरन्वयाम के नाम से चला दिया है) कहते हैं—

रोजे कि गुजिश्ता अस्त आजो याद मकुन,
फुर्दा के न आमदा अस्त फरियाद मकुन,
पजह आमदा व बर गुजिश्ता बुनियाद मिने
हाले खुशबाश व उम्र बरवाद मकुन।

इसका भावार्थ इस प्रकार है—वीती को विसारकर आगे की सुधि ले । पर बहुत आगे की भी सुध मत ले, योकि भूतकाल और भविष्यकाल दोनों की कोई बुनियाद नहीं । वर्तमान समय में खुश रह, कल की चिन्ता करना बेकार है ।

यही हमारे राजाओं का त्र रहा ।

उनमें मौज उड़ाने की शक्ति भी बहुत थी, साथ ही अपने मन की वासना को रंगीन बनाकर वे उसे इन्द्र-घनुप की तरह आकाश में फैला सकते थे । न मालूम कब क्या हो जाय, सिर रहे या न रहे, इसलिए सुख-भोग के सम्बन्ध में उनकी नीति इस प्रकार रहती थी—

“दूढ़े बद्दे लेत कमाय, आदिर जैहे सींग दिखाय ।”

सभी दरवारों में नाच और गाने की महफिलें लगी रहती थीं, इसका शायद यही कारण है । भविष्य पर जिसका भरोसा जितना कम होता है, वह वर्तमान को उतना ही अधिक महत्व देकर पकड़े रहता है । इसीलिए विलकुल हाथ के पास हर समय मौज के सब सामान रहते थे । मृसाहबों का भुंड राजाओं की सख-पिपासा की आग में धी का काम कर उसे भड़काता रहता था ।

यही हालत दिल्ली के सब्राट अलाउद्दीन की थी । उन्होंने बड़ी मुश्किल से मुगल आक्रमणों को रोक रखा था । उनके सम-सामयिक इतिहास, ‘तारीख-ए-फ़ीरोजशाही’ में जियाउद्दीन वर्नी ने लिखा है कि किसी भी धुग में, और किसी के राज्यकाल में इतनी बड़ी सेनायें परस्पर नहीं लड़ी । ऐसी हालत हो रही थी कि न मालूम कब पठानों का सूर्यस्त हो जाय । पर जब पठान राज्य रह गया, तो ग्रलाउद्दीन ने सुख भोगने के कार्यक्रम को इस हद तक पहुंचाया कि उसकी इति-श्री हो गई ।

अलाउद्दीन ने एक दौर जारी रखा जिसमें खाना-पीना, नाच-गाने, रंगरेलियाँ चला करती थी । इतिहासकार वर्नी ने लिखा है—‘विराट कामना और उच्चाकाशा इस प्रकार लहरें लेने लगी कि वह स्वयं उसमें डूब गया, और उसका दिमाग् बेहूदगियों का खजाना बन गया ।’

अलाउद्दीन में सामर्थ्य थी, इसलिए उसने इस प्रकार जिन्दगी काटी, पर कई बार ऐसा भी देखा जाता है कि विना सामर्थ्य के भी लोग ऐसा करते रहते हैं । डॉक्टरों का कहना है कि खून में एक बार मलेरिया के कीटाणु घुस जायें,

तो वे जल्दी पीछा नहीं छोड़ते। भोग की लालसा तरी भी मही हालत है। लत पढ़ गई, तो फिर छूटती नहीं।

मध्य श्रादि अनमकार मलेरिया की तरह है, बल्कि उससे भी भयकर। इसी तरह मुंह बनाकर, गले का थ्रूक निगलकर बककर में लिपटी कुर्नन की गोलियाँ खा सकता है। साईं कि मलेरिया में छट्टी मिली, पर पंचमकार की लत की क्या दवा है?

इस लत की दवा नहीं, इसका प्रमाण अलाउद्दीन के जीवन से ही मिलता है। अलाउद्दीन अन्तिम दिनों में ममझ गये थे कि उन्होंने जो-जो गुराफ़ात किये, उनसे अमीर-उमरा विगड़ गये हैं या निकम्मे बन चुके हैं। राज्य में जगह-जगह अशान्ति और विद्रोह भी इसी कारण हो रहे थे। इसनिए उन्होंने बड़े प्रयास से यह सब धटा दिया और शराब बन्द करदी। उन्होंने अपने दरबारियों के वैयक्तिक और पारिवारिक जीवन में बहुत तरह के नियम और संयम जबदेस्ती लागू कर दिये। एकाएक चरित्र-वान् बनने के इस अभियान से दरबारियों के नाकों दम आ गया।

उधर शरीर पर निरन्तर अत्याचार करने के कारण अलाउद्दीन जल्दी ही डैंगोल गये। पर जिसे खून का चक्का पढ़ जाता है, वह उसे भूलता थोड़े ही है। इसलिए उनके अनुचरों ने उनके अन्तिम दिनों के उपदेशों को बुड़भस मानकर महाजनों येन गतः स पन्थाः का अनुकरण किया। उनके विशेष प्रिय गुलाम मलिक काफूर ने अपने हाथ में सामर्थ्य रखने के लिए अलाउद्दीन की मृत्यु-शैया से हुक्मनामा निकलवाकर बड़े शाहजादे को कैदखाने में डाल दिया था। अब उसने अपने नाई को दूसरे शाहजादे की आँखें फोड़ डालने को भेजा। इसके अलावा उसने अलाउद्दीन के सब लड़कों तथा उत्तराधिकारियों को कैद में डलवा दिया, और अन्त में उन्हें मरवा भी दिया। उसे डर था कि कहीं भविष्य में ये तत्त्व के दावेदार न बन जायें। शाहजादा कुतुब को एक कमरे में कैद रखा गया, और यह तय हुआ कि मौका लगाकर उसकी आँख भी उस्तरे से उसी प्रकार निकाल ली जायें, जिस प्रकार खरबूजा काटा जाता है।

पर मौका लगने के पहले ही अलाउद्दीन के कुछ पुराने सिपाहियों ने प्रवल पखकमशाली गुलाम मलिक काफूर की रातोंरात हत्या कर डाली, और शाहजादा कुतुब को कैद से निकालकर सिहासन पर बिठा दिया। इसके बाद से वे खुल्लमखुल्ला घह कहने लगे कि दो शाहजादे अब भी जिन्दा हैं, और जिसे चाहें उसे बादशाह बनाकर वाकी शाहजादों को भौत के घाट उतार सकते हैं।

मैं जिस बात को कहना चाह रहा था, उसका सूत्र फिर से पकड़ लिया जाय। अलाउद्दीन में सामर्थ्य थी वे महफिल और मजलिसों में समय काटते रहे, पर शाहजादा कुतुब विलकुल निकम्मा था, लेकिन उसने भी वही रास्ता पकड़ा। मैं इसी बात को कहना चाह रहा था कि यही इन लोगों की मनोवृत्ति थी।

कुतुब ने अपने को विलासिता के स्रोत में डाल दिया। उसने केवल चार साल राज्य किया, पर इस ग्रन्ति में उसने गराब पीना, गाने सुनना, यारवाशी, चरित्रहीनता तथा अपनी कृप्रवृत्तियों को चरितार्थ करने के अतिरिक्त कुछ नहीं किया।

हमारी जानकारी में इंग्लैण्ड के इतिहास में रिजेन्सी रेट्स नाम से कुछ छैलों ने राजघराने के इर्द-गिर्द रहकर तरह-तरह की उच्छृंखलताएँ की थी। इसके लिए उन्हे बहुत बुरा-भला कहा गया, पर जिस भवय की दिल्ली का प्रसंग चल रहा है, उस समय जो कुछ हुआ, उसके मुकाबले में इंग्लैण्ड के वे शोहदे सांघ्र और ब्रह्मचारी थे।

उस युग में सम्राट् खुशक-इ-लाख याने लाल राजमहल में दिन-रात रंगरेलियाँ मनाते थे। शराब और दूसरे नशीले पदार्थों की दूकाने राजमहल में बराबर लगी रहती थीं, और स्त्रियाँ बेची श्रीर खरीदी जाती थीं। ऐसी हालत हो गई कि सुन्दरियाँ कहीं नज़र न आने लगी। किशोर बालक, खूबसूरत खोजे तथा सुन्दरी किशोरियाँ पाँच सौ, हजार या अधिक से अधिक दो हजार मे विकटी थीं।

इससे केवल तीन सौ वर्ष पहले यानी १००० ई० के आसपास, जब मुसलमान आक्रमण करने लगे थे, सुल्तान महमूद गजनवी के सभा पण्डित अलबरूनी ने देखा था कि हिन्दू स्त्रियाँ सुशिक्षिता थीं। वे खेलती थीं, नाचती थीं, चित्र बनाती थीं। वे सब प्रकार के सार्वजनिक कामों में खुलकर भाग लेती थीं। १२०० ई० में मुहम्मद गौरी ने इस देश में पक्की वृनियाद पर राज्य स्थापित किया। इसके सौ वर्ष बाद दिल्ली के सुल्तान की नाक के सामने अन्धेरखाता चलने लगा। गराब से लेकर सभी तरह अपकर्म फैलने लगे।

अलाउद्दीन ने जिस प्रकार वित्तीङ्ग के साथ-साथ पश्चिमी को भी पाना चाहा था, और गुजरात के साथ-साथ वहाँ की रानी कमला देवी पर भी अधिकार जमाया था, उसका अनुकरण उसके अमीरो, मालिको यहाँ तक कि साधारण सिपाहियों ने भी किया। अलाउद्दीन ने एक बार विद्रोहियों की स्त्रियों और कन्याओं को उसकी सामाजिक मर्यादा का खपाल किये बिना कैद में डाल रखा था। उस काल के मुसलमान इतिहासकारों का कहना है कि इससे पूर्व पुरुषों के अपराधों के लिए उनकी स्त्रियों या बच्चों पर कभी हाथ न उठाया जाता था। इस कारण यह हालत हो गई कि एक आदमी की हत्या का दण्ड देने के लिए हत्या से सम्बद्ध लोगों के पूरे परिवारों को जिनमें स्त्रियाँ भी शामिल रहती थीं, बरबाद किया जाने लगा। खुलौआम उनकी स्त्रियों की बेइज्जती की जाती और अन्त में उन्हे बाजार बेश्य बनाने के लिए लफंगो के हाथ सौप दिया जाता था। माताओं के सिर पर बच्चों को रखकर उनके टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाते थे। मुसलमान इतिहासकार ने भी दुःख करते हुए लिखा है कि किसी धर्म और किसी जाति में इस प्रकार अत्याचार करने का विधान नहीं है।

दिल्ली में पठान राज्य की स्थापना के मार्ग में नवमे पहले वाधक राजपूत राजा पृथ्वीराज हुए। वे अजमेर और दिल्ली के राजा थे। इसी प्रकार मूगल राज्य की स्थापना में सबसे बड़े वाधक राणा मंग्रामिह थे, जिन्होंने भारत राजस्थान को साथ लेकर फतेहपुर-सीलरी में बादर की रोका।

अहीं वातो के कारण मूगल और पठान नवाजी दृष्टि पढ़ीनी राजस्थान पर पड़ी। उन्होंने राजस्थान को बराबर इनकी भजा दी, और उनके हरमों में राजस्थानी न्यियों की परदानीनी प्रीर घस्तित्वहीनता देखने प्राप्त रहते हैं। विशेषकर मेवाट में इन्होंने जिस प्रकार राजा जाता है, वह बहुत ही लज्जाजनक है। पर उसके कारण को भी हम न भूलें। ये जो कुछ कह रहा है, उसे अप्रामाणिक न समझा जाय। दिल्ली के इतिहास में धूसे वर्गेर राजस्थान के इतिहास की चर्ची नहीं हो सकती। राजस्थान की वहाँनी का जहाँ तक सम्बन्ध है, उसके निए दिल्ली हूँस्त नहीं। यह मेरी केवल कपोल कल्पना नहीं है, यह इस घटना से प्रभागित होगा।

अकबर के समय राजस्थान-विजय पूरी हो चुकी थी। भेवाड़ के राणा ने भी सन्धि कर ली थी। जहाँगीर को राजस्थान का मिरदर्द विलकूल नहीं था। वे उन दिनों नूरजहाँ के रूप महासागर में गोते नगा रहे थे, और उसकी बुद्धि की दीप्ति के सामने चकाचौध थे। ऐसे यान्ति के समय जहाँगीर का भोज कैसा होता था, इस का चरण न पढ़िये।

नयी दिल्ली या कलकत्ते की कोई काकटेल पार्टी उन भोजों के सामने ऐसी रहेगी, जैसे वह साधु-सन्तों का कन्द-मून-फल भोजन हो। उन भोजों में किसी प्रकार की कोई वाधा न थी। जो जिसके जी में आता था, वह वही करता था। सर टामस रोया या इसी प्रकार के दो-एक संयमी नशेवाजों के अतिरिक्त कोई होश में न रहता था। जब तक नीद से विलकूल बेसुध नहीं हो जाते थे, तब तक जहाँगीर पार्टी छोड़कर नहीं जाते थे।

यदि स आट् कभी नशे में सो जाते, तो वत्तियाँ बुझा दी जाती, और सब मेहमान चल देते। आगरे के सभी फिरंगियों को ऐसी पाटियों में निर्मवण मिलता था, और उनमें से कई ने इसका बण्णन भी लिखा है। चलते हुए यह बतला दिया जाय कि जहाँगीर ने ही अपनी आत्मकथा में पहले-पहल इंग्लैण्ड निवासियों को अंग्रेज लिखा है।

इन मजलिसों के अवसर पर जहाँगीर बहुत ही उदार हो जाते थे। केवल दयालु ही हो जाते हो, ऐसी बात नहीं, उनके धार्मिक विचार भी सर्वधर्म समन्वय की कोटि तक पहुँच जाते थे। सब धर्मों की एकता पर भापण करते हुए वे कई बार रो भी पड़ते थे।

ईसाई धर्म में सदाचारी जीवन के सम्बन्ध में दस अनुशासन हैं, पर जहाँगीर

ने वारह अनुशासन चलाने की कोशिश की। इनमें से चौथा अनुशासन शराब न पीने के सम्बन्ध में था। उस अनुशासन में उन्होंने कहा था कि कोई भी व्यक्ति किसी प्रकार की शराब या कशीला आसव तैयार या विक्री नहीं कर सकेगा। इसमें उन्होंने कहा था कि यह अनुशासन यह जानते हुए प्रस्तुत किया जा रहा है कि मैं स्वयं शराबी हूँ, और अठारह साल की उम्र से अब तक याने ३८ साल की उम्र तक वरावर शराब पी रहा हूँ। यह एक ऐतिहासिक घटना है।

वाक्यात-ए-जहाँगीरी में लिखा है कि एक बार शिकार खेलते हुए वे बहुत थक गये, और उन्होंने थकावट दूर करने के लिए अपने हकीम से कोई चीज माँगी। हकीम ने उन्हें कोई डेढ़ प्याला मीठी पीली शराब दी। उनकी थकावट दूर हो गई, पर तभी से वे शराब पीने लगे। शराब की मात्रा बढ़ाते-बढ़ाते ऐसा हुआ कि अंगूरी शराब से अब उन पर नशा नहीं चढ़ता था। इसलिए दो बार उतारा हुआ अर्क पीना पड़ता था। चौबीस घण्टे के अन्दर बीस प्याले शराब पेट में चली जाती। इनमें से चौदह प्याले यानी कोई ६ सेर तो दिन में ही साफ़ हो जाती।

जहाँगीर ने स्वयं लिखा है कि अन्त तक ऐसा हुआ कि हाथ थर-थर काँपते थे, और प्याला पकड़ना मुश्किल हो जाता था। अन्त में उन्होंने अर्क पीना घटा दिया, और फालुहा, शायद भंग की गरण ली। जब इसमें भी मजा जाता रहा, तो उन्होंने अफीम शुरू कर दी। ४६ साल की उम्र में वे प्रतिदिन १४ रत्ती अफीम खाते थे।

नूरजहाँ ने अन्त तक जहाँगीर की शराब की मात्रा घटाकर ६ प्याले कर दी थी। फिर भी जब-नव नृत्यगति के प्रवाह में वे इस मात्रा को पार कर जाते थे। एक दिन की कथा ऐसी है कि जहाँगीर मात्रा पार कर चुके थे, तब भारत की वास्तविक सर्वेसर्वा साम्राज्ञी नूरजहाँ ने आकर वाधा डाली। पर जहाँगीर ने उसकी बात भी नहीं मानी। कभी-कभी वे महल से सटककर किसी अज्ञात शराबखाने में घुस जाते, और साधारण शराबियों के साथ बैठकर शराब पीते थे। कहते हैं कि इस कारण अपनी प्रजा के निकट वह बहुत प्रिय थे। दीवान-ए-आम मेराजकार्य या वादशाही शिष्टाचार के अलावा वे साधारण जनता में अकसर जार्कर मिलते थे, इसलिए जब वे रात को ऐडवेन्चर करने निकलते थे तो लोग उन्हें पहिचान लेते थे। पर वे लोगों से कह देते थे कि वे ऐसे अवसरों पर उनसे कुछ न माँगें, इसका कारण यह है कि शराब के प्याले बाले सलीम उन्हे जो कुछ दे, शायद तख्त-ए-ताऊस के जहाँगीर उन्हे वह देने से इन्कार कर दें। उनमें इतनी समझदारी थी, फिर भी वे शराब और गुलछरें उड़ाने से बाज नहीं आते थे।

अंग्रेज राजदूत सर टामस रो ने लिखा है कि जहाँगीर अधिकांश राजकार्य

रात को करते थे, पर वे इतनी जल्दी नदों में आ जाते थे कि अक्सर उनमें बायाही हृकमनामे प्राप्त करने का मौका नहीं आता था।

सेनापति महावतखाँ के हाथों कीद हाने के बाद विजयी सेनापति ने जहाँगीर को एक बर मांगने के लिए कहा। कैदी ग़म्भाट के प्रति इस प्रकार इमा दिलाने का कारण यह था कि उग दिन वे नूरजहाँ को माझाज्य की शासिका पद ने हटाने का बाद कर चुके थे। पर जब उन्होंने मांगा, तो उमरखनव्याम की भाषा में कहा कि मुझे शराब और मुल्ताना वापस कर दो। बुद्धिमान् राजपूत सेनापति (यहीं यह बता दिया जाय कि महावतखाँ निसीदिया राजनेय के थे, और महाराणा प्रताप के भतीजे होते हुए भी मुमलमान हो गये थे) महावतखाँ ने दोनों चीजों को जहाँगीर ने दूर रखा, शराब को इसलिए दूर रखा कि वह इस्लाम में मना है, और मुल्ताना को इस कारण कि वह शराब से भी श्रविक नशा लाने वाली है, और उसकी बुद्धि बहुत ही तीव्र है।

महावतखाँ इस बात को नहीं भूले थे कि जहाँगीर के समय की मोहरों में लिखा रहता था—‘जहाँगीर के हुक्म से रानी वेगम नूरजहाँ के नाम का छपा लगने से सोने की चमक मी गुनी ही गई है।’ महावतखाँ यह भी नहीं भूले थे कि बार-बार जहाँगीर ने यह घोषणा की थी कि नूरजहाँ साम्राज्य की सर्वेंवर्द्धी है, वे तो सेर भर शराब और आध सेर गोद्धत के अलावा किसी चीज के ह्वास्तगार नहीं (इक्वालनामा-ए-जहाँगीरी)।

राजकार्य से इतने बेखबर सम्राट् जहाँगीर भी बराबर राजस्थान पर दृष्टि रखते थे। उनकी आत्म-जीवनी का सबसे बड़ा वह हिस्सा है, जिसमें उन्होंने राजपूत और राजस्थान के सम्बन्ध में लिखा है। वे इस बात को नहीं भूल सके थे कि उनकी माँ राजपूतनी थी, उनका प्रधान सेनापति धर्मान्तरित राजपूत था, और उनके सबसे बड़े सहायक राजपूत थे। साथ ही राजपूत उनके सबसे बड़े दुश्मन भी थे। इस प्रकार दिल्ली और राजस्थान का सम्बन्ध हमेशा बहुत गहरा रहा है।

यह तो केवल दिल्ली के उत्थान और विस्तार के समय की बात है। दिल्ली के पतन के समय में भी उसके इतिहास पर राजपूतों की छाया दिखाई पड़ती है। राजपूत जिसका साथ देते थे, व भाइयों और सम्बन्धियों को हराकर तल्लत व ताज का मालिक बन जाता था। यदि राजपूत दिल्ली के सिंहासन के पीछे बने रहते, तो वह और कुछ दिन टिकता। इसीलिए यह कहा जा सकता है कि राजस्थान की कहानी में दिल्ली कभी दूरस्त नहीं रही।

११

दरवारी नृत्य

विना कौड़ी खचं किये शादी करके नाचने-गाने को बात चल रही थी । उसी का एक आधूनिक यानी इसी शताव्दी का उदाहरण उस दिन बहुत पास ही मिल गया । किस दरवार का यह किस्सा है, यह महत्वपूर्ण नहीं ।

उस युग के राजे-महाराजे जानते थे कि चार दिन की चाँदनी है, इसलिए गुलछरें उड़ा लेने चाहिए, पर इस युग के राजे यह समझते थे कि जब तक अंग्रेज वहादुर मौजूद हैं, तब तक उन्हें किस बात की चिन्ता ? और अंग्रेज तो हमेशा रहेंगे, क्योंकि जब कैसर और हिटलर उनका बाल भी बांका न कर सके, तो फिर और किसकी छाती में बाल है जो उनका सामना करेगा । वे सोचते थे कि हमेशा ऐसे ही दिन रहेंगे, और राजाओं की चाँदी रहेगी ।

हाँ, एक बात यह ज़रूर थी कि निटिश रेजिडेंट या पोलिटिकल एजेन्ट से निभाकर चलना चाहिए ।

पर ये रेजिडेंट भी कोई हीवा न थे । प्रॉक्सफोर्ड या केम्ब्रिज से पढ़कर आते थे, उधर ऊँची सरकारी नौकरी की जंजीर उन्हे पालतू बना देती थी । फिर अंग्रेजों के जातिभाई होने के कारण प्रजातन्त्र की हवा में पले होते थे । इसलिए यदि खामखाह उनसे रार मोल न ली जाय, तो उनसे कोई डर न था । वे अपना काम करें, तुम अपना करो । कोई किसी की छाया न छूओ । पख्तुनिस्तान में लोग शुभेच्छा व्यक्त करते हुए कहते हैं—आपकी छाया न घृटे । यानी आपका मोटा-ताजा शरीर रोग-ग्रस्त होकर काँटा न हो जाय । उसी दृष्टि से ये राजे-महाराजे जब तक रेजिडेंटों की राह में न आ जायें, तब तक उनकी छाया को किसी प्रकार खतरा न था ।

इसलिए राजाओं में महफिलें बराबर जमती थीं । कभी-कभी इस सूत्र से गुरियों का भी पालन होता था । हम कलकत्ता, बम्बई आदि स्थानों में संगीत-सम्मेलनों के टिकट खरीदकर पीछे की बैंचों से बैठकर जिन उस्तादों के गानों की तारीफ करते हैं, हमें नहीं मालूम कि उनमें से बहुतेरे किसी-न-किसी राजा के दरवार में पलते हैं, और यदि उन्हें इन दरवारों का आश्रय न मिलता, और केवल जनता की गुण-ग्राहकता पर निर्भर रहना पड़ता, तो उनका कलाकार जीवन समाप्त हो जाता । अकवर की नीरत्न सभा के तानसेन से लेकर इस युग की छोटी-सी मैंहर दरवार के बंगाली उस्ताद अलाउद्दीनखाँ आदि बहुत से बड़े-बड़े गुरुणी दरवारों में ही पलते रहे

है। कलकत्ते में हर गली में गाने के टचूशन कारने वाले लोग मौजूद हैं, पर इस प्रकार टचूशन करके किसी प्रकार गुजारा भले ही चल जाय, कला की देवी को प्रसन्न नहीं किया जा सकता। रोटी-दाल कमाकर किसी तरह गुजारा करना और वात है, और कला की साधना करना और वात। बंगाल में भद्र समाज के शिक्षित परिवारों में संगीत की चर्चा लगभग पचास वर्ष से शुरू हुई है। बंगाल के बाहर तो इस प्रकार के टचूशन अब दस साल से शुरू हुए हैं। गुणियों के लिए जिन्दा रहने का यह तिनके का सहारा भी तब न था।

पर धन्यवाद है राजाओं को कि उन्होंने अपने दरवारों में संगीतज्ञों के लिए बड़ी गुञ्जाइश रखी थी। इस सम्बन्ध में मुसलमान राजा हिन्दू राजाओं से कही आगे थे, और वे देश को बहुत कुछ दे गये हैं। मुसलमान राजाओं के द्वारा संगीत का पृष्ठपोषण और भी सराहनीय इस कारण हो जाता है कि उनकी शरह या शास्त्रों में लिखित कलाओं का अनुशीलन करई निपिछा था।

फिर भी मुसलमान और हिन्दुओं में एक मौलिक प्रभेद दिखाई पड़ता है। हिन्दुओं ने दुनिया पर विचार मस्तिष्क से किया है, पर मुसलमानों ने उसका वरण हृदय से किया। हिन्दुओं के सामने परलोक की आशा थी, पर मुसलमानों की आँखों में इहलोक का नशा था। हिन्दुओं ने शास्त्र अपनाये, जब कि मुसलमानों ने शास्त्र अपनाये।

इसी भिन्नता के फलस्वरूप हिन्दुओं ने तिल-तिल संगमरमर पर सुई से भी पतली जालियाँ बनाई, और मूर्तियों की रचना की, इस प्रकार दिलवाड़ा मन्दिर बना। पर मुसलमानों ने रग-विरगे पथरों से मीनाकारी करके रंगमहल बनाया। इसी कारण हम हिन्दू युग में वैभव का दर्शन करते हैं, और मुसलमानों के युग में विलासिता के दर्शन होते हैं।

इसी कारण से जब विदेश से भ्रमणकारी आते हैं, तो वे दक्षिण में जाकर मन्दिर और गोपुरम् देखते हैं, और उत्तर भारत में जहाँ हिन्दू युग के स्थापत्य-कला के चित्र कम हो गये हैं, वे दिल्ली का लाल किला और ताजमहल देखते हैं।

राजस्थान दिल्ली और आगरे के इतना निकट है, और साथ ही उसका सम्बन्ध इतना घनिष्ठ रहा है कि बार-बार दिल्ली के साथ युद्ध करने पर भी राजस्थान के राजाओं ने अपने दरवारों में दिल्ली का ही अनुकरण किया।

इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं कि दक्षिण में हिन्दू राजाओं की सभा में भारत नाट्यम् और कथाकली की कद्र हुई। उस इलाके में सूक्ष्म मुद्राओं और स्पष्ट रूपकों के जरिये नृत्यकला का आन्तरिक मर्म उद्घाटित किया गया। पर उत्तर भारत में जहाँ मुसलमानी प्रभाव का अच्छी तरह विस्तार हुआ, वहाँ कथक नृत्य के साथ-साथ बाजार नर्तकियों का नृत्य भी चलने लगा। बात यह है कि रामायण के रूपक से

कामायन का रूप निखारना सम्भव नहीं था। चरणामृत से नशा थोड़े ही हो सकता है।

हम विंगाल में बाजारू नाच को सेमटा नाच कहते हैं, पर राज-दरवार की जगमग रोशनी में आँखों को चकाचौध कर देने वाले अलकारों से सजकर जिस समय नर्तकिया नाचती है, उस समय उसे इतना साधारण नाम नहीं दिया जा सकता।

जो कुछ भी हो हिज हाइनेस ने मुझे नाच के लिए जो दावत दी थी, उसकी बात की जाय। नाम और धाम से क्या आता जाता है, नाच ही असली चीज़ है।

उस समय तक भोजन का पर्व समाप्त नहीं हुआ था। अभी तक दरवारी लोग मेज़ के दोनों तरफ कतार बाँधकर बैठे थे। उनकी पोशाकें दूर से जगमगा रही थीं। कोई जरा हिल भी जाता था, तो उसकी पोशाक के हीरे तथा जवाहरात चमक उठते थे, मानो खिलखिला उठते हो। हीरों का खिलखिलाना, उसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है।

ये वही लोग हैं, जिनके पुरखे जब लाम पर चलते थे, तो उनकी तलवारें हँस उठती थीं, और उनसे विजली कौघ जाती थीं। राजस्थान के चारण कवियों ने इस हँसी का वर्णन किया है। पर इस समय तो इनके हीरे और जवाहरात ही हँसते हैं, और शायद उनकी हँसी भी जगमगाहट से बढ़कर होती है। अणुवम की जगमगाहट पर इन बातों को जाने दीजिये।

जिस मेज पर यह भोजन-महायज्ञ चल रहा था, उसके नीचे जो कालीन विछा हुआ था, उसमे रंगों की बाढ़-सी आई हुई थी। केसरिया पीला या अवीर का लाल या उज्ज्वल मुनहरे रंग के साथ मोती की तरह सफेद रंग मिल गये थे, और इस मेल से न मालूम कितने सुन्दर नक्के बने हुए थे। शायद उत्साह के कारण कुछ पहले ही पहुँच गया था। पर प्रभुभक्ति के भार से भुके हुए सरदार कुछ कह नहीं रहे थे। कोई कुछ बोलता ही न था। राजा साहब अभी तक बगल के कमरे में थे। मैंने मन ही मन कल्पना की कि ऐसी परिस्थिति में यूरोप में क्या होता। चुटकुले, हँसी-दिल्लगी का दीर-दीरा होता, और सब लोगों की बाछे खिली हुई होती। थोड़ी समय के लिए ही सही, सब लोग एक दूसरे के पास आ जाते। शायद एक तरफ या सौभाग्य अधिक होने पर दोनों तरफ महिलायें बैठती। सब लोग उन महिलाओं के मनोरंजन को पुरुषार्थ मानकर बातचीत करते। जिसका व्यक्तित्व जितना दिलचस्प होता, वह उतनी ही आसानी से बाजी भार ले जाता। इसके साथ किसी प्रकार के चरित्र सम्बन्धी कृत्सा भरी बातें या दिल देने का सम्बन्ध न होता।

ऐसी बातचीत सिर्फ़ मनोरंजन के लिए होती।

दोनों कानों में हीरे की बालियाँ पहने हुए हिज हाइनेस आगे बढ़ गये। इस

बीच नाच देखने के लिए निमन्वित और भी कुछ व्यक्ति आ गये। जो लोग खाने की मेज पर बैठे हुए थे, यदि उनके नाम गिनाये जायें, तो वह रजवाड़ों का एक छोटा-भोटा नक्शा हो जायगा। पर जाने दीजिये। आज की रात नाच ही का कार्यक्रम सबसे मुख्य था।

काँकी और लिक्वर यानी हल्की शराब लेकर बट्टरों की सेना अभ्यागतों में दौड़ने लगी। लोगों ने लतीफे शुरू किये। मैं समझ गया कि अग्रेजी में जिसे वरफ तोड़ना कहते हैं, वह प्रक्रिया शुरू हो गई। खाने की मेज पर शिष्टाचार की जो वरफ जम गई थी, वह अब गलने लगी। अब लोग नाच की प्रतीक्षा करने लगे।

इस कमरे को सजाने में न मालूम किता खर्च हुआ होगा। टिकोरेटरों यानी पेशेवर कमरा सजाने वालों की तारीफ करनी पड़गी। दीवार पर मुन्दर तसवीरें ठंगी हुई थीं, जिनमें शिकार, घुड़दोड़, दिल्ली दरवार में पहले जमाने के हाथी नदीन राजाओं के चित्र थे। मैन्टल पीस पर, मेज पर, काँच की अल्मारियों में तरह-तरह की सगभरमर और चीर्ना जेड पत्थर की मूर्तियाँ रखी हुई थीं। इनमें से कई नंगी स्त्रियों की मूर्तियाँ थीं।

इस बीच डाइनिंग रूम की लम्बी मेज हट गई थी। सजे कमरे में सफेद चढ़र विछ गई थी, और दीवार से सटाकर मखमल की गहेदार कुसियाँ विछ गई थीं। हिज हाइनेस ने एक अग्रेज अतिथि की मेम साहबा को अपने पास बैठाया। इसी प्रकार उन्होंने और दो-चार व्यक्तियों को भी पास बुलाकर बैठाया। बाकी लोगों के लिए यह कहा कि जिससे जहाँ वन पड़े, वैठो।

देशी राजाओं के दरवार का वलासिकल अनुष्ठान अब शुरू हुआ।

मेहदी से रचाये हुए पैरों को ठुमक ठुमककर डालती हुई नर्तकियाँ आ पहुँची। कोई पन्द्रह-सोलह नर्तकियाँ थीं, एक-से-एक बढ़िया साढ़ी या सलवार पहने हुए। पैरों में धूंधर बैंधे थे। उनकी आँखों में सहमी हुई हिरनी की चित्तवन थी। वे आकर सफेद चादर के किनारे बैठ गईं। पास हाँ बाजे बाले बैठ गये। पहले तो ये लोग चुप रहे, पर धीरे-धीरे फुसफुसाकर बातचीत चल पड़ी। एक नर्तकी आँखों से बिजली-सी कांदाती हिज हाइनेस के पैरों के पास घुटने टेककर बैठ गई।

एक सरदार ने मेरे कान में कहा—यहीं आजकल की पटरानी है।

यानी आजकल इसी नर्तकी पर महाराजा की कृपा है। पर वड़ों की कृपा का क्या कहना! वह तो बादल की छाँह की तरह है; अभी है, अभी नहीं। कहा भी है कि वड़ों की प्रीत बालू की भीत की तरह है; आज हथकड़ी है, तो कल हाथ में चाँद है।

बड़र पिरीति बालिर बाँध।

खण्णे के हाते दाढ़ खण्णे के चाँद॥

जो कुछ भी हो, यह तो साफ़ था कि कथित पटरानी इस मौके का फ़ायदा काफ़ी उठा चुकी थी। जितने दिन काम बने उतना ही अच्छा, दूसरी नर्तकियों की तुलना में इस नर्तकी की पोशाक इस बात की प्रमाण थी।

हिज़ हाइनेस उस नर्तकी के साथ ठोली कर रहे थे, और दिल खोलकर हँस रहे थे। अद्वृहास किसे कहते हैं, यह पहली बार देखने में आया। वे हँसकर लोटपोट हो रहे थे। मखमल की कुर्सी में उनका शरीर अँट नहीं रहा था। कालिदास की शकुन्तला की याद आई। एक स्थान पर कालिदास ने यह लिखा है कि शकुन्तला का यौवन बल्कल में अँट नहीं रहा था।

यह उपमा याद तो आई, पर प्रसंग को देखते हुए लेज्जा मालूम हुई। ऐसा लगा, जैसे कोई चरणामूर्ति पी रहा हो, और उसके मुँह में हड्डी का टुकड़ा आ जाय। कहाँ कण्व मुनि का तपोवन, और कहाँ स्वेच्छाचारी राजा का दरवार। मैंने देखा फि हिज़ हाइनेस खुशी के मारे पैरो से कालीन के फूलों को रोद रहे थे, और दूसरी तरफ एक हाथ से अपनी बगल में बैठे हुए एक अन्य हिज़ हाइनेस का कन्धा सहला रहे थे। ऐसा मालूम हो रहा था कि वे माई डियर-मनोवृत्ति दिखाना चाहते थे। या पता नहीं बड़ो की बात कौन जाने, शायद इस तरह वे अपने को सम्भाल रहे थे।

उधर नाच शुरू हो गया। केवल नाच नहीं, साथ ही गाना भी शुरू हुआ। एक नाच कोई आध घण्टे तक होता रहा। साथ में यह गाना भी—

यह हरदम कैसी होरी !

भर पिचकारी मुख पर डारी,

भीग गई चूनर सारी ।

यह हरदम कैसी होरी !

अन्त तक हिज़ हाइनेस ने हाथ के इशारे से इस नाच को रोक दिया। कई और नर्तकियाँ थीं। मानो विभिन्न प्रान्तों से फूल चुनकर माला बनाई थीं। हिमाचल की तन्वी पहाड़िन, काश्मीर की रसीली आँखोंवाली युवती, दुबली और बालों में फूल लगाये हुए दक्षिणी स्त्री, सब महाराजा के मनोरंजन के लिए तैयार थीं।

लंका की साढ़ी और चोली, साथ ही सिर में फूल की माला बाली दक्षिणी तरणी के बाद काश्मीरन की बारी आई। उसने साटन की नूड़ीदार सलवार, मख्मल की कुर्ती, कंधे पर रेशमी दुपट्टा, सिर पर सोने की जंजीर लगा रखी थी। उसने मधुर कण्ठ से ग़ज़ल गाई—

दीवाना बनाना है तो पैमाना बना दे ।

X X X

मै दूँढ़ रही सारा बनवा, मेरा श्याम कहाँ है ?

उसने फिर किया लगा-लगाकर इस गुजल को गामा। लोग पिये हुए तो ने ही, भूम-भूमकर दाद देने लगे। श्याम किस बन में छिपे थे, यह तो कोई न बता सका, हाँ दीवाना बनाने के लिए बटनर नये ग्लास लेकर हाजिर हो गये।

इस बीच एक राजपूतनी का नम्बर आया। उसका लहेगा मानो रंगों का फीवारा बनकर उड़ रहा था, उसकी झेंगिया धूम रही थी, और उसकी ओढ़नी दसों दिशाओं में व्याप्त हो रही थी। उसके हाथों में हाथीदांत की चूड़ियाँ, सिर पर बुरका, गले में सोने का ट्योटा और कानों में हीरे की बालियाँ थीं। पर उनमें जो चीज़ सबसे अधिक थोभायमान हो रही थी, वह थे उसके युगलचरण। पैरों की ऊँगलियाँ चाँदी के विछियों से करीब-करीब हकी हुई थीं। इन पर एहियों के पास से किन्तु ही और गहने शुरू हुए थे, एक पर एक। कहला, आला, नेवरी, टंका, पैजोर। इतने अलंकार थे, तिस पर नूपुर की मीठी बोली थी। सोने में सुगन्ध।

उन समय गाना वया चल रहा था, यह सुनिये। उस समय श्याम ने राधा के हाथ पकड़ लिये थे, और पानी भरने नहीं जाने दे रहे थे। इसलिए राधा ठुमरी गा रही थी—

रोके भेरी गैल, कैसे भरें पानी रे !

ऐसो री निढ़र, भक्षोरी मोरी बहियाँ रे !

राधा जा नहीं पा रही थी, इसलिए वह नाच रही थी। यह भी खूब रहा।

इस बीच मैंने देखा सभी निमंत्रित व्यक्ति चले जाने के लिए व्यग्र हो रहे थे, पर जब तक स्वयं दरवार न उठे, तब तक निमंत्रियों के उठने का नियम नहीं। भला इस तरह धण्ठो नाच कैसे देखा जाता ! हर बात की हृद तो होती ही है।

अन्त मे वाजा रुक गया, और वाजे की ध्वनि देर तक कमरे में गूँजती रही। न मालूम हिज हाइनेस कब खिसक गये थे। अब सब लोग उन्हों का अनुसरण करने लगे। अर्थे जी ढूँग पर हाथ से हाथ मिलाकर हम लोग एक दूसरे से विदाई लेने लगे। नर्तकियों को मैंने दूर से नमस्कार कर दिया। नर्तकियों ने राजपूत-प्रथा से सीने पर हाथ रखकर फिर भुकाकर विदाई ली। उनमें अब भुझे जो छन्द और सूर का स्पन्दन प्राप्त हुआ, वह नाच में नहीं मिला। नाच का वर्णन उसी प्रकार किया जा सकता है, जिस प्रकार किसी से जब पूछा गया था कि तुमने यह चित्र पसन्द किया, तो उसने बहुत सोच-समझकर, जान बचाकर कहा था—इसका चौखटा बहुत बढ़िया है। रवीन्द्रनाथ ने नारी के दो रूप बताये हैं, एक उर्वशी का और दूसरा लक्ष्मी का। यहाँ लक्ष्मी की आशा तो थी ही नहो, उर्वशी का दर्शन भी नहीं मिला।

नयी पीढ़ी का विकास

दरवारी नाच से मन नहीं भरा ।

ऐसा लगा जैसे नकली मणियों और मोतियों को चमक देखकर लौट आये हैं । यद्यपि मैं कोई जीहरी नहीं, फिर भी इतना समझना कठिन न था । केवल मैं ही क्यों, जो लोग इस देशी नाच के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानते, जो बाँल डान्स के साधारण पैतरे करते रहते हैं, केवल उसकी सामाजिकता में रस लेना ही यथेष्ट समझते हैं, वे भी इस सहज सत्य को समझते हैं ।

पर क्या मालूम ? मुझे बंगाल के नवजागरण के युग की संस्कृति का रस लेने का उतना मौका नहीं मिला, फिर भी मैंने वहुतों को उसका रस लेते देखा तो है, इसी कारण शायद मुझे यह नाच अच्छा नहीं लगा । शायद आधुनिक सभ्यता की पाँलिश से जगमग हल्के नाच देखने के बाद ये पुराने गुरुत्वपूर्ण नाच अनभ्यस्त आँखों को अच्छे नहीं जँचते । यह उसी प्रकार है जैसे प्यूचरिस्ट डिजाइन के सोने के हल्के ब्रैसलेट के मुकाबिले में पुराने जमाने के भारी बाजूबन्द अब अच्छे नहीं लगते । नाइलन के हवाइयन हवा शर्ट के मुकाबले में क्या अब मोटे रेशम का कुर्ता अच्छा लगता है ?

पर इन दोनों में असली माल कीनसा है ? मन में यह प्रश्न बना ही रहा और चुभता रहा । समझ गया कि इसे सुलझाना ही पड़ेगा । स्मरण हो आया कि तीसेक साल पहले ब्रिटिश युग के सेकेटरी आँव स्टेट्स मान्टेरेय साहब ने इस नाच की बात अपने गुप्त रोजनामचे में लिखी थी । भविष्य में कोई इन्हें छोपे के हर्फ़ में पड़ेगा, इस उद्देश्य से यह रोजनामचे में सभी बातें दिल खोलकर लिखी गई थीं । महमूदाबाद के राजा ने उन्हें एक बार दरवारी नाच दिखलाया था । इसे देखकर उन्होंने लिखा था—“भद्री स्त्रियाँ अजीवोगरीव पोशाक पहनकर स्थार की तरह शोहर मचाकर मिर्गी-रोगी की तरह, वारन्वार हाथ-पैर, पटक, रुही थी ।” वे (भास्तीय) कहते हैं कि हम लोगों का गाना-बजाना भी उनके लिए इसी प्रकार कठिन है । मेरी भी यही अनुभूति है, फिर भी मैं इतना समझता हूँ कि हमारा संगीत कहीं पर शुरू होता है और फिर कहीं उसका किसी प्रकार अन्त भी होता है । प्राणवान् और रूँआसे भारी और हल्के संगीत के फर्क को मैं समझता हूँ ।”

संगीत के सम्बन्ध में मेरा भी ज्ञान इससे अधिक नहीं है । फिर भी इस महाजन की राय स्मरण कर इतनी सान्त्वना मिली कि जो लोग दरवारी नाच के आशिक हैं,

वे भले ही मुझे भरसिक करार दें, पर इस अपराध के कारण मुझे मनुष्य-नामाज के बाहर निकाल देने की राय नहीं देंगे। मनुष्य-नामाज में बैठकर ही मैं इन बातों पर विचार कर रहा था, और सो भी पुराने रजवाड़े के दयान में जो नवीन राजस्थान उत्पन्न हो रहा है, उसी के बातावरण में यह भालोचना चल रही थी।

जयपुर के उत्कर्ष का चरम है अजायबघर वासी इमारत। उसी के पास राजपूताना विश्वविद्यालय बन रहा है। चारों तरफ से विद्वान् अध्यापक एकद किये गये थे, और चौहरों पर विलापती ढिग्रियों की आभा थी। जिन साधारण छात्रों को राजकुमारों के मेयो कालेज में स्थान नहीं मिलता था, उन्हें दिल्ली, आगरा, इलाहाबाद आदि स्थानों में भटकना पड़ता था, पर अब उन्हें यही विद्या मिलेगी।

उस विद्यालय के कण्ठधार डॉक्टर महाजनी थे। अब वे दिल्ली विश्वविद्यालय में था गये हैं, पर पहले वे ही थे। वे जाति से महाराष्ट्रीय, विद्या में आहुण और यश में अन्तर्राष्ट्रीय हैं। वे गणित के एक प्रसिद्ध रेगलर हैं। यदि वे चाहते, तो शिक्षा-विभाग का बड़े से बड़ा पद उन्हें मिल सकता था, पर ढेकन एजुकेशन सोसाइटी के एक सदस्य के रूप में वे तिलक और गोखले के मांग का अनुसरण कर नाममात्र वेतन लेकर फर्गुसन कालेज के अध्यापक-न्यूपर वर बने रहे। अब वे नये राजस्थान में नया विश्वविद्यालय बनाने के लिए आये थे। वे यहाँ के उपकुलपति थे।

स्मरण हो आया कि इसी राजस्थान में, विशेषकर जयपुर में मराठे चौय लेने पाते थे, और देश को तबाह करके छोड़ देते थे। आज एक मराठा नये राजस्थान के निर्माण में हाथ बटोने के लिए आया था। बन्दूक के बदले कलम लाया था, और बसूली के बदले दान कर रहा था। इसी प्रक्रिया में देश के भविष्य का चित्र छिपा हुआ था। इन्हीं बातों को सोचते-सोचते में डॉक्टर महाजनी की चाय की बेज के सामने बैठकर कुछ-पन्थमनस्क हो गया था।

‘श्रीमती महाजनी शिक्षा के साथ-साथ सुरुचि का समन्वय करती हुई देख पड़ौं। पति प्रसिद्ध विद्वान् हैं, और कन्या अमेरिकन विश्वविद्यालय की छात्रवृत्ति लेकर जल्दी ही अमेरिका जा रही थी। पर इस कारण श्रीमती महाजनी का दिमाग़ विगड़ नहीं गया था, और वे घर के काम-काज से भागती न थी। उन्हीं की बनाई हुई मिठाई तेजी से भेरे मुँह में जा रही थी। इस पर वे मुस्कराकर बोली, ऐसा भालूम होता है कि आज सबेरे आपने हमारे घर के सामने नाचते हुए मोर देखे हैं, इसलिए आप खुश नचमुच यह खुशी की बात थी, क्योंकि कलकत्ते में मोर का नाच देखने के लिए चिड़ियाखाने की सीर करनी पड़ती है। बंगाल के किसी गाँव में भटकते-भटकते एकाएक नाचते हुए मोर देखना सम्भव नहीं था। इसलिए खुशी थी और बहुत थी।

पर जो कुछ भी हो, इस समय मैं मराठों की प्राचीन क्षात्रवृत्ति और इस समय



अभिसार कला (प्राचीन विवाह) ।



मरुभूमि की उद्योगसेना ।



प्राचीन स्थापत्य-कला (आमेर) ।



प्रेमयोगिनी मीरा ।

की ब्राह्मण-वृत्ति की बात सोच रहा था। पर यह बात श्रीमती महाजनी से कैसे कहता इसलिए मैंने तीन साल पहले देखे हुए दरवारी नाच की बात छंडदी। उसमें चमत्कार था, पर स्वतः स्फूर्ति न थी जैसी कि मोर के नाच में रहती है। मोरनी की तरह इस से अनुप्रेरणा भी उसे नहीं मिलती।

जो लोग दरवारी रसों में आकण्ठ डूबे रहते हैं, उनके लिए वह नाच शायद उपभोग्य हो। बात यह है कि वे कई रसों के रसिक होते हैं, बिलकुल दूसरी दुनिया के जीव।

और हम लोग जो इस निरामिय चाय की मेज पर जमा हुए थे, उनकी बात ही न्यारी थी। इसी मेज पर अर्थशास्त्र के दिग्गज विद्वान् कोलम्बिया विश्वविद्यालय के सर्वोच्च उपाधिधारी डॉक्टर मुकुट विहारी माथुर भी विराजमान थे। अध्यापक गुप्त भी थे, जो तन-मन से जयपुरी होते हुए भी विद्या की दोह में सारी दुनिया मंझार चुके थे। उनकी नीली आँखें खुशी से नाच रही थीं। ऐसा मालूम होता था जैसे उन्होंने नीली आँखों के जरिये भन के बातायन खोल दिये हों।

नीली आँखें, हाँ, सचमुच आँखें नीली थीं। राजपूतों के आदिम पुरखों में श्रायों के साथ-साथ शकों और हूणों का भी मिश्रण था। गहराई के साथ विचार करने पर उनका आदिम इतिहास, आचार-विचार और धर्म बहुत कुछ प्राचीन जर्मन, स्कैन्डिनेवियन लोगों जैसे गाय, केल्ट, गैल आदि के साथ मिलेंगे। तातार और मुग़लों के इतिहासज्ञ अबुलगाजी ने लिखा है कि तातारों से हमें जो द्वेष है, वह बहुत कुछ सूज़ हो जाता, यदि हम यह जानते कि तातार देश याने उत्तरमध्य एशिया से ही स्वीड, फैंच, हूण आदि जातियाँ सारे एशिया और यूरोप में फैल गई हैं उन्हीं को लोग शार्य कहते हैं। हिटलर ने इसी आधार पर स्वीड आदि नार्डिक जातियों को श्रायों के कुलीन ब्राह्मणरूप में घोषित किया। पर इन ब्राह्मणों को जनेऊ की ज़रूरत इस कारण नहीं है कि उनके सुनहले बाल, नीली आँखें और उज्ज्वल रंग उनके ब्राह्मणत्व का परिचय देते हैं।

हमने यह देखा है कि बिलकुल विशुद्ध अंग्रेज अफ़सर यहाँ एक पुश्त में ही काफ़ी बदल जाते हैं। कुछ सालों में ही उनका रंग मटमैला हो जाता है और आँखों का रंग बदल जाता है। भारत में इन लोगों के चमड़े का रंग तो बदल गया, पर आँखें कुछ हृद तक वैसी ही हैं, और बाल अभी तक हम लोगों की तरह काले नहीं हुए।

अब एक हजार वर्ष की यवनिका उठाकर अध्यापक गुप्त की नीली आँखें प्रकट हुईं। उनके कन्धे के पास के रंग में और चेहरे के रंग में जो भेद था, उससे भी अनुमान की सत्यता ज्ञात होती थी। क्या इनको ठण्डे देश की आबहवा में दस-वीस पुश्त तक रखा जाय, तो ये फिर अपना भौतिक रंग प्राप्त नहीं कर सकते? बदूत से

क्षत्रिय राजपूतों को देखकर यह प्रधन स्वत उदित होता है। पर मैं जो बात सोच रहा था, उमे किसी गाँव के ठाकुर साहब या, जागोरदार मे कहा जाय, तो कहीं तक, उसे रचिकर होगी, इसमे सन्देह है।

एक दूसरी भेज पर अध्यापक गच्छिराम बैठे थे। वे उम्र से नौजवान थे, पर बार-बार लज्जा से लाल पड़ रहे थे। स्त्री-पुरुषों का इस प्रकार बैठना और हल्की बात-चीत करना शायद उनके लिए नई अभिज्ञता थी। वे खास उदयपुर, अरावली गिरिमाला के धूंधट मे छिपे हुए उदयपुर, से आये थे। वहाँ अभी ऊचे घरानों की क्षत्रिय ललनाये साथंजनिक मार्ग मैं अपने पदचिह्नों से कमल के फूल लिलाती हुई नहीं फिरती, और न सन्ध्या के समय वे रुनभुन करती हुईं पनिया भरने जाती हैं। ये लोग व्यर्थ मैं ही राधा-कृष्ण के अभिसार के गीत गाते हैं। इनके जीवन मैं उस प्रकार की परिस्थितियों की कोई गुंजाइश नहीं। चारों तरफ़ भील स्त्रियों को स्वतन्त्रतापूर्वक पुरुषों के साथ-साथ सब कामों मैं भाग लेता हुआ देखकर भी राजपूत अपनी स्त्रियों को बाहर निकलने नहीं देते, और एक अजीबो-गृहीय श्रमविभाजन बनाये हुए हैं।

पहले-पहल अध्यापक गुप्त आदि मित्र हच्छिराम जी को पूछते थे कि उनकी पत्नी पार्टी मैं क्यों नहीं आईं, तो इसके उत्तर मैं वे चीमारी आदि का बहाना कर देते थे। पर धीरे-धीरे अब लोग जान गये थे कि जिस दिन भी पुरुषों और स्त्रियों की सम्मिलित पार्टी होगी, उस दिन वे अवश्य चीमार पड़ जायेंगी। किर भी लोग, विशेष-कर महिलायें, उनकी चीमारी पर सहानुभूति प्रकट करती थी। यह समाज के लिए न तो कोई नयी बात थी, और न कोई आश्चर्य की ही बात। पर क्या हच्छिराम जी भी इसे स्वाभाविक समझते थे? या भांतर-भीतर कुछ दुखी या परेशान होते थे?

और उस गृहपालिता हिरण्यी का क्या हाल था, जिसे अन्त पुर की चहारदीवारी मैं बन्द रखा गया था? क्या वह कभी बाहर की दुनिया मैं आने के लिए छठपटाटी नहीं? कौतूहल यह होता था कि यह जो कहा गया है कि पत्नी गृहिणी, सचिव और सखा होती है, वह इस क्षेत्र मे कहाँ तक सत्य था? क्या विवाह के बाद उनका मिलन उच्च से उच्चतर होता गया है। वह दाम्पत्य मिलन ही रह गया है? राजस्थान मैं पहली बार आने के पहले नयी दिल्ली के इण्डिया गेट के मैदान मे लेटकर आधुनिक राजपूत रमणी पद्मा के विद्रोही मन का जो परिचय मिला था, क्या उसकी छाया श्रीमती हच्छिराम पर पड़ रही थी?

बात तो मोर के नाच पर चल रही थी। अध्यापक गुप्त बोले—मोर से नृत्य मैं प्रेरणा मिलती है, पर मोर के नाच मैं और दरवारी नाच मैं बहुत फ़र्क है। दरवारी नाच कृत्रिम शिक्षा का परिणाम है, और वह सिन्धिटिक नाच है।

मैंने कहा—मैं इतनी छानबोन करने के लिए तैयार नहीं। जो नृत्य मन मैं

हिलोरें उत्पन्न करे, वही असली नृत्य है। क्या मोरनी को भरत के नाट्यशास्त्र की शिक्षा किसींने दी है? फिर भी जब मोर नाच उठता है, मोरनी स्वयं ही फिरकियों देने लगती है।

महाजनी की कन्या ने कहा—आप इस इलाके में नये-नये आये हैं, आपको सभी चीजें अच्छी लगेंगी, नहीं तो टूरिस्ट क्या हुए। आपको तो दरवारी राजपूत नाच भी अच्छा लगेगा।

श्रीमती जी ने भी यही पक्ष लिया, इसलिए आत्मरक्षा का कोई मार्ग ही नहीं रहा। वे बोलीं—ये तो जब से राजस्थान आये हैं, तब से लोक-संस्कृति के पीछे हाथ धोकर पड़े हैं। टोडरमल के कितने हाथी थे और शाहजहाँ के कितने नाती थे, इन बहुमूल्य तथ्यों के अतिरिक्त टुटे हुए पत्थर में राजपूत कला, जंग लगी तलवार की उम्र, गंडे के पिच्के चर्मखण्ड में हल्दीधाटी का इतिहास ढूँढ़ते रहते हैं।

दूसरी तरफ से भी हमला हुआ। रचिराम जी सिर झुकाकर ही बोले—आपने मोरों में जब नाच का इतिहास ढूँढ़ निकाला है, तो आप मोरपंखी पोशाक वाली नर्तकियों में उसका विकास भी ढूँढ़ डालिये।

मैंने इसका प्रतिवाद करते हुए कहा कि मेरे साथ कुछ अन्याय हो रहा है। मेरा इतना कहना या कि सब लोगों की तरफ इसका और भी प्रतिवाद हुआ। क्या करता, मैंने अपराध मान लिया। पर साथ ही साथ मैंने यह भी अर्जी पेश कर दी कि हम रजवाड़ों के अतिथि हैं, इसलिए मेजबान के नाते दूसरों को चाहिए कि मुझे विशुद्ध नृत्य कहाँ देखने को मिलेगा, इसका पता दें। यहाँ तक कि जरूरत पड़ने पर स्वयं नाचकर प्रदर्शित करना भी राजस्थानियों का कर्तव्य है।

श्रीमती महाजनी चट से इस जिम्मेदारी का व्यूह भेदकर बाहर निकल आईं, बोलीं—हम भी यहाँ नये-नये हैं, और असली जयपुरी नाच देखने की उत्सुकता हमें भी है।

मैंने अपने धनुष से दूसरा वाण छोड़ते हुए कहा—कथक नृत्य जयपुर का विद्यात् नृत्य है, पर यह पता नहीं लगा कि कहाँ का जयपुरी कथक उत्कृष्ट और विशुद्ध है। अध्यापक गुप्त जयपुरी है, इसलिए उन्हें यह बताना पड़ेगा।

राजपूत सवार जैसे रकाव पर पैर रखे बिना ही घोड़े पर चढ़ जाता है, उसी प्रकार वे कुर्सी छोड़कर एकदम उठ पड़े और बोले—यूरेका। गंगोरी दरवाजे के पास से गली में जाते हुए मैंने एक दिन कथक के बोल सुने थे। विलक्षण मोर की आवाज की तरह शायद यह नृत्य मोर का ही नृत्य हो। अभी मेरे साथ चलिए। पहले जगह देख लें, फिर सब लोग चलेंगे।

मैं परम उत्साह से कथक नृत्य की खोज में चल पड़ा। उस समय मन-मोर नाच उठा।

कथक नृत्य की कहानी

सिर पर लपलपाते हुए द्युरे को एक बार घुमाकर तबलची ने दिखा दिया। उस समय मेरा प्राण-पखेह प्रारम्भिक छटपटाना भूलकर द्युरे की मार जाने के लिए तैयार हो चुका था।

हीरावाई के मुँह से आधी दबी हुई चीख निकली। मजलिस जमने के बाद भगड़े-वखेड़े और मनमुटाव हो जाना मामूली बात थी, पर आँख के सामने सरेआम कल्प हो जायगा, यह वह भी नहीं सोच सकी थी।

हीरावाई के घर में तीन दिन तक मास्टर सोहनलाल छिपे रहे। नीचे उतरे कि द्युरे से उनका काम तमाम कर दिया जायगा, यह कहकर तबलची साहब नीचे चले गये थे। महज धोती और बन्डी पहनकर वाई जी की मजलिस में साहनलाल नाच देखने आये थे, पर उन्हें तीन दिन वाई जी की साड़ी पहनकर काटने पड़े।

इस दुर्घटना की बात कहते हुए सोहनलाल के माथे पर शिकान नहीं आई। वल्कि लापरवाह वहादुरी की भावना सजग हो गई। फिर भी उन्होंने यह माना कि उनके जीवन में ऐसी वहादुरी बस एक ही बार हुई थी। मास्टर जी याने सोहनलाल ने उस घटना की रात में ऐसा नाच नाचा था कि तबलची सम्हाल नहीं सका। इसी से वह तबला छोड़कर कल्प का भय दिखाकर नीचे उतर गया था। नाच और तबले की संगत को हम देखने वाले खूब उपभोग करते हैं, पर भीतर ही भीतर दो उस्तादों की होड़ चला करती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ये नाच भयंकर होते हैं।

कंट्रैक्ट निज खेलते-खेलते पति और पत्नी में मनमुटाव होते देखा है, यहाँ तक कि यह भी सुना गया है कि तलाक की दखलवास्त पड़ गई है, पर नाच की मजलिस में इस प्रकार की स्पर्द्धि कल्पना के बाहर है।

उन दिनों मास्टर जी कम उम्र थे। लम्बा इकहरा बदन था। श्यामरंग के प्रन्दर से विशिष्ट राजपूती ढाँचा उभरकर सामने आता था। शरीर ऐसा लचीला था कि कथक, राधाकृष्ण का लास्य नृत्य या नृमण्डमालिनी नृत्य सबके लिए उपशुक्त था।

उनके हाथों और पैरों की ऊँगलियों को देखकर समझने में देरी नहीं हुई कि उनके द्वारा कला और शस्त्रविद्या दोनों की साधना समानरूप से सम्भव हैं। महीन मलमल के कुर्ते की मास्तीन उठाकर लम्बे केले की तरह ऊँगलियों की मुट्ठी बाँधकर

मास्टर जी ने, हमें नमस्कार करते हुए, दरी पर बैठने के लिए आह्वान किया। बँगला में दरी को शतरंजी कहते हैं। यह नाम राजपूताने की सुन्दर कलामय दरियों के लिए अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। दरी से कोई ध्वनि नहीं निकलती।

इतना तो मानना ही होगा कि नामकरण में बंगाली अभी तक भारत में सबसे आगे है। जूतों की दूकान का नाम ‘श्री चरणेषु’, मिठाई की दूकान का नाम ‘मिट्टिमुख’ (मीठा मुँह) और परचून की दूकान का नाम ‘पण्यश्री’ केवल बँगला भाषा में ही सम्भव है। बंगाल की मिट्टी कुछ ऐसी है कि धान की बालों में कनिता उगती है। पवन के झकोरे से धान के पौधे अप्सरों के नाच की भगिमा दिखा देते हैं। एक ओर से परीहे की हूँकभरी पी कहाँ सुनाई पड़ती है? परीहे का गाना ही जैसे बतला देता है कि इस गाँव का नाम मधुवनी बनस्थली या नयनजोड़ होगा। इसी का फल है कि गलीचे का जन्म होने पर उसका नाम यहाँ रखा गया दरी, परन्तु रसहीन व्यवसायी के हाथ से मुक्त होकर जब वह बंगाली गृहिणी के मधुर हाथों में पहुँचा, तो उसका नाम रखा गया शतरंजी।

शेक्सपियर ने यह प्रश्न उठाया है कि नाम से क्या आता-जाता है, पर हमें ऐसा लगता है कि सुन्दर भौनेवृत्त पर शिथिल साज में खड़ी चमेली को रोडोडेन्ड्रन नाम से पुकारना क्या अच्छा लगेगा? क्या उससे उसकी सुगन्ध का कुछ पता चलेगा।

मान लीजिए, अगल बगल दो दूकानें हैं। एक में हर तरह की पुस्तकरिस्ट कला की चीजों के नमूने सजाकर (निन्दुकों का कहना है कि ऐसी दूकान का भविष्य अन्धकारमय है, इसलिए) साइनवोर्ड लगाया गया है, इसका नाम मनोहारी है। दूसरी दूकान पर सीधे-सीधे काले भोटे हर्फों में लिखा है—‘हिकमत राय साहब की दूकान’। और उसके नीचे और भी लिखा है ब्रदर फेल्ट बी० ए०। अब आप यह बताइए कि आप किस दूकान की तरफ भुकेंगे? कहना न होगा कि कम से कम प्रथम दर्शन में आप मनोहारी नामक दूकान से प्रेम करेंगे।

फिर भी मैंने सोहनलाल से प्रश्न किया—जिस नाच की इतनी ख्याति है, उसे आप कथक क्यों कहते हैं? पेशावर के आगे अफ़ग़ानिस्तान के पास जो पठान उपजातियाँ रहती हैं, उनमें घटक नाम से एक नाच प्रचलित है। इस घटक नृत्य में नंतकों के हाथ में तलवार इस प्रकार से लपलपाती रहती है कि नाचने वाले तो कम, तलवार की लपलप ही अधिक दिखाई पड़ती है। अब पूछा जाय कि घटक का क्या अर्थ है?

उधर से उत्तर आया—नहीं, कथक, उस प्रकार का कोई नृत्य नहीं है। फिर भी यह बता दिया जाय कि कथक में घटक से कम परिश्रम या प्रारंशवित नहीं लगेगी। जो लोग हमारे सामने पूर्वी देशों के दूसरे कोमल नाचों के अभ्यस्त हैं, कथक उनके दश की बात नहीं।

उन्होंने बताया—जो वात बतानी है, उने मुन्द्र चरणक्षेप से इस नृत्य में बताया जाता है, इसीलिए इसका नाम कथक है। चरणों की इस कारीगरी को बोल कहते हैं।

बात यह है कि सिफ़ चरणों की गति ने ही किसी वात को प्रकट करना बहुत ही कठिन कार्य है, विशेषकर यह उस समय और भी कठिन हो जाता है जबकि एक ही व्यक्ति को एक ही साव गदा, कृष्ण, विव और पार्वती का नृत्य दिखाना पड़ता है। इनको इस ढंग से दिखाना पड़ता है कि दण्डों को मालूम पड़ जाय कि कहाँ किसका नृत्य समाप्त होता है, और कहाँ किमका नृत्य आरम्भ होता है?

भगिमा और मुद्रा के द्वारा किसी वात को कहना फिर भी ग्रामान होता है, पर केवल चरणक्षेप से किसी वात को प्रकट करना बहुत ही कठिन है। भारत नाट्यम में रूपक और भंगिमा के द्वारा किसी वात को प्रकट किया जाता है। क्याकली में किसी वात को प्रकट करने में मुख्यत हाव की मुद्राओं का प्रयोग किया जाता है। मणिपुरी में सारे शरीर की भावभंगिमाओं द्वारा अभीष्ट वात कही जाती है। इन वातों को वताकर सोहनलाल बोले—अब आप समझ लीजिये थि; किस नाच में वात करना सबसे कठिन है, और किस में सबसे अधिक साधना की आवश्यकता है।

सोहनलाल का यह भी कहना था कि सब भारतीय नाचों की मूल वात कथक में सीखी जा सकती है। वात यह है कि इस नाच के द्वारा गाने और छन्द की शिक्षा पक्की हो जाने पर ही दूसरे नृत्य सीखे जा सकते हैं। जिस प्रकार से पक्के गानों के द्वारा गले को ठीक कर लेने पर ही आधुनिक सगीत अच्छा गाया जा सकता है।

सोहनलाल के मतानुसार उदयशंकर के विश्वविजयी नृत्य के मूल में यही वात है। राजस्थान में उदयशंकर का जन्म हुआ था, इस कारण राजस्थानी उनके सम्बन्ध में विशेष गौरव की भावना रखते हैं।

उदयशंकर के नूपुर राजस्थानी कथक नृत्य के ढंग पर वैधे हुए थे, पर सिर पर बंगाल के नवजागरण की आभा थी, साथ ही उनकी आँखें सारी दुनिया के रंगमंच में दर्शकों की रुचि और रूप-साधना पर लगी हुई थी। उदयशंकर ने नृत्य भारती के लिए समस्त विश्व से पुष्पहार और सम्मान प्राप्त किया। उनके नृत्य की नीव कथक पर थी, किन्तु उन्होंने उस नीव पर नाना प्रकार के नृत्यों से सुन्दर भवन निर्माण किया। मैं न तो पण्डि था, न पण्डित, इसलिए मेरे लिए यह कहना सम्भव नहीं था कि उस महान् कलाकार ने कहाँ से कितना लिया और कितना स्वीकार किया। मैंने सोहनलाल जी से यह तर्क नहीं किया कि किसा हीरे को ज्यों का त्यों रख देने में अधिक कृतित्व है या उसमें नया शिल्प उत्पन्न कर उसमें नयी सूखियाँ ले आने में? मन ही मन मैंने कहा कि उदयशंकर ने जो कुछ किया है, वह शायद रूप बदलकर पेश करना है। पर रूप बदलने का अर्थ न तो वनावटी चीज़ मिलाना है, और न गलत मार्ग पर चलना। रूप बदलना सर्जन

या नवसृष्टि है, जब कि मिलावट करना विनाश है। रुद्धिवादी नृत्यकारों के नृत्य शुष्क व्याकरण है, किन्तु उदयशंकर का नृत्य तो साक्षात् काव्य है।

पर इस देश के गुणी सारी दुनिया की प्रशसा और निर्दा की हवा से बचाकर अपनी कला के दीये की रक्षा करते हैं। रंगमंच की फुटलाइट से उनकी आँखें चकाचौंध नहीं होती। सिनेमा की स्पष्ट रोशनी के सामने आने के लिए उनमें कोई व्याकुलता नहीं है। सोहनलाल जी इसी प्रकार के गुणियों में से थे। इनकी संख्या वरावर घटती जा रही है, पर यह भी सत्य है कि कथक-कला का भविष्य इन्हीं लोगों के हाथों में है। देश भी इस बात को स्वीकार करता है।

उत्तर भारत में तीन केन्द्रों यानी लखनऊ, दिल्ली और जयपुर से कथक नृत्य का प्रचार हुआ था। कहना न होगा कि इनमें लखनऊ का दबदबा सबसे अधिक रहा। यहाँ का नृत्य सबसे अधिक मीठा भी है। लखनऊ में सभी बातें मीठी हो जाती हैं। यहाँ की उर्दू मंजी हुई है, यहाँ का तकल्लुफ़ और शिष्टाचार तो मशहूर ही है। बताया जाता है कि यहाँ के लोगों की चितवन भी बड़ी बाँकी होती है। महीन और मीठे की साधना में यह नगर सबसे आगे पहुँच गया था। नृत्य और गति की चर्चा लखनऊ में जिस प्रकार हुई, वैसी कही नहीं हुई। लखनऊ का नवाब तो सौ वर्ष पहले ही मिट गया, पर नवाबी नहीं मिटी। विलासिता के उपकरण तो चले गये, पर विलासी मन रह गया। इसीलिए यहाँ कला मरी नहीं, यद्यपि उसे अब नवाबी पृष्ठ-पोषण नहीं मिल रहा। कथक के एक से एक बड़े उस्ताद लखनऊ में पैदा हुए। यह तांता वरावर जारी रहा।

कथक नृत्य के द्वारा पहले राधा-कृष्ण, शिव-पार्वती या सीता-राम की उपासना को रूप दिया गया। हैवलक एलिस ने यह लिखा है कि दाशंनिकों के विचार भी छन्दों का रूप लेकर चलते हैं। प्रत्येक माता ने देखा होगा कि बच्चे विशेष प्रकार के ताल-स्वर में नाचते हुए अपने मन के भाव व्यक्त करते हैं। इसलिए भक्त अपनी भावुकता के प्रवाह में नाच उठेगा और नृत्य के रूप में अपने मन के आवेग को निवेदित करेगा, इसमें आश्चर्य क्या?

हमारे देश में वैरागी या बाउल इकतारा वजाकर नाचनाचकर सन्ध्या समय तुलसीवृक्ष के सामने कीर्तन करते हैं। उत्तर भारत में भी इसी प्रकार कथक नृत्य की सृष्टि हुई होगी। पर कालक्रम से इस नृत्य का प्रवेश दरवारों और हरमों में हुआ और जब भक्ति घटी तब आसक्ति के कारण यह नृत्य जीवित रहा।

फिर भी विन्दादीन नामक एक गृहीव भक्त ने दरवार का आश्रय न लेकर, कृष्ण भगवान् की शरण में नाचकर सारी उम्र काट दी। वे नाच असंख्य ठुमरी-बोलों की रचना कर गये हैं। शायद कथक-शैली का वही सबसे मूल्यवान् ऐश्वर्य है।

लक्ष्मनऊ के अच्छन महाराज का नाम भी सब नृत्य-रसिकों की जीभ पर बना रहता है। रहा जयपुर का कथक नृत्य, सो वह राज-दरवार के कारण ही जीवित है। जैसे उत्तर प्रदेश में अच्छन महाराज ने नाम पंदा किया था, उसी प्रकार जयपुर में जियालाल ने अखण्ड स्थाति प्राप्त की थी। सोहनलाल जी इसी जियालाल के शागिर्द हैं।

एक कथक मज़निस की कल्पना कीजिये। कथक-नृत्यकार चूड़ीदार चुस्त पायजामा, टीपी और आंगरखा धारण किए हुए हैं। सारंगी और तबले पर संगत हो रही है। संगत शुरू होते ही कथक नृत्यकार आकर खड़ा हो जाता है। उसके कपड़े जगमगा रहे हैं। पैर में बैंधा हुआ नूपुर तबले के साथ बज रहा है। कथक पहले बोल की आवृत्ति करता है, शायद गाने की एक कड़ी भी गाता है। इसके बाद नाच शुरू होता है, शिव का ताण्डव नृत्य—

जटा टवी गल्जलं प्रवाह पावितस्यले,

गले बलंव लवितां भुजंगतुंग मालिकाम् ।

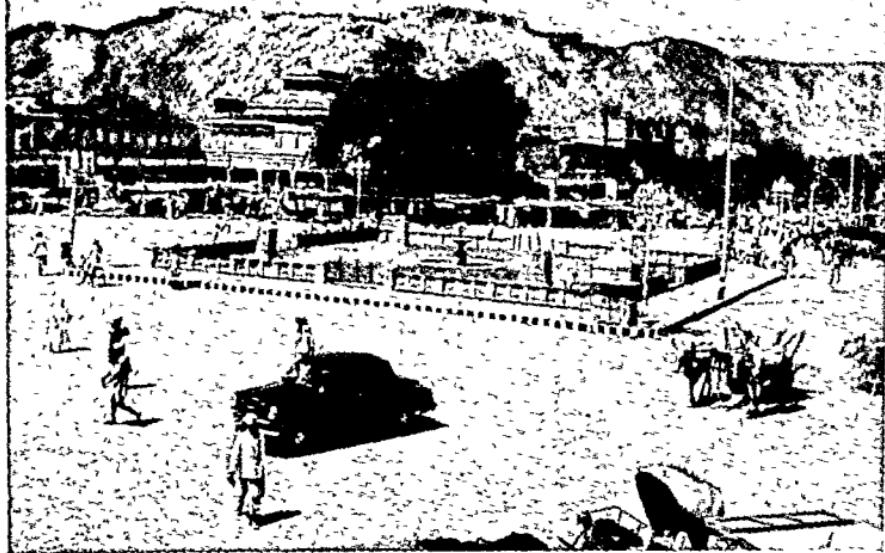
उम ढुम उम माणेनिनाद बड़ मवंयम्,

चकार चंड ताण्डवं तनोतु नः शिवः शिवम् ॥

अपने गुरु जियालाल की बात कहते कहते सोहनलाल विलकुल मुश्वरुद्ध भूल जाते थे। कहते थे कि न तो किसी गुरु ने इतनी मार मारी, और न किसी ने इतना स्नेह किया। मार के साथ-ही-साथ नि.स्वार्य रूप से विद्या की शिक्षा चलती थी।

कहते हैं कि उड़ीसा के एक राजा साहब ने जियालाल को अपने दरवार में लाकर कुछ दिन रखा। राजा साहब स्वयं कथक के अच्छे ज्ञाता थे, और अच्छन महाराज शादि वहुत से कलाकारों के पृष्ठपोषक थे। जियालाल वहाँ बड़े आराम से रहे। प्रतिदिन दोनों जून दस सेर दूध की रवड़ी औटाई जाती थी और वे तथा उनके शागिर्द उसका सेवन करते थे। रवड़ी की प्रेरणा से कह लीजिए या शिक्षा के फलस्वरूप, कार्तिक नाम का चेला बहुत अच्छा नर्तक बन गया। कहते हैं कि धा-तेइ-ई-त्ता इतने में ही चेला सत्ताईस चक्कर कर लेता था। कथक का मूल तो उसका बोल है। उस्ताद जिस प्रकार से बोल बताता है, उसी प्रकार चेला सीखता है। जब उस्ताद सिखाना नहीं चाहते, तो तबला इस प्रकार बजाते हैं कि बोल पकड़ में न श्वावें। पर जियालाल ने कार्तिक को सारे गुप्त सरगम भी सिखाये थे।

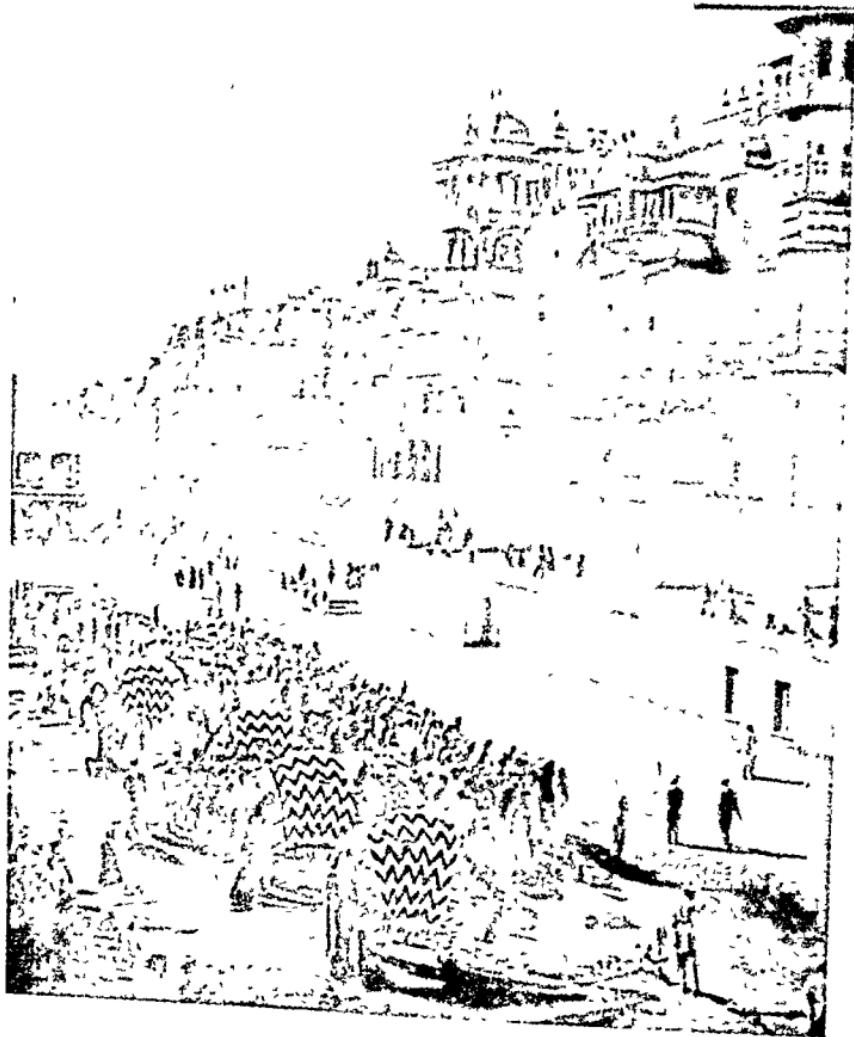
शागिर्द अच्छा सीखता है, तो गुरु को खुशी होती है। एक मुल्तानी गाय, एक गाँव और एक थाल रूपये पाकर जियालाल बहुत प्रसन्न हुए, और अपनी कला की चर्चा करते रहे। इतने में राजा को यह सूझा कि अपने राज्य में पोलिटिकल एजेण्ट को निमंत्रण दिया जाय। ब्रिटिश जमाने का पोलिटिकल एजेण्ट खालिस साहब होता था, सो भी या तो शाई० सी० एस० या आर्मी आफिसर। ऐसे लोगों का मिजाज हर



जयपुर की चौपड़ ।

सपरिवार किसान ।





उदयगुरु राजप्रसाद के मामने पाही मवारी की तैयारी ।

समय सातवें आसमान पर रहता था। वात यह है कि राजाओं को हर समय लगाम में रखा जाता था। इन राजाओं की रियासतों से सटे हुए निटिशः इलाकों में हर दस साल बाद एक आन्दोलन चलता था, और उससे निटिश सिहासन का एक हिस्सा धौंस जाता था। कम से कम नक्शे में जो स्थान पीले दिखलाये गये थे, उन्हें इन आन्दोलनों से बचाना पोलिटिकल एजेण्ट का काम था। इसलिए ये एजेण्ट बहुत सतर्क रहते थे। इनको अधिकार भी बहुत थे। उसकी इच्छामात्र से राजा साहब का स्वरंग मुकुट जमीन पर लोट सकता था। उसकी उंगलियों का इशारा निटिश सिंह की दुम का हिलना होता था।

ये एजेण्ट राजा के ऊपर राजा होते थे। यद्यपि निटिश लोकतन्त्र का तामझाम इन्हें घेरे रहता था, पर इनका तृतीय नेत्र हर समय सावधान रहता था, और किसी भी समय वह प्रयत्न रूप में जल सकता था।

माई-वाप सरकार के इस प्रतिनिधि के आने पर राज्य में जोरों की धूम-धाम होने लगती थी। इस बार भी उनके आने पर रियासत में उत्सव होने लगा, क्योंकि, तस्मिन तुष्टे जगततुष्टम्। भोज, शिकार, दरवार सभी हुआ। अन्तिम दिन नृत्य के लिए रखा गया। राजा साहब ने जियालाल का परिचय एजेण्ट साहब के साथ कराया। जियालाल कृतकृत्य हो गये। कार्तिक के नाच पर बहुत वाहवाही हुई, यहाँ तक कि एजेण्ट की मेमसाहब ने इस सुन्दर किशोर को पास बुलाकर बहुत तारीफ की, और अन्त तक आँख से चश्मा उतारते हुए उन्होंने राजा साहब को कृतार्थ करते हुए पूछा—ग्राप तो राजा साहब बड़े गुणी मालूम होते हैं। इसे इस अद्भुत नृत्य की शिक्षा किसने दी?

राजा साहब की बाँछें खिल गईं, और वह ऐसे हो गये, मानो उनके सामने स्वयं भगवान् शिव खड़े होकर वर मांगने को कह रहे हों। शिव भी कैसे कि कोई काल्पनिक नहीं, वहिंक साक्षात् पोलिटिकल एजेण्ट की मेमसाहेबा।

राजा साहब ने बटलरों को इशारा कर दिया कि और शैम्पेन की बोतलें ले आयें। किर क्या था, शैम्पेन वहने लगी पानी की तरह। दिल हलका हो गया और सातवें आसमान पर उड़ने लगा। ऐसे समय में सुनहरी शैम्पेन की कलकल ध्वनि के के समान और क्या था?

कहानी सुनते-सुनते उमरखट्याम का यह शेर याद आ गया—

मै लाल् भूजा वस्त ओ सुराही कानस्त।

जीगमस्त पियाला ओ शराब अस जावस्त॥

अंजामे बलाभरिन के जे मैं खन्दानस्त।

आश्की अस्त के खुन दिलदार ओ पिनहानस्त॥

क्या गीराजी हाव में लिए वहिशत की हूरें आ गईं ? या इस दुनिया का साकी आ गया ?

फ़ारसी कविता मानो हृदय में नुपूर की भंकार बनकर भनभना उठी थी । हृदय-तन्त्री के तार आनन्द और वेदना के स्वरों में भंकृत हो उठे थे ।

मैं कछ अन्यमनस्क हो गया । इस पर सोहनलाल ने मुझ से प्रदन किया कि क्या आप और कुछ सोच रहे हैं ?

जो कुछ भी हो, मैं सम्मल गया, और कहानी आगे बढ़ी । प्याले की फ़ैंच शराब अश्रुविन्दु की तरह छलक रही थी । राजा साहब ने श्रेय लेने के लिए मेमसाहब से कहा—मैंने सिखाया है ।

उधर जियालाल शिरोपा पहने पास ही बैठे थे । सुनकर वे लाल पड़ गये, और धीरे से वे अपनी जगह से खिसक गये, और किसी को कानोंकान पता नहीं चला कि वे कहाँ गये ?

तब तक प्याले में और शैम्पेन उँडेल दी गई । किस की वेदना का प्याला भरपूर हो रहा था, यह सोचने का किसी को अवकाश नहीं था ।

'संगीत जारी रखा जाय' ऐसी अग्रेजी में एक कहावत है । चास्तव में संगीत ही सत्य है । जीवन का संगीत जिसमें हास्य और रुदन हीरे और काँच की तरह एक साथ जड़े हुए है ।

जियालाल अब एक नया शांगिर्द बनाने लगे और अब की बार एक किशोर के बजाय एक किशोरी को अपनी शिष्या इसलिए बनाया कि यह एक ऐसा नाच सीखेगी जिससे कि कार्तिक इसके सामने पानी भरे । नवीन उत्साह से वे नये बोल की रचना करने लगे । इस लड़की का नाम जयकुमारी था ।

जो ललित-कलाप्रोग से एक बार प्रेम कर लेता है, वह उन्हे फिर नहीं छोड़ पाता । मनुष्य के प्रति प्रेम मे आदि भी है और अन्त भी, पर कलाकार के प्रेम में, आदि तो है पर अन्त नहीं । उसके हृदय पर चोट लग सकती है, यहाँ तक कि उसे हानि भी पहुँच सकती है, पर उसका हृदय चोट भले ही खा जाय, मर नहीं सकता । उमर-खल्याम ने एक शेर में कहा है कि वह हृदय व्यर्थ ही है, जिसमें प्रेम नहीं है, जिसमें हर्ये नहीं है और जो दिन प्रेम के बगैर कट जाता है, वह भी व्यर्थ ही है और उसमें हाहाकार ही रहता है । इसीलिए जियालाल फिर नयी उमरों से अपना हृदय बांधकर काम में जुट पड़े, पर दुख है कि उनका हृदय फिर भरा नहीं ।

जयपुर में जब वर्षा होती है, तो बड़ा शुभ अवसर समझा जाता है । बात यह है कि साल भर में कुछ हजार बूँदें ही गिरती हैं । चारों तरफ लता और पौधों से भरी हुई पहाड़ियों की कतारें हैं, जिनके लिए वर्षा कितनी लाभदायक हो सकती है ?

इसलिए जियालाल वर्षा के बोल तैयार करने लगे। भूला-पूर्णिमा के लिए उन्होंने यह बोल बनाया—

उमड़ घुमड़ घटा, उमड़ घुमड़ घटा
घरियर घरियर गरजियो,
ना दिगंदिग ना दिग दिग
जो दिग दिग जो दिग दिग
बुने कि अटपटा बुने कि अटपटा
इनधिने इनधिने ओ गरियो।
पड़त वूंद पड़ताल जा पर तर तर
हर सागर तट भरियो, थर्रर तट।

इसी गीत के साथ जयकुमारी को पंख पसारकर नाचना था, पर जयकुमारी उस्ताद के अनुशासन को सहने में असमर्थ होकर भाग खड़ी हुई, इसलिए बोल बनने पर भी वह भूला-पूर्णिमा खाली चली गई।

यह कहानी सुनते-सुनते अज्ञात और अपरिचित जियालाल के प्रति सहानुभूति जगी। श्रभी चार-पाँच साल पहले भी जियालाल एक के बाद दूसरे कथक नृत्य की रचना कर गये हैं। उपन्यास या चित्रपट में करण कहानी अच्छी लगती है, पर प्रतिदिन के सादे जीवन में वह उतनी प्रिय नहीं होती, इसलिए मैंने सोहनलाल की जीवनी जाननी चाही। वे हँसकर बोले—आप मोर का नाच देखकर खुश हुए थे, मैं मोर के नाच की कहानी आपको सुनाता हूँ। जियालाल की तरह मैंने भी वर्षा के एक बोल की रचना की—

उमड़ घटा घनघोर, दामिनी मोर
मचाये शोर, दामिनी दमके, थर्रर छक्।

सिफ़ं, थर्रर छक् के अन्दर मोर की तरह चार फिरकियाँ लगानी पड़ती हैं। इसके साथ तबला बजाना भी एक ही मुसीबत है। सच तो यह है कि उस दिन जब मैं हीरावाई नागरी की मजलिस में वाह-वाही लेने के लिए उत्तर पड़ा (तब मेरी उम्र कम थी) तो कोई तबलची इस बोल को तबले पर उतार न सका। मैंने तरस खाकर तबलची से कहा—इस बोल को तुम उंगलियों से नहीं उतार पाओगे, इसके लिए छुरी से तबले का चमड़ा काटकर बोल निकालना पड़ेगा। शर्म से सुर्खं पड़कर तबलची ने सचमुच तबले के चमड़े को गोल करके काट डाला, और फिर बोल निकला। मुझ पर भी सनक सवार हो चुकी थी, इसलिए मैंने फिर से वही बोल उतारा, लेकिन चार साल के बदले आठ साल में। तबलची ने दूसरा तबला काटकर फिर बोल निकाले। मैं जो पीछे हटने वाला न था। मैंने नृत्य की गति बढ़ाकर सोलह मात्रा कर दी।

मजलिस में वाह-वाह होने लगा। तबन्ची दायें-दायें निर हिमाते-हिमाते सबसा थोड़-कर उठ यड़ा हुआ और हाथ में छुरी निये हुए बोला—उत्तर आ नीचे, अब तेरा चमड़ा काटकर बोल निकालूँगा।

नाच बंद हो गया। तबन्ची का ग्रोध उतारने के लिए मुझे तीन दिन तक बाईं जी की माड़ी पहितकर छिपा रहना पड़ा।

इस कहानी के बाद सोहनलाल ने जो नृत्य दिखाया, उससे भेरा मोरनृत्य देखना सार्वक हो गया।

रूपसी रानी पद्मिनी

एकाएक मैं ठिककर खड़ा हो गया, क्योंकि बंगाल का बाउल गाना सुनाई पड़ गया। साथ में एकतारा बज रहा था। सुदूर चित्तीड़गढ़ के पास की एक शाम की घटना थी। चारों तरफ सन्नाटा था, यहाँ तक कि मेरे ताँगा वाला भी कही दूर था।

यह चित्तीड़ की अगणित वीरताओं और जौहर-व्रत की लपटों से निकले किसी मायावी पुरुष की लीला न थी। जीते-जागते मनुष्य का स्वर था—बंगला गान। गीत यह था—

रूप सायरेर घाट बड़ पिछल,

घाट नाम ते गो करे टल मल, रे, रे. ए. ए.

अभी इसका सुर विलीन नहीं हुआ था कि मैं गेरुवा वस्त्र पहिने बाउल महाराज के पास आकर बैठ गया। गेरुवा वस्त्रधारिणी सन्ध्या बहुत पहले ही चित्तीड़ की धूसर पहाड़ी चोटी पर आकर बैठ गई थी। मैंने संकोच के साथ बाउल महाराज से कहा—महाराज ! आप शायद बंगाल से आये हैं ?

उन्होंने कहा—जी हाँ, क्या आप कलकत्ते से आये हैं ?

मैंने कहा—मैं दिल्ली में रहता हूँ, पर पूर्वी बंगाल का रहने वाला हूँ।

शायद जो कुछ मैंने कहा उससे बाउल महाराज की पूर्व-स्मृतियाँ जाग उठी। उन्होंने भावुकता के समुद्र में गोता-सा लगाया। केवल उँगलियाँ अन्यमनस्क ढंग से एकतारे पर धीरे-धीरे चलने लगी। उस झंकार के साथ मानो ताल मिलाकर पद्मिनी-महल के सरोवर का जल हिलोरे लेने लगा।

मानो नीद से बाउल महाराज जगे, बोले—पूर्वी बंगाल की बात जाने दीजिये, जो दीत गया, उसकी बात जाने दीजिये। पद्मिनी की तरह रूप-लावण्यवती हमारी मातृभूमि है। ग्रामीण कवि गायकों के दल के साथ सारे देश में गाता फिरता था। बाद में बाउल के भेष में बाहर निकल भागा। तब से बाउल बनकर ही सारे भारत का भ्रमण कर रहा हूँ।

बहुत से प्रदेश जगे, पर मैं चूप रहा और बाउल की बात सुनता रहा। वह बोले—कुतुब मीनार के पास जो श्रलाउदीन की मीनार है, उसे देखने के बाद पद्मिनी के इस महल को देखकर आपके मन में क्या विचार आते हैं ? आपने तो दिल्ली

और चित्तोड़ दोनों ही देखे हैं ।

दिल्ली और चित्तोड़, थलाउद्दीन और पचिनी, लालसा और लावण्य । सोचते-सोचते मन हिलोरे लेने लगा, ठीक उसी प्रकार जैसे पचिनी को देखकर सरोवर का दिल हुआ था—

सरवर तीर पचिनी आई । खोपा छोड़ि केश मुख लाई ॥

शशि मुख अंग मलयगिरिरानी । नागिनि भाँपि लीन्ह अरधानी ॥

उनए मेघ परी जग छाँहा । शशि के गरन लीन जनु राहा ॥

छपि गै दिनहि भानु कै दशा । लेइ निशि नखत चाँद परगसा ॥

मुहम्मद जायसी की यह कविता भी इसी अर्थ की है—

सरवर रूप विमोहा, हियइ हिलोर करेई,

पाव छुवइ मकु पावई, यहि मिस लहरइ देई ।

जिस जलराशि में पचिनी के खंजन-नयनों का प्रतिविम्ब झलकता था उसकी ओर एकटक निहारते हुए, उस पहाड़ी की चोटी पर, मेरा मन भी हिलोरे लेने लगा ।

चित्तोड़ आने के पहले मेरे एक इतिहासज्ञ मित्र ने यह गिकायत की थी कि पचिनी उपाख्यान में इतिहास का कोई भी अंश नहीं है । पर मे तो इतिहास की खोज करने नहीं आया था, इसलिए मुझ पर इस गिकायत का कोई असर नहीं हुआ । रजवाड़ा तो वीरतापूर्ण कहानियों का देश है । इन कहानियों में सत्य, सौन्दर्य, इतिहास, उपकथा इस तरह से मिली हुई है कि साधारण व्यक्ति के लिए राजहंस की तरह नीर-क्षीर का विवेक करना सम्भव नहीं । दूध को दूध के रूप में लेकर चखकर जाँचना पड़ेगा न कि लेकटोमीटर से । अरावली पर्वत की चूड़ाओं में जो नीलाभ माया व्याप्त है, उससे दस्तावेज लिखने की नीली स्याही बनाई नहीं जा सकती । पर इस कारण अरावली की माया केवल माया या स्वप्न नहीं, वह मोहिनी रूप है, जिसमें मधुर रस का अतीन्द्रिय प्रकाश है ।

बाउल महाराज ने ठीक ही गाया था कि रूप सागर के धाट में फिसलाहट बहुत रहती है । गणित और नापने के फीते से रूप की नाप नहीं हो सकती ।

जियाउद्दीन बर्नी लिखित तारीख-ए-फीरोजशाही में केवल इतना ही लिखा है कि चित्तोड़ पर बहुत दिनों तक धेरा पड़ा रहा, और उसमें बहुत संनिक भारे गये । पचिनी की प्राप्ति के लिए यह युद्ध हुआ था, ऐसा उत्तेज कहीं नहीं है । इसकी सफाई में यह कहा जा सकता है कि यह मामला इतना लज्जाजनक था कि इतिहास में इसका उल्लेख न किया जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है । अवश्य इसी इतिहास में यह लिखा है कि चित्तोड़ पर धेरे के क्षेत्र समय पहले देवगिरि के राजा रामदेव की स्त्री और पुत्र आदि का हरण किया गया था, और वाद में उन्हें लौटा दिया गया ।

सम-सामायिक कवि और खुसरू की रचना में भी चित्तोड़-विजय वहूत संक्षेप में लिखी है, यद्यपि शाहजादा खिजरखाँ और देवला देवी की प्रेम-कहानी को बड़े विस्तार के साथ काव्य के रूप में लिखा गया है। पर इस कहानी में यह दिखलाया गया है कि देवला देवी स्वयं प्रेम में पड़ीं। इसलिए इस कहानी में और रूप से आकृष्ट होकर चित्तोड़ पर आक्रमण करने में अन्तर है। पद्धिनी की कहानी की पहले-पहल रचना मुस्लिम धर्मगुरु मलिक मुहम्मद जायसी ने की।

ऐसा कहा जा सकता है कि सम्राट् शेरशाह के दरवारी कवि और विद्यात् मुसलमान धर्मगुरु निजामुद्दीन औलिया के पुश्तैनी शिष्य मलिक मुहम्मद वर्य हीं कोई ऐसी वात न लिखेंगे, जिससे एक मुसलमान सम्राट् की मानहानि होती हो। भारतीय देशज भाषा में उनकी लिखी 'पद्मावत' नामक पुस्तक वहूत महत्वपूर्ण प्राचीन रचना है। इनसे प्राचीनतर कवियों में राजस्थानी कवि बन्द बरदाई और मैथिल तथा बैंगला के कवि विद्यापति गिने जा सकते हैं। पर उनकी रचनाओं की मूल प्रतिलिपियाँ कहीं प्राप्त नहीं हैं, इस कारण वे बदलती गईं। जायसी ने फ़ारसी हक्कों में अपनी रचना लिखी, इसलिए उनकी रचना के हिज्जे और उच्चारण संस्कृत के अनुकरण में बदले नहीं। उन दिनों जिस प्रकार के हिज्जे और उच्चारण थे वही हूबहू मिलते हैं; और इसी में हमें पद्धिनी की कहानी पढ़ने को मिलती है।

कवि और धर्मगुरु जायसी ने 'अस्तुतिखंड' में लिखा है कि आदि से अन्त तक गाथा जैसी थी, उसी को उन्होंने चौपाइयों में लिखा है—

सिंहल द्वीप पद्धिनि रानी । रतनसेन चितउर गढ़ आनी ॥

अलउद्दीन देहली सुलतानू । राघव चेतन कीन्ह वद्वानू ॥

सुन साही गढ़ छेका आई । हिन्दु तुरकन्ह भई लराई ॥

इसी प्रकार चित्तोड़ की रानी पद्धिनी को लेकर राजस्थानी डिगल भोषा में 'खोमान रासो' नामक काव्य लिखा गया है। इनके अतिरिक्त कुछ फ़ारसी पुस्तकों में भी इस कहानी का उल्लेख मिलता है। हुसेन गजनवी नाम के एक लेखक ने 'किस्सा पद्मावत' में यह कहानी लिखी है। इसके अलावा 'तुक्कातुल कुतुब' नामक एक गद्य पुस्तक में भी पद्धिनी की कहानी श्राती है। दो सौ वर्ष के पहले के उर्दू कवि मीर जियाउद्दीन इशरत और गुलामश्रीली इशरत ने इसी कहानी पर उर्दू काव्य लिखे। विरोधी के राज्य को जीतकर उसकी स्त्री-कन्या को हड्डप लेना, इतिहास में कोई अनहोनी वात नहीं, पर किसी रानी के रूप की प्रशंसा सुनकर उसे पाने के लिए सर्वस्व वलिदान करने के लिए तैयार हो जाना और एकाधिक बार युद्ध करना यह इतिहास में कम है।

लगातार युद्ध चलता रहा। चित्तोड़गढ़ का पतन तो दूर रहा, राजपूतों की

परेणानी का भी कोई नक्षण नहीं दिखाई पड़ रहा था। अलाउद्दीन निष्फल ओघ में गाम्भेरी नदी के किनारे धैठकर पानी में गढ़ की अपराजित ढाया देखा करता था। कवियों ने इसका बहुत सरस वरण्णन किया है।

वह पद्धिनी जिसके—

शुभ्र समुद्र अस नयन दुर्झ, मानिक भरे तरंग ।

आवहि तीर फिरावहि, काल भौंवर तेहि संग ॥

X X X

अधर सुरंग अभीरस भरे ।

विम्ब सुरंग लागि बनफरे ॥

फूल दुपहरी जानउ राता ।

फूल भरहि जो जो रह वाता ॥

X X X

अमि अधर रस राजा सब, जस आस करेई ।

कहि कह कमल विगासा को, मधुकर रस लेइ ॥

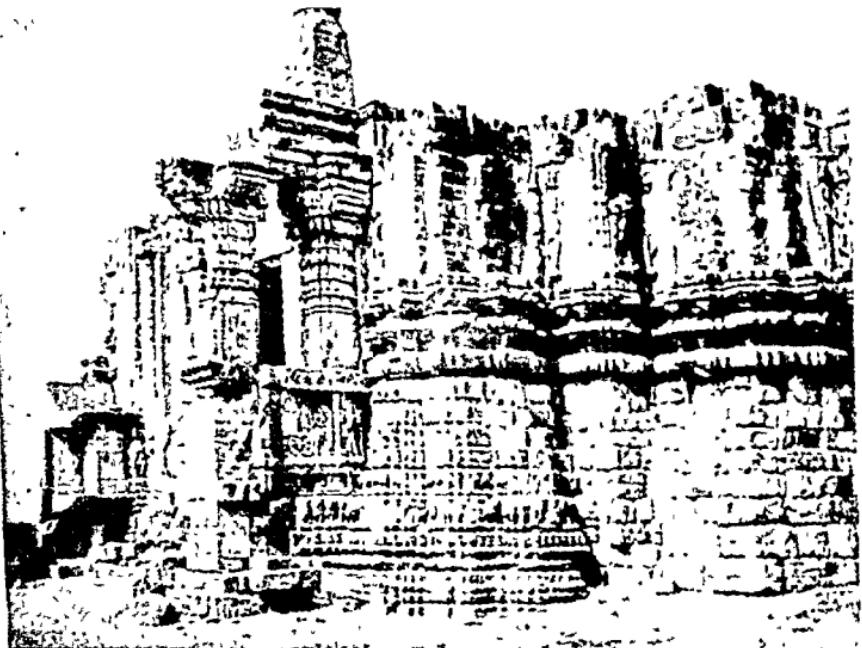
दिन-प्रतिदिन अलाउद्दीन के धैर्य का वाँध टूटता जा रहा था। अन्त में उसने यि का प्रस्ताव भेजा कि एक बार दूर से पद्धिनी को देखकर ही वह वापस चला जायगा देश की दशा और भविष्य को देखते हुए पद्धिनी इतनी-सी वात के लिए राजी हो गई।

अलाउद्दीन निरस्त्र होकर चला। वह जानता था कि राजपूतों की वात विश्वास के योग्य होती है। कहते हैं कि वारह दर्पणों के द्वारा प्रतिविम्बित पद्धिनी का रूप अलाउद्दीन ने देखा—

विहँसि भरोखे आई सरेवी। निरखि साहि दरमन मर्हि देखी ॥

होतइ दरस परम भा लोना। धरति सरण भेड़ सब सोना ॥

इसके बाद वह बाहर गया। राणा भीमसिंह मेजबान के नाते उन्हे फाटक के बाहर छोड़ने आये। वस, छिपे हुए पठानों ने उनको कैद कर लिया। यह कहा गया कि जब पद्धिनी सौप दी जायगी, तभी भीमसिंह मुक्त किये जायेंगे। हिन्दू नारी के लिए पति ही सब कुछ है, इसलिए पद्धिनी ने यह सन्देश भेजा कि जब मजबूरी है, तब ऐसा ही किया जायगा। पर रानी रानी की तरह जायगी, बांदी की तरह नहीं। इसलिए यह त य हुआ कि पद्धिनी सात सौ दासियों को लेकर जायगी। वे पहुँचाकर लौट आयेंगी। अलाउद्दीन खुशी से इस पर राजी हो गया। पद्धिनी इसी ढंग से आई। उन सात सौ पालकियों में प्रत्येक को ढोने के लिए छः कहार थे। यह भी तय हुआ कि पद्धिनी को बादशाह से मिलने के पहले अन्तिम बार राणा भीमसिंह से मिलने दिया जायगा। यह



क्षत-विक्षत सोमनाथ ।



एक प्राचीन मन्दिर ।



परिनीनगर, चिनाड़।

चिनाड़ गढ़।



तय था कि जो लोग पश्चिनी को छोड़ने आयेंगे, वही राणा भीमसिंह को ले भी जायेंगे।

भीमसिंह से पश्चिनी की भेट अभी ही रही थी कि मेवाड़ के चुने हुए वीर पालकियों से उत्तर पड़े, और घमासान लड़ाई छिड़ गई। राजपूतों में सारे के सारे खेत रहे, पर भीमसिंह लौट गये। अलाउद्दीन पश्चिनी की कूटनीति के सामने पराजित हुआ।

गढ़ के अन्दर बारह साल के वीर बालक बादल से उसकी चाची ने प्रश्न किया—बताओ तो बेटा ! मैं जब तुम्हारे चाचा से मिलने के लिए जा रही थी, उस समय उन्होंने कैसा युद्ध किया।

बादल ने कहा—वे युद्ध क्षेत्र में ऐसे लग रहे थे मानो धान काटते हुए चल रहे हों। मैं तो सिर्फ़ इतना ही कर रहा था कि वे तलवार से जिस फसल को काट रहे थे, मैं उसे लादता हुआ उनके पीछे-पीछे चल रहा था। सम्मान के रक्त से सनी शंया पर वे मरे हुए दुश्मन का गलीचा बिछाकर और एक यवन राजकुमार को अपना तकिया बनाकर सो गये हैं।

वीर गोरा की स्त्री ने फिर से प्रश्न किया—बताओ तो बेटा ! तुम्हारे चाचा ने कैसा कार्य किया ?

बादल ने कहा—चाची जी ! मैं कैसे उसका वर्णन करूँ ? बात यह है कि उनसे डरने के लिए या उनकी तारीफ़ करने के लिए भी दुश्मन वाकी नहीं।

हँसकर गोरा की पत्नी ने बादल से विदाई ली, बोली—बेटा ! मैं चली, देर हो जाने पर वे न मालूम क्या सोचेंगे—कहकर वह चिता के लिए रवाना हो गई, और सती की चिता भभककर जल उठी।

मुसलमान इतिहासकार फरिश्ता के अनुसार अब से ठीक साढ़े छः सौ वर्ष पहले अलाउद्दीन एक नयी सेना लेकर फिर आया। इस बार सेना बहुत बड़ी थी। वह चित्तौड़-विजय की प्रतिज्ञा करके आया था। यह पूछा जा सकता है कि उसके इस जोश के पीछे पश्चिनी की रूपराशि थी, या हार की कड़वी स्मृति।

राजस्थान की यह कहानी एक अमर कहानी है, पर इसके साथ ही एक अलौ-किक कहानी यह भी है। राणा एक बड़े परिश्रम के बाद शंया पर लेटे थे। चित्तौड़ का पतन अवश्यम्भावी मालूम हो रहा था। राणा इस कारण चिन्तित थे कि कम से कम एक लड़का तो बच जाय। इतने में देववाणी हुई—मैं भूखी हूँ।

राणा ने चौककर सामने देखा, तो उन्हें चित्तौड़ की अधिष्ठात्री देवी कालिका खम्भों के बीच से दिखाई पड़ी। राणा ने आर्त स्वर में कहा—देवी, आठ हजार वीरों का वलिदान इस युद्ध में हो चुका है, फिर भी तुम्हारी प्यास नहीं बुझी ?

उधर से वाणी आई—मुझे राजस्व चाहिए। चित्तौड़ के राजमुकुटधारी

बारह व्यक्तियों का रक्त मुझे चाहिए, नहीं तो इस वंश के हाथ में राज्य नहीं रहेगा।

राणा का स्वप्न टूट गया। न तो कहीं देवी की मूर्ति थी, न कृष्ण और। पर राजरक्त तो चाहिए था, वयोकि देवी भूखी थी।

जब प्रातःकाल सामन्तों के सामने यह स्वप्न बताया गया, तो उन लोगों ने इस स्वप्न की हँसी उड़ाई, पर राणा के मन में यह विश्वास जम गया था कि भले ही यह घटना अनहोनी हो, पर भठ्ठ नहीं है। यह तय हुआ कि सब सामन्त उस रात को राणा के साथ रहेंगे। फिर देवीमूर्ति का आविर्भाव हुआ। फिर देवी ने राजरक्त की माँग की। यह सूर्यवंशीय राजा का रक्त चाहती थी। यह तय हुआ कि एक-एक व्यक्ति राजा बनता जाय, उसका बाकायदा अभिषेक हो, और वह युद्ध में जाकर प्राण दे दे। राजा के ग्यारह भाई और थे। यह तय हुआ कि सभी भाई युद्धक्षेत्र में प्राण दे दें, उसके बाद राणा स्वयं प्राण देंगे—

“निःशेष प्राण जो करे दान

क्षय नहीं उसका क्षय नहीं।”

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

युवराज अपने प्राण देने के लिए तैयार थे, पर राणा ने कहा कि उनका वचना जरूरी है। यही हुआ, और युवराज किसी प्रकार शत्रुओं का व्यूह भेदकर चित्तीड़ से चले गये। यह सब तो हुआ, पर क्या चित्तीड़ेश्वरी ने अपनी रक्षा की?

हाँ, राजकुमार अर्जयर्सिंह श्रावली के एक दूर कोने में जाकर किसी प्रकार आत्मरक्षा करने लगे, पर वहाँ उन पर विपत्ति आई, और एक स्थानीय पहाड़ी सरदार ने राजकुमार पर वर्ढी चला दी। उनके दो लड़के जो इस समय पन्द्रह और चौदह साल के थे, और राजपूती हिसाब से बालिग हो चुके थे, मुँह ताकते रह गये।

इसके भीतर भी एक कहानी है। बहुत दिन पहले अर्जयर्सिंह का बड़ा भाई अरिर्सिंह शिकार के लिए इस इलाके में आया था। एक जंगली सूअर मक्का के खेत में छिप गया। शिकारी परेशान थे। इतने में एक बनवाला ने श्राकर इशारे से यह बता दिया कि अमुक स्थान पर सूअर छिपा है। केवल यही नहीं, उसने उस सूअर का स्वयं शिकार करके राजकुमार के पास पहुँचा दिया। इसके बाद एक भरने के पास यह दल खा-पी रहा था, इतने में एक गुलेल से राजकुमार का घोड़ा घायल हो गया। वही बनवाला पक्षियों से अपने खेत की रक्षा कर रही थी, और उसी की गुलेल से घोड़ा घायल हुआ था। पर बनवाला तुरन्त ही आई और क्षमा माँगकर चली गई। इस प्रकार यह घटना समाप्त हो गई, पर बाद को दिन में कई बार अवसर पड़ा, हरवार उस बनवाला की बीरता अरिर्सिंह के सामने आई।

यहाँ तक कि राजकुमार ने बनवाला के पिता को बुलाया। यह ग़रीब राजपूत

श्राकर विलकुल राजकुमार की बगल में बैठ गया । इस पर राजकुमार के साथी हँस पड़े । पर राजकुमार ने अपने साथियों को आश्चर्य में डालते हुए उस गृहीव राजपूत से कन्यादान माँगा । इससे भी आश्चर्य लोगों को तब हुआ, जब उस व्यक्ति ने राजकुमार की प्रार्थना नामंजूर कर दी ।

पर अन्त में शादी हुई, क्योंकि कन्या की माता इस विवाह को चाहती थी । पर राजा दुष्प्रियन्त की तरह राजकुमार श्ररिसिंह भी अपनी स्त्री को गाँव में ही छोड़ आये । उनका पुत्र गाँव में ही पलने लगा । इसी लड़के हम्मीर ने देवी की प्रतिज्ञा की रक्षा की । जब अजयसिंह के लड़के विलकुल निराश थे, तब इसी हम्मीर ने उस पहाड़ी सरदार को लड़ाई में मारा । अलाउद्दीन के चित्तीड़-विजय के तेरह वर्ष बाद इसी हम्मीर के द्वारा फिर वप्पा रावल के राजवंश का लाल झंडा फहराया गया । पर यह बाद का इतिहास है । हम फिर अलाउद्दीन की कहानी की ओर लौटते हैं ।

अलाउद्दीन करीव-करीव चित्तीड़ को जीत चुका था । अब गढ़ की रक्षा की कोई आशा नहीं थी । पुरुष तो लड़ते हुए जान दे सकते थे । इसलिए मियों के निमित्त जौहर की तैयारी की गई । पुरनारियों के साथ पद्मिनी विराट् चिता की ओर बढ़ी । वह बोलती जाती थी—

एक जो बाजा भयउ विवाह । अब दूसर है और निवाह ॥

आज सूर्यदिन अथयेउ, आज रैन शशि वूड ।

आज नाथ जिय दीजिये, आज अगिन हम जूड ॥

सात बार चिता की प्रदक्षिणा करके पद्मिनी ने कहा—

यह जगकाह जो अथहि न जाथी । हम तुम नाह दोउ जग साथी ॥

लागी कण्ठ अंग दै हेरी । छार भई जरि अंगन मोरी ॥

एक बार हमने इसी प्रकार आग की सप्तपदी प्रदक्षिणा की थी, जब हमारा विवाह हुआ था । आज फिर प्रदक्षिणा करती है, क्योंकि अब हम देह न धारण करेंगी । ...विवाह के समय हमारे हृदयों का जो मिलन हुआ था, वह बन्धन कभी न खुले । हमारा मिलन चिरकाल तक अट्ट रहेगा । इस संसार में कोई भी चिरकाल नहीं रहता, यही सत्य और नित्य है । मैं इस लोक में तुम्हारे साथ थी, परलोक में भी तुम्हारे साथ रहूँगी । इसके बाद पुरनारियों की भस्ममात्र रह गई ।

चित्तीड़ का दुर्ग जल रहा था । आग की लाल शिखाएँ मानो हीली के गुलाल से रंगी गई थीं । अलाउद्दीन अपनी जयमाला को लिए हुए पठान-सेनाओं के साथ पद्मिनी के महल की ओर दौड़े । पर कहाँ वह स्वर्गीय कुसुम और कहाँ यह नीच नराघम, वह कुसुम तो स्वर्ग को पहुँच चूका था । प्रेमवाटिका से सिंचित वह कुसुम इसको कहाँ मिल सकता था ? भुजाओं की शक्ति उसे नहीं जीत सकी ।

जीहरन्त की चिताएँ जल रही थीं। श्राग की शिखाएँ क्या केवल पाप और दुख को जलाकर ही शान्त हो पायेगी? जलने की व्यथा क्या यूँ ही रह जायगी? क्या हृदय के गम्भीर स्वर में शान्ति का चिरन्तन प्रदीप नहीं जलेगा? क्या सृष्टि का मानस-कमल फिर से नहीं खिलेगा?

उस मन्ध्या समय अस्त होते हुए सूर्य की लालिमा से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो एक और ही चिता जलाई गई हो। विजित होते हुए भी पराजित और व्यर्थता की जजीर से दौंधे हुए अलाउद्दीन के देखते-देखते ही सूर्य अस्त हो गया। पर आज, उसी रवि की किरणों से हृदय-मन्दिर में वही रूपकमल फिर प्रस्फुटित हो गया है। हाथ से इसे स्पर्श नहीं कर सकते, हृदय की आँखों से ही देख सकते हैं। रात को अँधेरे में ज्योति का कमल कुहरे के जाल से सारा छिप जाता है। उसकी वेदना में मानो प्रकृति ओस के आँसू बहाती है और भीगुर ऊचे स्वर में रोते-से प्रतीत होते हैं। पर रूप का पुजारी कवि इसी रूप का ही वर्णन करता है। वांसुरी वजाकर मानो इसी रूप को जगाता है। श्रद्धेही हृदय-मन्दिर के कोने में व्यथा को भूलने के लिए गीत रच रहा है।

अलाउद्दीन जैसे लोग इस संसार में जीतकर ही हारते हैं, और प्रेम के पुजारी हारकर ही जीतते हैं। यहीं संसार की चिरकालीन प्रथा है।

वह पूर्वी बंगाल जिससे ऊपर कि पद्मा नदी वह रही है और जिसकी लहरें किनारों से टकराती रहती है—उसी देश से विछुड़े हुए इस कवि के सितार से एकवार और गीत की झड़ार सुनाई रही थी।

रक्षावन्धन

बंगाल से रक्षावन्धन का रिवाज करीव-करीव उठ गया है। फलाने भंडे का दिन, ढोमाके शहीद की सन्ध्या मनाते-मनाते ही हम इतने हाँफ जाते हैं कि रक्षावन्धन की याद ही नहीं पड़ती। गृनीमत है कि पत्रे में यह अभी तक दिखाया जाता है। इसके अतिरिक्त पश्चिमी लोगों की दूकानों में राखी-पूरणी के दो-एक दिन पहले से राखियाँ बिकने लगती हैं।

मारवाड़ियों में अब भी राखी की कद्र है।

पर बंगाल में ही अधिक नहीं, कोई पचास साल पहले ऐसा समय गया है, जब रक्षावन्धन एक राष्ट्रीय त्यौहार हो गया था। अंग्रेज सरकार ने बंगाल को दो हिस्सों में बाँट दिया था, पर बंगालियों ने उसे मानकर एक दूसरे से अलग होना मंजूर नहीं किया। माँ की पुकार पर बंगालियों ने एक दूसरे के हाथ में राखी वार्धकर अपनी एकता धोपित की।

वह एक अलौकिक युग था। भावुकता की बाढ़ आई हुई थी। स्वदेशी यज्ञ के आसन पर बैठकर बंगालियों ने उस समय चुन-चुनकर सभी देशों से स्वतन्त्रता के मंत्रों को एकत्रित कर लिया। जो-जो देश स्वतन्त्र थे, उन देशों की स्वतन्त्रता-प्राप्ति की कहानी सर्वत्र कही जाने लगी। इटली के मैजिनी, गौरेवाल्डी से लेकर राजपूत तथा मराठे वीरों को पूजा के आसन पर बैठाया गया। बंगालियों ने सारे भारतीय इतिहास से वीरों को ढूँढ़ निकाला। तभी से बंगाल में रक्षावन्धन का नया संस्करण चला।

पर राजस्थान में रक्षावन्धन का दूसरा ही अर्थ था।

मनुष्य हमेशा से शिवेलरी (वीरत्व) की पुकार पर आगे बढ़ता रहा है, रक्षावन्धन उसी का एक उदाहरण है। जिस देश में अभी स्त्री-पुरुष में केवल एक सम्बन्ध ही हो सकता था, जिस शास्त्र के अनुसार पुरुष और स्त्री धी और आग की तरह अलग रखने योग्य थे, वहाँ रक्षावन्धन ने एक नये रोमाञ्चकारी सम्बन्ध का सूत्रपात किया। यदि सखा को सखा रूप में स्वीकार करने में समाज बाधक है, तो कम से कम भाई के रूप में स्वीकार कर लिया जाय। विलकूल परोक्ष में रहकर यदि कोई नारी किसी को राखी भेजे, तो उसे विना किसी प्रकार के संशय के स्वीकार करना वीरधर्म हो गया, और वीर का कर्तव्य हो गया कि वह उस स्त्री की विपत्ति में रक्षा करे, और सम्पत्ति

में सम्मान दे ।

राखी भले ही मामूली सूत की हो, उसमें भले ही कोई उज्ज्वल आभिजात्य न हो, राखीवन्द भाई के निकट उससे मूल्यवान कोई वस्तु नहीं थी। राखी लेकर वहन को एक चोली भेजने का रिवाज था जिसका अर्थ यह था कि तुम्हारे हृदय पर भाई का प्रेम एक जिरहवहतर के रूप में रहेगा। मैं तुम्हारा भाई बना, और सब तरह की विपत्तियों से तुम्हारी रक्षा करूँगा।

यूरोप के मध्ययुग के नाइटों का यह मधुर सम्बन्ध अज्ञात था। वात यह है कि उनकी शिवेलरी में रोमानी इन्द्र-घनुप की रंगीनी थी। उससे शरणागत वहन की राखी का कोई सरोकार न था।

ऐसी ही एक राखी राजमाता करण्वती ने दिल्ली के सम्राट् हमायूँ के पास भेजी थी।

उन दिनों चित्तौड़ के दूर्दिन थे। राणा साँगा मर चुके थे, और उनके तृतीय पुत्र रत्नसिंह ने सिंहासन का उत्तराधिकारी होने के पहले ही छिपकर अम्बर की राजकुमारी से प्रेम-विवाह कर लिया था। यह विवाह भी सशरीर करना सम्भव नहीं हुआ था। अपने प्रतिनिधि की हैसियत से रत्नसिंह ने दोनों तरफ धारवाली एक तलवार भेजी थी, और इसी के साथ गान्धवं रीति से विवाह हुआ था। किसी को भी इस गुप्त प्रेम और गुप्त विवाह की वात मालूम न थी। सिंहासन पर बैठ जाने के बाद भी रत्नसिंह ने अपनी पत्नी के सम्बन्ध में कोई वात नहीं की और न उसे अपने घर ही लाये। इधर उनके मित्र और साले बूँदी के राजा ने उसी राजकन्या से शादी करनी चाही। अम्बर राजवंश बूँदी के महावीर हरवंश की प्रशंसा में शतमुख होकर राजकन्या देने को उद्यत हो गया। जिसने तलवार भेजी थी, उसका इस समय कहीं पता नहीं था, इसलिए राजकन्या मजबूरी से राजी हो गई और गन्धवं विवाह की किसी को कानोंकान खिवर नहीं हुई। बूँदी के महाराज के साथ शादी हो भी गई।

पर तलवार इस वात को भूली नहीं। राणा साँगा के सपूत्र रत्नसिंह ने बावर को राजस्थान में आने नहीं दिया। शत्रु मेवाड़ की धूल को नहीं पा सका। वही रत्नसिंह अपने साले, बूँदी के राजा, के साथ अहेरिया शिकार के हेतु जंगल में गये, और दोनों में से एक भी जंगल से नहीं लीटा। वात यह है कि तलवार अपनी भर्यादा को भूल नहीं सकी। इसी के बाद चित्तौड़ के दुरे दिन आये। भाई विक्रमजीते न तो सिंहासन सम्हाल सके, और न सरदारों को बया में रख सके। मीका देखकर गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह ने हमला बोल दिया। चित्तौड़ ने लड़ाई के बजाय संधि का प्रस्ताव भेजा, और न बैचल नजराना बल्कि मालवा देश देने को भी तैयार हो गया। एक मेवाड़ी विभीषण ने बहादुरशाह को मेवाड़ की दुर्दशा की वात बताई थी, इसलिए

वह संघि करने पर राजी नहीं हुआ। वह चित्तोड़ का गढ़ माँग वैठा, और कहला भेजा कि चित्तोड़ पर उसे अधिकार दिया जाय।

सम-सामयिक इतिहास तारीख-ए-बहादुरशाही के अनसार इसके पहले इतना भयंकर धेरा सम्भव नहीं हुआ था। बहादुरशाह के साथ तोपखाना और पुर्तगाली गोलन्दाज थे (शायद वास्कोडिगामा के कुछ अनुचर हो) और साथ ही उनका सेनापति एशियाई कोचक का रहने वाला रुमी खाँ था। ३१५ अगस्त १५४

^{तोपखाना ५} राजपूतों ने इतिहास से कभी कुछ सीखा नहीं। इसलिए पृथ्वीराज गोरी के नलगोलों (चन्द वरदाई ने तोप का यह नाम रखा था) के मुकाबले में टिक नहीं पाये। सौ वर्ष बाद अलाउद्दीन ने भी तोपों के बल पर ही चित्तोड़ पर विजय प्राप्त की थी। इसके कोई सवा दो सौ वर्ष बाद बाबर के तोपखाने के सामने राणा सांगा की घुड़सवार सेना ठहर न सकी। इसके आठ साल बाद फिर चित्तोड़ पर गोले दगने लगे। राजपूतों के पास अब भी वही बर्छी और तलवारें थीं।

महज बीरता से और खून देने से देश-रक्षा नहीं होती, अब हाइड्रोजन बम के युग में यह बात सत्य है, पर तब भी उतनी ही सत्य थी। विपत्ति देखकर राजमाता कर्णवती ने हुमायूँ के पास राखी भेज दी।

हुमायूँ कवि, सहदय और दार्शनिक थे। संसार के बुद्धिमान् लोग मुँह पर भले ही न कहें, ऐसे लोगों को पागल समझते हैं। बहुत से लोग हुमायूँ को भी उसी प्रकार निकम्मा समझते हैं। स्वयं उस पर विपत्तियों के पहाड़ टूट रहे थे। आगरे के दरवाजे पर शत्रु धक्के दे रहे थे। बंगल और विहार में शोरखाँ ने सिर उठा रखा था। अपने भाई भी वश में नहीं थे। ऐसे समय में एक हिन्दू रानी की ओर से यह राखी आई। अजीब विपत्तियों का संयोग था।

आज हम इतिहास की सुविधाजनक दूरी पर बैठकर सिगार की राख भाड़ते-भाड़ते यह आलोचना करते हैं कि हुमायूँ ने रानी कर्णवती की राखी की पूरी मर्यादा नहीं रखी, और वे तो केवल ग्वालियर तक गये, और वहाँ दो महीने चुपचाप बैठे रहे। पर उस युग के लोगों की भावना और हुमायूँ की दशा को सामने रखकर ही हम सही निर्णय कर सकते हैं कि उन्होंने ठीक किया या गलत। कहीं उनकी नीति ऐसी तो नहीं थी कि सांप भी मरे और लाठी भी न टूटे।

मेवाड़ के इतिहास से मालूम होता है कि राजमाता कर्णवती ने हुमायूँ के पास राखी भेजी थी। मुसलमान इतिहासकार इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहते, पर यह तो एक तथ्य है कि ग्वालियर तक हुमायूँ के बढ़ जाने के कारण बहादुरशाह पांच करोड़ रुपये लेकर धेरा छोड़कर चले जाने को वाध्य हुआ। यह मार्च १५३३ की बात है।

इसी बीच वहादुरशाह और हुमायूं में चिट्ठी-पत्री हुई। इतिहासकार अब्दुल्ला लिखित गुजरात के अरवी भापा के इतिहास में, तथा मोरात-सिकन्दरी में ये पत्र मिलते हैं। एक पत्र में वहादुर ने लिखा था (वह स्वयं निरक्षर था, इसलिए उसने मूल्लाओं से पत्र लिखाये थे) —हम लोग ईमान के रक्षक और न्यायदाता हैं। इसलिए पैगम्बर के बच्चों के अनुसार—'यदि तेरे भाई पर अत्याचार हो या वह अत्याचारी भी हो, तो तुझे उसकी भदद करनी चाहिए' यानी चित्तीड़ पर धेरे के समय इस प्रकार हुमायूं का बढ़ आना बहुत ग़लत था। अन्त तक वहादुरशाह ने अपने पत्र में एक कविता भी लिख दी थी, जिसका आशय यह था कि अगर तुम्हारी तलवार में दम नहीं है, तो केवल वातों से लड़ाई जीतने की आशा न करो। अगर तलवार में दम नहीं है, तो खामखाह यह शेखी न मारो कि हमारे वाप-दादे ऐसे थे, वैसे थे। बौने होकर पैरों में लकड़ियाँ न वांधो। इस तरह बच्चे हीं अपनी लम्बाई बढ़ाने की चेष्टा करते हैं।

फरिश्ते ने यह भी लिखा है कि चित्तीड़ पर हुमायूं और वहादुरशाह में कविता में पत्र-व्यवहार हुआ था। हुमायूं ने लिख भेजा था—अरेन्अरे, तू चित्तीड़ का दुश्मन, काफिर पर तू कब्जा करने की इच्छा रखता है। तेरे सिर पर एक राजा जम कर बैठा है, फिर भी तू चित्तीड़ चाहता है।

वहादुरशाह ने इसके उत्तर में लिखा था—सच है, हम चित्तीड़ के दुश्मन हैं, और हम अपने पराक्रम से काफ़िर को पकड़ लेंगे। केवल यही नहीं, जो उसकी रक्षा में आयेगा, उसे भी नीचा दिखलायेंगे।

इस प्रकार काव्य में पत्र-व्यवहार का अन्त होते-होते हुमायूं चित्तीड़ के पास वहादुरशाह के द्वारा अभी प्राप्त किये भालवा में आ पहुँचे। हुमायूं भले ही और कुछ सोचें, वहादुरशाह एक हिन्दू राजा को छोड़ने वाला न था, इसलिए बहुत-सा घन, नजराना और भालवा प्रान्त सन्धि में पा लेने पर भी उसने १६ महीने बाद चित्तीड़ पर धावा बोल दिया।

हुमायूं ने क्या किया? राधा के सामने यह प्रश्न निरन्तर बना रहता था कि वह अपनी कुल-भर्यादा की रक्षा करें या घनश्याम की रक्षा करें। इसी प्रकार ध्रेय और प्रेम का झगड़ा हुमायूं के मन में भी चलता रहा, पर राजनीति में न तो मन का स्थान है, और न मानवता का, इसलिए हुमायूं चित्तीड़ की तरफ न जाकर भालवा होते हुए वहादुरशाह के राज्य की ओर बढ़ने लगे। वहादुरशाह के बुद्धिमान् मंत्री ने उन्हें यह समझाया कि हुमायूं चाहे जो कुछ भी करें, वे हिन्दू की तरफ से मुसलमान के साथ लड़ेंगे नहीं। यह बात सही प्रमाणित हुई। फिर भी इससे इतना काम तो हो ही गया कि वहादुरशाह गुजरात से नयी फीज या और किसी प्रकार की सहायता न पा सके।

तृत्य की मुद्रा (उदयशंकर) ।





कथक नृत्य में अनुराधा ।



संगमरमर का हाथी ।

इधर करण्वती ने क्या किया ? जहाँ राजा निकम्मा निकला, वहाँ राजमाता ने अपने हाथ में सारी जिम्मेदारी ले ली। उन्होंने सब विगड़े हुए सरदारों को समझा-वुझाकर ठीक किया। उन्होंने यह समझाया कि राजा के विश्व शिकायत हो सकती है, पर देश के विश्व कोई शिकायत नहीं हो सकती। राजा का स्थान सिंहासन में है, पर देश का स्थान हृदय-सिंहासन में है।

उस समय जो राजा थे, उन्हें तथा उनके उत्तराधिकारी उदयसिंह को चित्तोड़ से हटा दिया गया, पर राज्य की रक्षा के लिए एक राजा तो होना चाहिए, इस नाते देवलिया के सामन्त रावत बाघसिंह को राजपद पर नियुक्त किया गया। उनका विधिवत् अभियेक हुआ, और उनके पीछे चंगी या सोने का सूर्यचक्र रखा गया, जो मेवाड़ का राजचिह्न था, और एक तरह से मृत्यु के लिए प्रेमपगा निमत्रण था। क्या सारे संसार में ऐसा कोई उदाहरण है कि केवल मरने के लिए लोग राजा बनें ?

वहादुरशाह की तोपों ने चित्तोड़ की दीवार को कई जगह से तोड़ दिया था। चुपके-चुपके सुरंग बनाकर गढ़ के फाटक के नीचे बारूद रखी गई, और फाटक उड़ा दिया गया, फिर भी अभी चित्तोड़ की बहादुर सेना तो मोजूद थी।

चित्तोड़ के दीरों के सामने खड़ी होकर राजमाता स्वयं युद्धयात्रा के लिए तैयार थी। उनका पवित्र शरीर जिरहवट्टर से ढका हुआ था, और उनका परलोक घर्म से उज्ज्वल था। राजपूत गाथाओं के अनुसार इस युद्ध में ३२ हजार वीर मारे गये, और १३ हजार स्त्रियों ने जीहर-व्रत के द्वारा चिता में प्रवेश कर अपने प्राण दे दिये।

हुमायूं ठोकरें खातेन्खाते चलते रहे, और अंत में एक ठोकर में ही इस दुनिया से चल वसे। अन्त में चित्तोड़-पतन के एक मास के अन्दर ही बहादुरशाह से उन्हें लड़ना पड़ा। बहादुरशाह हारकर भाग गया। उसी साल हुमायूं ने राजा विक्रमजित को चित्तोड़ के सिंहासन पर बैठाया। अन्त तक राखी की मर्यादा बनी रही।

दिल्ली और चित्तोड़ में वरावर दुश्मनी बनी रहने पर भी राखी की मर्यादा कभी क्षुण्ण नहीं हुई। उन दिनों राजनीति में रोमास और राजाओं में राजसीपन चलता था। इस युग में तो जित्स की गयाने एकाएक हमला करके शत्रु को समाप्त कर देने की नीति चलती है। इसमें शिवेलरी का स्थान नहीं। आज हमारे लिए यह समझना कठिन है कि अकबर ने इसके ३२ वर्ष बाद चित्तोड़ को नष्ट (यह तृतीय और अन्तिम बार था) कर दिया, फिर भी वह मेवाड़ के साथ अपने राखीवन्द सम्बन्ध को मर्यादा देते रहे।

जहाँगीर और शाहजहाँ की मातायें राजपूत ललनायें थीं, इसलिए वे राखी का सम्मान करेंगी, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। यहाँ तक कि औरंगजेब ने भी मेवाड़

की राजमाता को प्रिय और मुशीला वहन सम्बोधित करके दो पत्र लिखे थे। पर इन पत्रों में लेखन-कौशल इतना अधिक था कि राजी बहुत कुछ नीचे दब गई थी।

मैं चित्तोड़गढ़ के पहले फाटक को पीछे रखकर आगे बढ़ आया। सामने से सारे रजवाड़ों ने हाथ उठाकर मुझे पुकारा। कान्तिकारी आन्दोलन के युग में वंगाल और राजस्थान में जो रक्षावन्धन हुआ था, उसे न तो वंगाल भूल सकता है और न राजस्थान।

मन ही मन यह इच्छा थी कि महाराणा प्रताप के वंशवरों के साथ परिचय प्राप्त करूँ। दरवारी रूप से नहीं, वह तो होता ही, पर घनिष्ठ रूप से। कर्नल टाड जिस प्रकार मेवाड़ के दरवार में पहली बार गये थे, वह तो ऐतिहासिक बात हो गई, मेरा मतलब तो कौतूहल-निवृत्ति तथा दिल खोलकर बात करने तक था।

चित्तोड़ में वह सुविधा एकाएक मिल गई। महाराणा उस समय उदयपुर छोड़कर शिकार के लिए चित्तोड़ इलाके में आये हुए थे, और अपने राजमहल में ठहरे हुए थे। मैंने भेट करने की इच्छा प्रकट की, तो मुझे सन्ध्या का समय दिया गया। यह मेवाड़ के स्वतन्त्र अस्तित्व की सन्ध्या थी, पर इसके साथ भारत के सम्मिलित स्वतन्त्र जीवन का उपाकाल मिलकर एक हो गया था।

पर चित्तोड़ के आकाश में प्रतिदिन सन्ध्या समय उसकी बीरांगनाओं के जीहर-वृत की जो आभा आकाश में फैलती है, उसकी आड़ में यह राजा से मिलन की सन्ध्या न जाने कहाँ विलीन हो गई, जान न पाया। वरावर मैंने उस सन्ध्या को देखा है, और मन के अन्दर स्मृति की सी-सी दीपमालाएँ जला रखी हैं, जिनके प्रकाश में आज के अन्धकार को भूला दिया है। आज भी ऐसा ही हुआ।

महाराज के साथ भेट करने का जो निर्दिष्ट समय था, वह निकल गया, और मन खिल हुआ। माफी मांगकर पत्र लिखने ही वाला था कि इतने में दरवाजे पर किसी ने ठकठक किया। दरवाजे के सामने महाराणा के सेनापति जनरल मनोहरसिंह खड़े थे। वेदला के चौहान राव थे। उनके पूर्वजों ने हल्दीघाटी में शोणित-दान दिया था। वे मेवाड़ के पुर्तना विश्वासपात्र सामन्त थे। उनकी कुलीनता जागीर की लम्बाई-चौड़ाई पर नहीं, बल्कि उनकी तलवार के जीहर पर निर्भर थी। उन्होंने राजपूती ढंग से अभिवादन करते हुए मुस्कराकर कहा कि महाराणा इस बात को भूले नहीं कि गढ़ देखते-देखते हम लोग इतने विशेष हो जायेंगे कि सुध-वुध खो वैठेंगे और मिलने के समय का पालन न कर सकेंगे। इसलिए उन्होंने कहा—अब आप चाहें, तो महाराणा के साथ भेट करने चल सकते हैं।

मैंने पहले ही महाराणा की बुद्धिमत्ता तथा उनकी सुविवेचना के सम्बन्ध में बहुत सी बातें सुन रखी थी। हाथों-हाथ इसका प्रमाण मिल गया, इससे मुझे खुशी

ही हुई। अब तक यही सुना था कि सिसोदिया कुल के लोग युद्ध में चीर होते हैं, पर महाराणा श्री भूपालसिंह को देखकर ही मेरे यह समझ गया कि शान्तिकाल मेरी वीरता किसे कहते हैं, और हँसते हुए कैसे जिया जाता है। यौवन के प्रारम्भ मेरी उनकी आँखों में पक्षाधात का रोग दिखाई पड़ा, जिससे वे एक हद तक अपाहिज हो गये। फिर भी उनकी आँखों के सामने उपभोग के सारे उपकरण आते-जाते रहते थे, और वे निर्लिप्त होकर उन्हें देखते रहते थे। उन्होंने के जमाने में कई राजमुकुट इन उपकरणों की बाढ़ में वह गये थे, पर वे अचल-अटल रहे।

जैसा कि किसी कवि ने कहा है—पूर्वी हवा चल रही है, कोई वाधा नहीं है, यौवन को उमड़ाकर तरंगे वहती है। सुख से सुख मिलकर बहुत तेज धार मेरे द्वासरे से टकराते हैं।

साधारण से साधारण व्यक्ति भी यदि इस तरह आँखों के सामने निरन्तर ऐश्वर्य के दृश्य देखता, साथ ही उन्हें उपभोग न कर पाता, तो या तो वह वैराग्य ले लेता, या समाज-विरोधी हो जाता। जब युद्ध चलता रहता है, युद्ध का बाजा बजता है, तब वीरता कोई बड़ी बात नहीं होती; क्योंकि उसमे एक मादक आकर्षण रहता है, पर प्रतिदिन के इस नरक युद्ध मेरे न तो कोई मन लुभाने वाली बात होती है, और न तालियां बजती हैं। श्री भूपालसिंह पचास वर्ष से वही नीरव निष्काम वीरता दिखाते आये थे। उनका मस्तिष्क शान्त था, हृदय में कोई द्वन्द्व नहीं था, और बुद्धि उसी प्रकार प्रखर बनी हुई थी। देशी राजाओं के लिए अब युद्ध करने का कोई भौका नहीं था, फिर भी मेवाड़ के राजाओं में युद्ध करने का मनोभाव बाकी था। ११११ में दिल्ली दरवार में सब राजाओं को बुलावा आया कि वे आकर सिर झुकायें। यही इस युग का राजसूय यज्ञ था। सब आये, पर महाराणा फतेहसिंह नहीं आये।

इस पर बड़ा कोहणम मच गया। उन दिनों निटिश सिंह का गर्जन बड़े जोरो से दसों दिशाओं में गूंज रहा था। भारत में तो उसका बोलबाला था ही। उसकी दुम भी हिल जाती, तो राजाओं के सिर से मुकुट गिर पड़ते थे। फिर भी उदयपुर के महाराणा ने आना अस्वीकार किया। लोग समझे कि वस अब राणा प्रतापसिंह का राजवंश लुप्त हो गया।

रेजिडेण्ट साहब ने बहुत समझाया। तब फतेहसिंह राजी हुए, और स्पेशल ट्रेन में, जो उनके लिए तैयार थी, सवार हो गये। जब गाड़ी चित्तौड़ के ग्रास आई, तो उसमें एक राजपूत चारण हड्डबड़ाकर चढ़ ग्राया। सब लोग चित्ता पड़े, पर इस रणसज्जा से सजित बूढ़े चारण को कौन रोकता? वह बूढ़ा एक कविता सुनाने लगा, जिसका आशय यह था कि है महाराणा, तुम्हारे पुरखों ने कभी दिल्ली के सामने सिर नहीं झुकाया, और आज तुम उसी ऊँचे सिर को नीचा करने के लिए चल पड़े हो।

तुम इस बात को भूल रहे हो कि जब तुम्हारे पूर्वज अमरसिंह ने जहाँगीर के साथ संधि की थी, तब भी वह दिल्ली नहीं गये, उनके युवराज गये थे । इसीनिए मेवाड़ के युवराज का आसन सोलह सामन्तों के नीचे है । महाराज ! ग्राज तुम इन बातों को भूल रहे हो ।

गाड़ी चिन्नाड़ की तरफ बढ़ रही थी । यह वही चित्तीड़ था, जिसे पुरखों ने छोड़ दिया था, पर उन्होंने स्वतन्त्रता नहीं छोड़ी थी । गाड़ी उदयपुर लौट गई, महाराणा दिल्ली नहीं जायेंगे ।

बडे लाट नार्ड हार्डिंग भी जिद्दी थे । सार्वभीम सम्राट् के दरवार में देश में सबसे सम्मानित मेवाड़ के महाराणा नहीं आयेंगे, यह कैसे हो सकता है ? इतिहास क्या कहेगा ?

अन्त तक यह तय हुआ कि महाराणा आयेंगे, पर वे न तो दरवार में ही आयेंगे, और न दिल्ली में ही आयेंगे । वे दिल्ली के बाहर एक प्लेटफार्म पर भारत सम्राट् पंचम जाऊं से मिलेंगे और वही से उल्टे पांच लीटेंगे ।

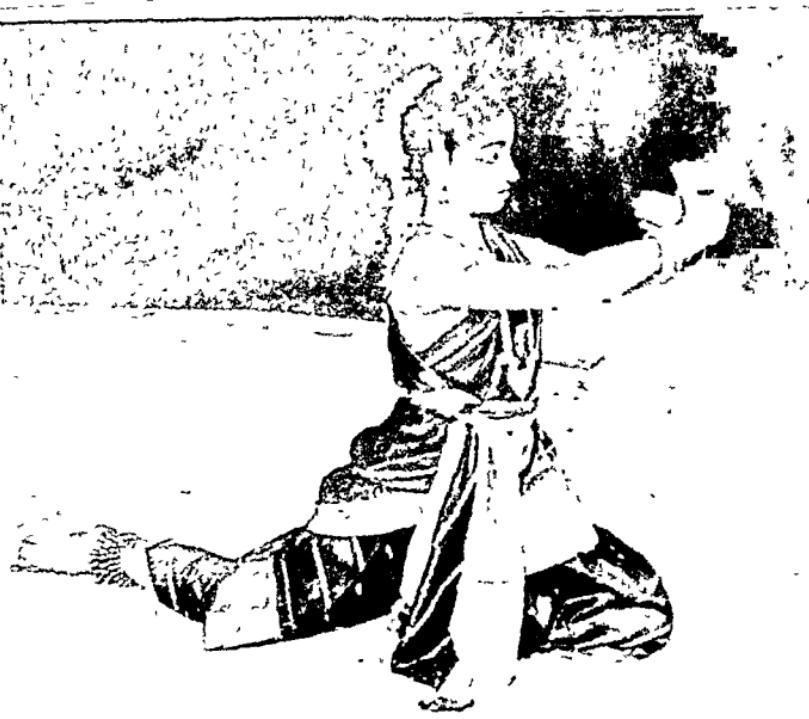
वही मेवाड़ विना किसी द्विविधा के आगे बढ़कर वृहत्तर राजस्थान यूनियन में शामिल होकर भारत के साथ एक होने और आत्मविलोप करने के लिए तैयार हो गया । भारत में इस प्रकार अपने को लुप्त कर देना ही मेवाड़ के लिए नये युग की नयी स्वतन्त्रता थी । जब यह हो गया, तो छोटे रजवाड़ों को यूनियन बनाकर पार्टी ० राज्य बनाने में कोई वादा नहीं रही । जब यह बात हो गई, तो फिर अन्य रियासतों के लिए भी न तो कोई राजनीतिक वादा रही, और न मानसिक ही ।

ऐसे बीर पुष्प से मिलने की इच्छा स्वाभाविक थी । उनसे मिलने के लिए कुछ ही मिनट बगल के कमरे में प्रतीक्षा करनी पड़ी । इसके लिए उन्होंने तथा उनके सरदारों ने जिस आज्ञाजी से माफ़ी माँगी, उससे यह प्रमाणित हो गया कि जो स्वयं बीर है, उनके लिए सिर झुकाना आसान है, और जो कायर तथा गुस्ताख है, उन्हीं के लिए यह ज़रूरी है कि वे हमेशा सिर ऊँचा किये रहे ।

श्रीमती जी और मेरे साथ बड़ी देर तक महाराणा की बातचीत होती रही । यहाँ उतनी ही बात लिखूँगा, जितनी प्रासंगिक है । उन्होंने इस बात को स्वयं ही कहा कि कर्नल टाड के अलावा बंगाल के साहित्यकारों ने ही राजस्थान को ऊँचा उठाया है । राजपूतों ने बंगाली साहित्यकारों की दृष्टि से ही अपने को फिर खोजा है । इसीलिए रजवाडे बंगला साहित्य के कृतज्ञ हैं ।

उन्होंने और भी कहा कि राजस्थान के इतिहास को सामने रखकर पहले बंगाल ने और उसके बाद सारे भारत ने स्वतन्त्रता के लिए जिस प्रकार विलिदान किया है, उसको देखते हुए यह कहना उचित होगा कि बंगाल और राजस्थान में रक्षावन्धन





पृष्ठि-कवरी. दक्षिणी नृत्य ।

राजस्थानी लोक-नृत्य ।



हुआ है। इस रक्षावन्धन के पीछे किसी प्रकार की आत्मरक्षा का प्रयास अथवा असहायता की पुकार नहीं थी। यह वन्धन उच्चतर सतह पर था। या यों कहना चाहिए कि एक ऊँजलूल कहानी में जीवन संचार कर मंत्र पढ़ा गया। उस मंत्र से केवल वंगाल ही नहीं, सारे भारत का नवनिर्माण हुआ, और इतिहास के क्षेत्र में हम भारतवासी निहत्ये होकर भी एक नये ढंग की लड़ाई में आगे बढ़े।

और भारत की जय हुई।

प्रेमयोगिनी मीरा

प्रसि और वांसुरी, शक्ति और शान्ति इन दोनों का एक ही साथ समावेश मुझे चित्तोङ्गढ़ में मिला। मेवाड़ की प्राचीन राजधानी पवित्र चित्तोङ्गढ़ है। केवल रजवाड़ा ही नहीं, सारे भारत में ऐसी विपरीत लीलाओं का स्थान दूसरा कोई नहीं मिल सकता।

गुजरात के भीषण युद्ध में विजयी होकर राणा कुम्भा ने जो ग्रन्तुलनीय जपस्तम्भ बनवाया था, उसकी छाया प्रतिदिन सन्ध्या-समय मीरावाई द्वारा प्रतिष्ठित गोपाल मन्दिर पर पड़ती है। दूसरी तरफ देखिये, तो राणा कुम्भा द्वारा प्रतिष्ठित शिव मन्दिर के बगल ही में एक ही आँगन के अन्दर मीरा द्वारा प्रतिष्ठित छोटा-सा पर अधिक सुन्दर मीरा का वही मन्दिर है। एक विजयी महाराणा के दम्भ की सृष्टि है, और दूसरा विधवा राजकुलवधु के प्रेम से सेवारा हुआ। पर वे दोनों स्थान ही मन में व्यथा उत्पन्न करते हैं। दोनों ही स्थानों में यही भावना उत्पन्न होती है कि मेरा मन-मन्दिर सूना है।

मन्दिर से भूति गायब है। मीरा की अश्रुधारा से नहलाई हुई भूति इस समय उदयपुर के जगदीश मन्दिर के किनारे एक छोटें-से मन्दिर में रखी हुई है। पर इससे क्या?

मीरा ने सारे भारत के मनुष्यों का हृदय-मन्दिर भर दिया है। गीतों और सुरों से गिरिधर गोपाल घट-घटवासी हो चुके हैं। प्रेम के द्वारा ईश्वर को प्राप्त करने की व्याकुल लालसा मध्ययुग के मनुष्य के मन में अंगड़ाई लेकर जाग उठी थी, मीरा ने उसी को आनन्द और वेदना, चेतना और स्वप्न से मूर्त्ति कर दिया था। उनकी उस सामना के फलस्वरूप राजस्थानी, ब्रजभाषा, गुजराती और हिन्दी को उस समय प्रवल गति प्राप्त हुई। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनवाने में मीरा के भजनों का दान कितना बड़ा है, यह कूतना सम्भव नहीं। धर्म और साहित्य का यह मिलन बंगाल में भी शून्य 'पुराण, मनसा मंगल और वैभव-पदावली में मिलता है।

उस युग में उत्तर भारत में राजाओं की निरन्तर चलने वाली मारकाट से लोग जब बुरी तरह ऊब रहे थे, तब आशा और आनन्द का अशेष भण्डार लेकर समुद्र-मन्थन से लक्ष्मी की तरह प्रगट हो गई मीरा। पर वह अकेली नहीं आई थीं। उस भयकर सकटकाल में पूर्व दिशा बंगाल में श्री चैतन्य और पश्चिम दिशा पंजाब में

गुरु नानक प्रेम-धर्म की वारणी लेकर आये। शायद इनके विना साधारण मनुष्य टिक नहीं पाता। गुरु नानक ने पंजाब में विशुद्ध एकेश्वरवाद के गीत गाये—

काहे रे वन खोजन जाई ?

सर्वनिवासी सदा अलेपा तोही संग समाई ॥

बाहर भीतर एके जानौ यह गुरु ज्ञान वताई ।

कह नानक विन आपहि चीन्हे मिटे न भ्रम की काई ॥

हिन्दू-मुस्लिम समस्या का समाधान करने के लिए उन्होंने नया सिक्ख समाज बना डाला।

निरक्षर जुलाहा कवीर ने सृष्टि में एक अपरूप लीला की खोज कर कहा—

जल में वसै कुमुदिनी, चन्दा वसै अकास ।

जैसी जाकी भावना, सो वाही के पास ॥

प्रीतम को पतियाँ लिखूँ जो कहुँ होय विदेश ।

तन में, मन में, नैन मे, ताको कहा सन्देश ॥

दक्षिण में रामानुज ने ज्ञान और भक्ति का एक अपूर्व समन्वय किया। तुलसीदास ने एक ऐसी रामायण की रचना की जिससे हिन्दीभाषियों को प्रतिदिन प्रेरणा और प्रतिरक्षि शान्ति मिलन लगी। उन्हीं दिनों मुसलमान सूफी ईश्वर के रहस्यमय रूप की आराधना कर रहे थे, और चिन्ती प्रेम रूप विश्वपति की कल्पना कर रहे थे। उन्हीं दिनों पूर्व में श्री चैतन्य नाच-नाचकर प्रेम और भक्ति की वाढ़ ला रहे थे, यह पहले ही बताया जा चुका है, और पश्चिम में मीरा मह को हरा-भरा कर रही थीं—

सखी री मे तो गिरिधर के रंग राती ।

पचरंग मेरा चोला रंग दे मै भुरमृट खेलन जाती ॥

पर श्री चैतन्य की आवाज पर जैसे सारा बगाल दौड़ आया, उस तरह मीरा की आवाज पर राजस्थान नहीं दौड़ा। इसलिए हम यह देखते हैं कि मीरा के युग के राजस्थान के इतिहास में मीरा का कोई स्थान नहीं था। पर नाभादास रचित भक्तमाल (रचनाकाल १५८५-१६२३ ई०) और उनके शिष्य प्रियादास की दीका में मीरा का स्थान अच्छी तरह स्पष्ट हो चुका था। मेरे निकट भन्दिर की सीढ़ियों पर बैठकर मीरा का यह गुनगुनाना—‘मीरा व्याकुल विरहिनी, सुध-वृध विसरानी हो’ सत्य है, इसलिए मैं इन पचड़ों में नहीं पड़ना चाहता कि मीरा राणा कुम्भा की स्त्री थी या नहीं। अकबर उन्हें भेष बदलकर देख गये थे या नहीं, तुलसीदास के साथ उनका पत्र-व्यवहार हुआ था या नहीं। इतिहास के पुराने पन्ने उलटना मेरा उद्देश्य नहीं। मेरे निकट तो मीरा है और हूँ उनके अमृत वरसाने वाले भजन...।

शायद सोलहवी शताब्दी के प्रारम्भ में, वहूत सम्भव है १५०४ ई० में, एक परम वैष्णव राठीर वश में मीरा का जन्म हुआ था। कहा जाता है कि वचपन में मीरा किसी शादी में गई, तो वह पूछ वैठी—यह तो उस लड़की का पति है, पर मेरा पति कौन है?

पिछ छुड़ाने के लिए माँ ने गृहदेवता की मूर्ति की ओर दिखाकर कहा—‘यह तेरे पति है।’

दूसरे, एक दिन की बात है कि एक सन्यासी नारायण की शिलामूर्ति लेकर मीरा के घर में श्रतिथि है। मीरा को वह मूर्ति वहूत पसन्द आई और उन्होंने जिद पकड़ी कि यह मूर्ति उन्हें चाहिए। सन्यासी ने जब देखा कि गढ़वड़ है तो वे भाग खड़े हुए। मीरा ने उपवास शुरू कर दिया। उधर सन्यासी महोदय को स्वप्न हुआ कि उल्टे पांच जाकर मूर्ति मीरा के हवाले करे, क्योंकि वह असली भक्त है।

उधर मीरा के रूप की स्थिति फैलते-फैलते मेवाड़ के राणा के कानों तक पहुंची। मेवाड़ के सबसे पराक्रमी राणा ‘हिन्दूपत’ संग्रामसिंह के छोटे लड़के भोज के साथ मीरा की शादी हो गई। मीरा समुराल आई और साथ ही साथ वह मूर्ति आई—‘मीरा के प्रभु जन्म जन्म के साथी’।

चित्तोड़ के राणा परम शैव थे। वे एकलिंग शिव के प्रतिनिधि के रूप में मेवाड़ पर शासन करते थे। समुराल में प्रवेश करते समय गृहदेवता को प्रणाम करना आवश्यक था, इसलिए शिव मन्दिर में ले जाया गया। वैष्णवों का कहना है कि मीरा ने ‘शिवमूर्ति’ को प्रणाम करने से इन्कार किया था, पर जिन्होंने यह गाया है—‘तेरे भुवन वृन्दावन मेर साँवलिया के सुर वाजै?’—उनके लिए शिव की मूर्ति के अन्दर गिरिधर गोपाल को देखना असम्भव वात नहीं समझी जा सकती।

श्रीर साधक के लिए यह परीक्षा न तो नयी थी और न एकमात्र थी। मीरा के गुरु रविदास के शिष्य कवीर भी थे। कवीर कह गये हैं कि साधक की साधना सती की साधना की तरह है। यह वात मीरा के जीवन में वार-वार स्पष्ट होकर सामने आई।

पर मीरा को उनके प्रभु ने अधिक दिन गृहस्थी के जंजाल में नहीं रखा। शादी के दृष्ट वर्ष के अन्दर ही पति की मृत्यु हो गई। पार्थिव दृष्टि से जो उनके स्वामी थे, वे तो चल वसे, पर प्राणों की दृष्टि से जो चिरकाल के स्वामी थे, वह प्रभु गिरिधर नागर रह ही गये। उन्हें कौन ले सकता था?

आवन आवन कहि गयो हरि, आवन ही की वात।
हरि तो वार-वार आने की वात कह गये, इसलिए मीरा विघ्वा कब हुइ?

उन दिनों मेवाड़ का आकाश अन्धकाराच्छ्वन्ध था। न तो शौर्य-वीर्य था और

—न मानसिक ऐश्वर्य ही। राणा संग्रामसिंह की पराजय और मृत्यु के बाद सीसोदियों ने बाहर की सब बड़ी चीजों से दृष्टि हटाकर गृहमुखी दृष्टि अपनायी थी। इसलिए देवर राणा विक्रमजीत को यह बात खटकी कि मीरा भजन-पूजन और साधु-सन्तों में दिन काटती है। वह पग-पग पर रोड़ा श्रद्धकाने लगा, पर मीरा जिनकी आभित थीं, जिनके 'मिलते विछुड़न जावे,' उनके चरणों की आश्रिता को कौन दुःख दे सकता था?

ननद उदयवार्ड ने आकर समझाया कि भाभी तुम्हारे रंग-ढंग से राजकुल में कलंक लग रहा है, तुम यह सब छोड़ दो। पर मीरा के विचार तो इस प्रकार थे कि 'तुम बिन सब जग खारा', इसलिए उनका उत्तर यह था, 'हम से रहे चित चोरी।' ननद ने बहुत कुछ समझाया, पर मीरा का उत्तर था, 'ये संसार सकल जग भूठा, भूठा कुल का नाता।' उनके निकट वे ही केवल 'जनम मरण के साथी' थे, जिनके सम्बन्ध में उनका कहना था कि 'नहिं विसरूँ दिन राती।' उदयवार्ड ने फिर भी बहुत कुछ समझाया, भय भी दिखलाया, पर मीरा बोली—

जब से मोहि नन्द-नन्दन दृष्टि परो वार्द।

तब से परलोक लोक कछु न सुहार्द॥

कहते हैं कि इसके बाद राणा ने हरिचरणमृत कहकर मीरा को विष का पात्र भेजा था, पर मीरा के स्पर्श से वह अमृत बन गया। कछ हो, यों तो वह नीलकण्ठ हो ही चुकी थीं, पर वह नीलापन विरह-वेदना के रंग में रंगा हुआ था। न तो प्रिय के बिना उन्हें होली ही रुचती थी और न घर का आँगन ही अच्छा लगता था। शून्य शैया उन्हें काटने दीड़ती थी। यह जनश्रुति है कि घर के लोगों से परेशान होकर उन्होंने तुलसीदास को एक पत्र लिखा था कि अब मैं क्या करूँ? इसके उत्तर में गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा—

जाके प्रिय न राम वैदेही।

तजिये ताहि कोटि वैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥

इतिहास की दृष्टि से देखा जाय, तो तुलसी मीरा के बहुन बाद पैदा हुए, पर इतिहास भले ही गलत हो, भक्तों के लिए तत्त्व ही ग्रसली बात है। किसी ने अपने गुरु का महात्म्य बढ़ाने के लिए तुलसीदास के इस भजन पर एक कहानी गढ़ दी हो, तो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। सारांश यह है कि मीरा मेवाड़ छोड़कर चली गई। उन्होंने जाकर पितृगृह में श्राश्रय लिया, पर उनके चचेरे भाई रायमल जो उन्होंने की तरह भक्त थे, चित्तीड़गढ़ पर अकबर के आक्रमण के समय बहादुरी से लड़ते हुए मुगलों के हाथों मारे गये थे। अब तो वस यहीं सत्य था—

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई।

तात, मात, भ्रात, वन्धु आपन नहिं कोई॥

और भी दुःख मिले, सोना और भी निखरा, प्रांण के अन्दर आग और भी सुलगी।

मीरा कुंप्रभु साँची दासी बनाओ ।

झूठे धंधा सुं मेरा फदा छुड़ाओ ॥

वह और भी गा उठी—

मन्दिरिया महां दीवड़ा विना औंधियारू ।

उन्होने फिर गाया—

हे री मे तो प्रेम दिवानी मेरा दरद न जाए कोय ।

फिर—

प्यारे दरसन दीज्यो आय ।

तुम विन रहो न जाय ॥

जल विन कमल, चन्द विन रजनी ।

ऐसे तुम देखए विन सजनी ॥

आकुल व्याकुल फिरूँ रेण दिन-विरह कलेजी खाय ।

मीरा वृन्दावन की और चली । रास्ते में राजस्थान की वानस नदी के किनारे एक आश्रम मे उन्हे शान्ति मिली । उन्होने गाया—‘मुनी मे हरि आवन की बात ।’ उनके लिए ‘धरती रूप नवा नवा धरत्या ।’ इसके बाद वादल मौड़रा आये, पर यह विरह के काले वादल नहीं थे । मिलन तो हो चुका था, इसलिए उन्होने प्रार्थना की—

बहुत दिन पै प्रीतम पायो विछुड़न को मोंहि डर रे ।

उन्होने और भी गाया—

साँवरिया के दर्शन पाऊं पहर कुसुम्बी सारी ।

फिर भी भय था—

मीरा के प्रभु गहर गम्भीरा, हृदय रहो जी धीरा ।

आधी रातें प्रभु दर्शन दैहै, प्रेम-नदी के तीरा ॥

सब सन्देह दूर करने के लिए मीरा, अगम देश में जाने के लिए प्रस्तुत हो गई । इस अभिसारिका की ओढ़नी तो लज्जा होगी, और वस्त्र होगा धैर्य । राजस्थान में यह रिवाज है कि दूल्हा घोड़े पर आता है, चाहे राजा का घर हो और चाहे रक्का । वह लालं या केसरिया रंग के कपडे पहनता है, माथे पर मुकुट होता है और उस पर पेच और कलगी होती है ।

दुलहिन को उसकी सखियाँ सजाती हैं । उसके शरीर में हल्दी मली जाती है, और हाथों में मेहदी रचाई जाती है । माथे पर विन्दिया और गले में हार होता

है। पैरों में धूंधरु बजते हैं, और चूनरी जिसका नाम कुसुम्बी होता है, रंग-विरंगी होती है। मारवाड़ में यह कपड़ा वहुत सावधानी से कुसुम्बी फूल के रग से रंगा जाता है। दुलहिन को लहेंगा, कुसुम्बी और चोली पहनाई जाती है।

इसके बाद फूलों से कंगन बनाया जाता है। चूड़ा नाम से एक चूड़ी होती है, जो सुहाग का चिह्न समझी जाती है। माथे पर मोती और कुन्द फूल की माला पहिनाई जाती है। आँखों में काजल या सुर्मा लगाया जाता है। माथे या ठोड़ी पर एक-सा काला तिल बना दिया जाता है।

पाँच सौ साल पहले अंगराग की जो प्रथा थी, वह प्रायः उसी प्रकार चली आ रही है। इस समय आधुनिक राजपूतनी फैंच या अमेरिकन मेकअप इस्तेमाल कर सकती हैं, पर राजपूतों का प्राचीन अंगराग जितना रोमाञ्चकारी है, वह आज के प्रसाधन में कहाँ सम्भव है?

पहले के प्रसाधन और सोलह किस्म के शृंगारों में राजपूत-ललना को यह स्वतन्त्रता थी कि जब उसकी भावना जैसी हो, उसी के अनुरूप शृंगार करे।

मैं कुछ बहक गया, पर मीरा ने प्रियतम के साथ मिलन के लिए अपने को इसी तरह सजाया। उसमें उन्होंने अपना सारा प्रेम और आन्तरिकता उँड़े दी। मीरा इस प्रकार हरि रंगराती हो गई—

भुरमुट में मोहे पिया मिलेंगे खोल मिलूं तन गात। ।

सुरति निरति का दीयला संजोले मनसा की करले वाती ।

प्रेम हाटि का तेल मँगाले, जला करे दिन-राती ॥

वृद्धावन के जीव गोस्वामी ने मीरा को दर्शन देना स्वीकार नहीं किया, कहला भेजा कि मैं किसी स्त्री को दर्शन नहीं देता। इसके उत्तर में मीरा ने कहला भेजा कि गिरधारीलाल के अलावा और भी कोई पुरुष है, यह तो मुझे आज ही मालूम हुआ। इस पर गोस्वामी जो ने अपनी गलती मानी, और स्वयं मीरा को दर्शन देने आये।

जीवन के अन्त समय मीरा वृद्धावन छोड़ द्वारिका चली आई। उधर जब से मीरा मेवाड़ से आई थी, तब से वहाँ झगड़े, टंटे और गुप्त हत्यायें हुआ करती थी। वहुत दिनों तक ऐसा होते रहने के बाद मेवाड़ चाले समझ गये कि मीरा के साथ-साथ राजलक्ष्मी भी चली गई, इसलिए कुछ ब्राह्मण उन्हें लौटाने के लिए गये, पर मिल के विछुड़ना कैसा?

मीरा के प्रभु गिरिधर नागर मिलि विछुड़न नहिं कीजो हो।

कहते हैं कि इसी प्रकार गाते-गाते एक दिन वह रणछोड़ जी की मूर्ति में समा गई।

मीरा तो गई, पर मीरा की प्रेमगाथा मारवाड़ की मरुभूमि से लेकर शत नदी-नद

मिथ्यनन वगाल नक फैत गई । एक तरफ मीरादाउ थी—

तेरा कोई नहीं रोकनहार, भगत मीरा चली ।

लाज-धरम कुल की मरजादा सिर से ढूर करी ॥

दमगी और चडीदास ने गाया—

कलकरे डालि मायाय करिया अनिल भेजाइ धरे ।

अर्थात्—कलक की टोकरी सिर पर रखकर लौट आया ।

मीरा ने गाया—

आऊं आऊं कह गया सौवरा कर गया कौल अनेक ।

निया-दिन गिनते गिनते घिस गई भेरी डॉगली की रेख ॥

चडीदास ने गाया—

सखि रे मथुरा मंडले पिया ।

आसि आसि बोलि पुनः न आसिल कुलिश पापाण हिया ॥

आसिवार आसे लिखिनु दिवसे खोवा इते नखेरछन्द ।

उठिते बोसिते, पथ निरसिते दु आँखी हवल अंध ॥

ज्ञानदास ने गाया—

माघव कैसन बचन तोहार ।

आजि कालि करि दिवस गेवाइते जीवन भेल अति भार ॥

X X X

पंथ निहारिते नयन अंधावल दिवस लिखिते नख गेल ।

गोविन्ददास ने गाया—

पराणपिया सखि हमार पिया,

अबतुं न आवल कुलिश हिया ।

नरवर खोसरालु दिवस लिखि लिखि,

नयन अंधावल पिय पथ देखि ॥

पश्चिम भारत की साहित्य-धारा का अनुसरण करता हुआ मे हिन्दी की आधुनिक कवयित्री महादेवी के काव्य में पहुँच गया । उन्होने लिखा है—

कैसे सन्देश प्रिय पहुँचाती ।

X X X

दुगजल की सितमसि है अक्षय,

मसि प्याली भरते तारक है ।

मैथिलीशरण ने भी कुछ ऐसा ही गाया है—इन बातों को सोचते हुए मेवाड़ और वंगाल की दूरी मिट गई । चित्तोड़ के पहाड़ी किले के दरवाजे पर आक्रमणकारी

सेना का कुत्सित चीत्कार छूट गया, और जौहर-न्रत की दीपशिखा वृक्ष गई। राणा कुम्भा के जयस्तम्भ की छाया भी विलीन हो गई। तारों से भरे सारे आकाश में मीरा के गीतों की अनन्त व्याकुलता भनभताने लगी।

सारी दुनिया से बढ़कर यही सबसे बड़ा सत्य है।

महाराणा प्रताप और चारण

मैं नाटक देखने गया था। वहुत दिनों के बाद कुछ दिनों की छुट्टी में कलकत्ता आया था। इरादा यह था कि कलकत्ते में जो कुछ सबसे अधिक उपभोग्य है, और बगाल में जो भी उत्कृष्ट है उन सबों का फिर से स्वाद लेना है—पुराने को नवीन रूप में अनुभव करना और नूतन को नवीन प्रणय के आवेग से आत्मान करना है।

वचपन में एक सस्ते बँगला दैनिक में मैं यह अक्सर देखता था कि यह तो टूटा हुआ बगाल का देश है। अब तो सचमुच ही बंगल टूट चुका है। एक-तिहाई वाकी है, वह किसी तरह टिमटिमा रहा है, पर इस टिमटिमाने से अँधेरा बढ़ता है न कि घटता है! फिर भी इसी अँधेरे के धूंधट को उठाकर मैंने कलकत्ता देखना चाहा। प्रातःकाल लाखों स्थानों से मँडराते हुए धुएं के अन्दर से नारियल की कत्तारों के बीच से मैंने सूर्योदय देखा। मैंने सन्ध्या के समय गगा के किनारे बैठकर चिमनी की सासों की आङङङ में रंगीन सूर्यस्त भी देखा। एक कलाकार की रसना से मैंने हिलसा और दही का सन्देश का रस लिया। साथ ही साथ यह स्मरण हो आया कि उत्तर भारत में बड़ भीगा दिन-ब-दिन दुर्लभ होता जा रहा है।

इस स्वत्प छुट्टी के उपभोग के लिए मैंने यह निश्चय किया कि किसी साहित्य-गोष्ठी में जाने का भौका न लगे, तो कोई बात नहीं कोई बँगला नाटक ही देखा जाय जिससे सन्ध्याकाल सार्थक हो। उत्तर भारत में कहीं पर भी स्थायी रंगमंच नहीं है। पूर्व दिशा में मणिपुर-इम्फाल से पश्चिम में कराची तक एक कलकत्ते में ही नियमित रंगमंच है।

विचारानुसार समय व्यतीत करने के विचार से मैंने नाटक देखने का निश्चय किया, और मैं नाटक देखने गया।

उन दिनों शाहजहाँ नाटक हो रहा था। शाहजहाँ के लड़कों में जो भ्रातृ-युद्ध हो रहा था, मारवाड़ के राणा यशवन्तसिंह उसमें भाग लेने के लिए गये हुए हैं। रानी पति की चिन्ता में कातर है। चारसिंहांग-नाकार उन्हें तसल्ली और प्रोत्साहन दे रही है। वे युद्ध-वर्णन देकर समझा रही हैं कि अमर मरण सिन्धु को मरने के लिए वे वहाँ पर गये हैं। यदि पति युद्ध जीतकर लौटते हैं, तो रानी उनके कीर्तिमय भविष्य का साथ-साथ उपभोग करेगी। यदि वे वीर-नाति को प्राप्त होते हैं तो उनकी अक्षय-कीर्ति

अमर हो जायगी । फिर घबराहट किस बात की ? युद्ध के नतीजे के लिए सोच क्यों ? सधावा हो अथवा विधावा, तुम्हारा सिर ऊँचा रहेगा । वीर-जाया उठो, केश संभालो, चोटी बाँधो और अश्रुओं को पोंछ डालो ।

गीत की मदिरा से रानी को जोश आ जाता है, इतने में खबर आती है कि राजा ने बड़ी वीरता से लड़ाई की, पर जब उनके दस हजार सैनिक मारे गये, तो वे पीठ दिखाकर भाग खड़े हुए, और अब वे यहाँ किले में दाखिल हो रहे हैं । रानी को यह बात असहनीय मालूम हुई । यदि पति युद्ध में मारे जाते तो, उसका कोई गम न था । यदि वे जीतकर लौटते तो खुशी की सीमा न होती । पर पीठ दिखाकर लौटना ठीक नहीं ।

राजपूत पीठ पर ढाल लेकर लड़ाई से लौटे या ढाल उसके मृत शरीर को ले आये । ढाल फेंककर लौटना—ऐसे असम्मान से मरना ही अच्छा । इसलिए रानी ने हृक्षम दिया कि किले का दरवाजा बन्द कर दो । राजा तो उनकी आँखों में मर चुके थे । उन्हें किले में दाखिल न होने दिया जाय । मुगल इतिहासकार फरिश्ता ने इसका बड़ा रोचक वर्णन किया है । फ्रासीसी पर्यटक वर्नियर ने यह लिखा है कि रानी ने इसके बाद सहमरण में जाने के लिए अपने लिए चिता सजाने का भी हृक्षम दिया था ।

चारणियों ने गाना गा-गाकर वीर-नारी को अनुप्रेरणा दी ।

इन्हीं चारण और चारणियों ने राजपूताने को अनुप्रेरणा दी । डी० एल० राय के बैंगला नाटकों में हमने वार-वार चारणों के दिल मतलाने वाले गाने सुने हैं । जब भी मेवाड़ पतनोन्मुख हुआ, और आत्मसमर्पण का प्रलोभन इसके सामने आया, तब चारणों के गीतों ने राजपूतों के मनुष्यत्व को बचाया । इसलिए 'मेवाड़-पतन' नाटक में हम चारणों का यह गीत सुनते आये हैं—

देश गया इसका गम नहीं,

फिर से तुम इन्सान तो बनो ।

पराधीन देश के जीवन में इससे बढ़कर कोई बात नहीं हो सकती ।

राजस्थानी चारणों के गीतों में ही हिन्दी का जन्म हुआ, ऐसा कहा जा सकता है । चारण काल अथवा वीरगाथा काल हिन्दी साहित्य के चार युगों में से प्रथम युग है ।

उत्तर भारत के प्राचीन इतिहास का मसाला भी हमे इन्हीं चारणों के गीतों से मिलता है । ये कवि जनसभा के आश्रय में रहते थे और उत्साहवर्द्धक गीतों के अतिरिक्त राजवंशों की प्राचीन कीर्ति का गान भी करते थे । इन गीतों में कल्पना और अत्युक्ति भी है, इसे छाँटकर इतिहास बन सकता है । राजपूताने का इतिहास

इसी तरह बना है। टाट माहव की राजस्थान की कहानियाँ मुम्यतः इन्हीं चारणों के गीतों में ही लिखी गई हैं। सम-सामयिक किसी मुसलमान या विदेशी पर्यटक के लेखों में किसी वार्षिक आस्थान का उल्लेख न मिले, तो उमी कारण उसे अनैतिहासिक करार देना उचित न होगा। कहा जाना है कि चारणों तथा भाटों का पहले-पहल जन्म इस कारण हुआ कि महादेवी जी को वरधा को चराने के लिए एक व्यक्ति की जरूरत पड़ी और उन्होंने माये के पनीने से उसे उत्पन्न कर लिया। लोककथा इस सम्बन्ध में कुछ भी कहे, पर इन लोगों ने राजस्थान की कहानी प्रस्तुत की, और उन्हें चालू रखा, इसलिए दुनिया हमेशा उनके प्रति कृतज्ञ रहेगी।

जो अपने अतीत को भूल गया, उसके लिए वर्तमान उदासीन और भविष्य अनिश्चित है। चारणों ने भूतकाल को जीवित रखा और उज्ज्वल कर सामने रखा, चाहे उत्सव हो और चाहे और कोई अवसर हो।

महादेव जी के वरधा की चराते रहने के कारण इनका नाम चारण पड़ा। पर इनको जो सम्मान प्राप्त हुआ है, वह दुनिया में और किसी देश में कवियों को सामूहिक रूप में मिला, ऐसा तो मालूम नहीं पड़ता। देवी भवानी या माता जी का सूत नाम से काला रेशमी सूत गले में डालकर, पीली साढ़ी वांधकर चारणियाँ अभी गाँव-गाँव में इज्जत के साथ गाती रहती हैं, और पुरुष सभाओं तथा दरवारों में गाते हैं।

राजा अत्याचार और अन्याय से इसलिए बाज आते थे कि कहाँ दरवारी चारण उनकी कहानियाँ अगली पीढ़ी के लिए न छोड़ जायें। प्रजा उधार लेकर उसे चुकता करने से मुंह नहीं मोड़ती थी कि कहीं चारण अपने रक्त से उसे चुकता न कर दे। मारवाड़ और जैसलमेर राज्य में कई बार ऐसा हुआ कि चारणों ने सिंहासन के उत्तराधिकारियों की रक्षा की। इस प्रकार वे किसी समय के राजकवि नहीं, बल्कि राजा बनाने वाले भी होते थे।

राजस्थान के सबसे बड़े गौरव और गवर्स्थल महाराणा प्रताप को भी महान् संकट के समय इन्हीं चारणों की वीरगाथाओं ने बचाया था। हल्दीघाटी के युद्ध के बाद विपत्ति पर विपत्ति आती रही। हार पर हार होने के कारण वे तिलमिला गये थे, और जंगलों में भटक रहे थे। उन दिनों यह डर था कि वे कम से कम उनका परिवार, मुशालों के हाथ न पढ़ जाय। एक बार ऐसे ही समय में वे बहुत विचलित हो गये थे।

पर्वतों की गुफाओं में भटकते हुए भी मेवाड़ राजा का परिवार निश्चन्त न था। चतुर मुगलों से बचाकर जंगली भील प्रताप के परिवार को बैत की टोकरी में छिपाकर पेड़ों पर टांग देते थे। उन्हें जंगली फल-मूल खाने को देते थे। फिर भी निश्चन्त नहीं थे। कम से कम पाँच दफ्ते आपके परिवार

को इस मामूली भोजन को छोड़कर शत्रु से बचने के लिए भागना पड़ा। इस पर भी महाराणा प्रताप इस संकल्प में अटल रहे कि विदेशियों के सामने सर नीचा नहीं भुकायेंगे। पर अंग्रेजी में कहते हैं कि अन्तिम तिनके से ऊंट की पीठ टूटती है वैसे ही महाराणा का हाल हुआ। उनकी प्रतिज्ञा टूटने लगी, सर भुकने लगा।

महारानी और युवरानी ने जंगल में छिपकर धास के बीज के आटे की रोटी बनाई थी। वच्चों के लिए केवल एक रोटी की व्यवस्था थी। इस एक रोटी में से आधी खानी और बचानी थी, क्योंकि पता नहीं कि बाद को कैसी परिस्थिति हो? महाराणा इसी बात पर विचार कर रहे थे कि इतने में एकाएक उनकी लड़की के चिल्लाने से मतन में विघ्न पड़ा। बात यह है कि एक जंगली विल्ली बेचारी राजकुमारी की रोटी लेकर भाग गई थी। मुग्लों की शत्रुता, अपने रिश्तेदारों और लड़कों की रणक्षेत्र में मृत्यु आदि बातों से जो असर पैदा नहीं हो सका था, वह असर राजकुमारी के चिल्लाने से उत्पन्न हुआ। शत्रुता और रणक्षेत्र में अपने साथियों की मृत्यु तो राजपूतों के लिए साधारण बात थी। पर धास की रोटी के लिए लड़की का तरसना, इसे महाराणा सहन न कर सके। उनकी आँखों में आँसू आ गये और उन्होंने अकबर को सन्धि-पत्र लिखा।

अकबर पत्र पाकर बहुत खुश हुए। शीघ्रता से सार्वजनिक खुशी की तैयारियाँ हुईं, और दीवाली मनाई गई, आतशबाजी छूटी और आगरे की सड़कों पर खुशी छा गई। राजपूत शेर अब पकड़ा गया।

खुशी के मारे अकबर ने बीकानेर के राजा के भाई पृथ्वीराज को पत्र दिखाया! पृथ्वीराज साहसी वीर और रसिक कवि थे। वे असि और मसि दोनों के बीर थे, पर बीकानेर अकबर के हमले से नहीं बचा था, इसलिए पृथ्वीराज को अकबर की सभा में रहना पड़ा था। केवल यहीं नहीं उनकी स्त्री किरणमयी का अपमान भी हुआ था।

नववर्ष की तरह नौरोज एक त्योहार होता था जो नौ दिन मनाया जाता था। अकबर ने इन्हीं में एक दिन खुशरोज करके मुकर्रर कर दिया था। उस दिन अमीर-उमराह सबका उपस्थित होना ज़रूरी समझा जाता था। सुलताना भी मंत्रियों तथा दूसरे कई लोगों की स्त्रियों को लेकर दरवार लगाती थी। खुशरोज के दिन केवल स्त्रियाँ ही दुकान सजा सकती थीं। किसी अमीर के घर यदि कोई सुन्दरी कन्या होती थी तो उसको भी वहाँ आकर बादशाह तथा ब्रेग्मों की दृष्टि आकर्षित करनी पड़ती थी। फ़ान्सीसी, पर्यटक बनियर ने लिखा है कि बादशाह एक-एक पैसे के लिए मोल-भाव करके तमाशा बनाते थे। अन्त तक ऐसा भी होता था कि दुकान वाली सुन्दरी बादशाह से यह भी कह देती थी—जाइये, जहाँपनाह! यह गाल आपके बश का नहीं है। मोल-भाव तो एक-एक कौड़ी का होता था, पर रुपया देते समय बादशाह मानो

ग़लती से चांदी के रूपयों के बदले मोहरें देकर मानो सुन्दरी के रूप के प्रति अपना नज़राना अदा करते थे ।

सासार में हमेशा से ही रूप का सम्मान होता आ रहा है । कवि रूप के पुजारी और कामुक इसके व्यापारा माने जाते हैं । मनुष्य अपने आप ही निर्णय करता है कि वह रूप का पुजारी या व्यापारी बनेगा ।

अबुलफजल अकबर के नवरत्नों में से एक बड़े रत्न थे । ऐतिहासिक तथा अकबरनामा के लेखक थे । उन्होंने लिखा है—रूप के इस वाजार में किसी को कुछ पता नहीं लगता था कि वह क्या कर रहा है ? स्वयं वादशाह भी इसमें भेष बदलकर हिस्सा लेते थे । इसी तरह वे चीजों की कीमत जान सकते थे । साम्राज्य तथा सरकारी अफसरों के चालचलन के सम्बन्ध में लोगों का अभिमत सुन सकते थे ।

ऐसे ही खुशरोज के उत्सव के दिन जब पृथ्वीराज की स्त्री किरणमयी उत्सव-स्थान से लौटने लगी तो चांदी ने आकर खबर दी कि उनको पालकी दूसरे फाटक पर खड़ी है । किरणमयी को श्राश्चर्य हुआ, पर वे चली । कई कमरों के अन्दर से होते हुए एक कमरे में पहुँचकर देखा कि आगे कोई रास्ता नहीं है । और पीछे मुड़ी तो देखा कि शाहशाह अकबर खड़े हैं । इस प्रकार से मेवाड़ के सिसोदिया वंश की एक ललता मुग़ल सम्राट् के चगूल में फैस गई ।

इस समय तक मेवाड़ ने मुग़ल सम्राट् के निकट सर नहीं भुकाया था । पर आज मेवाड़ की इज्जत वादशाह के हाथ में थी । महाराणा प्रताप आप किस जंगल में भील, चीता और स्यारों के बीच छुपे हुए हो । आओ, अपने पवित्र तथा उच्च वंश की राजकन्या को बचाओ । इस समय किरणमयी के सीने में छिपा हुआ छुरा उसके रक्षायं निकल आया । सिसोदियावंशी कन्या और राठोर वंश की वधु किरणमयी ने उस छुरे को विजली के वेंग से वादशाह के सीने से छुआ दिया । अकस्मात् वज्रपात होता तो भी अकबर इतने न घबड़ाते । अभी-अभी उन्होंने अपने हाथ से जो दरवाजा बन्द किया था वे उससे पीठ लगाकर हाँफने लगे । सामने छुरा तना हुआ था । किरणमयी ने न केवल अपनी इज्जत बचाई बल्कि अकबर से अपने को माता सम्बोधन कराया, साथ ही यह भी प्रतिज्ञा कराई कि वह आगे किसी राजपूतानी का सतीत्व नष्ट करने की चेष्टा नहीं करेगा । तब जाकर छुरा अपनी जगह पर लौटा ।

उसी किरणमयी के पति पृथ्वीराज को अकबर ने वड़ी खुशी से राजपूतों की अखिरी श्राशा और गर्वस्थल महाराणा प्रताप की वह चिट्ठी दिखाई जिसमें उन्होंने सन्धि-प्रस्ताव को लिखा था । पृथ्वीराज इसे देखकर बहुत दुखी हुए, पर अन्तिम चाल चलते हुए सरलता का ढोग भरकर बोले—मुझे तो विश्वास नहीं होता कि यह चिट्ठी सच है । मुग़ल साम्राज्य मिलने पर भी प्रताप सर नहीं भुकायेगा । कहीं ऐसा तो नहीं है कि

किसी ने शत्रुता करने के लिए यह जालसाजी की हो । जो कुछ भी है, मैं प्रताप से इस का पता लेता हूँ ।

अकबर मूँछों पर ताव देकर राजी हो गये ।

पृथ्वीराज चारणों से भी बढ़कर कवि थे । चारणों के कवि-सम्मेलन में उन्हें विशेष सम्मान दिया गया था । पर यहाँ दरवार में बैठकर खुल्लमखुल्ला प्रताप से स्वाधीनता के लिए लड़ने को उत्तेजित करना सम्भव नहीं था, इसलिए उन्हें बहुत कुछ धुमा-फिराकर लिखना पड़ा ।

अकबर के किसी दरवारी इतिहासकार द्वारा लिखित विवरण में पृथ्वीराज और किरणमयी की कहानी का समर्थन नहीं मिलता, पर पत्र के रूप में लिखी हुई यह कविता सचमुच ऐतिहासिक है । पृथ्वी पर जितने दिन वीरों की पूजा होगी उतने ही दिन यह वीरगाथा जीवित रहेगी । वह कविता यों है—

अकबर समद अथाह, तिहं डूवा हिन्दू तुसक,

मेवाड़ तिड़ माँह, पोयण फूल प्रताप सी ।

अकबरिये इकवार, दागल की सारी दुनी,

अरण दागल-असवार, चेतक राणा प्रताप सी ।

अकबर घोर अँधार, उषीणा हिन्दू अबर,

जागं जगदातार, पोहरे राणा प्रताप सी ।

हिन्दूपति परताप, पत राखी हिन्दू आणा री,

सहों विपत सताप, सत्य सपथ करि आपनी ।

चंपा चितोड़ हा, पोरसतणों प्रताप गीं

सौरभ अकबरशाह, अलि यल आमरिया नहीं ।

पातल जो पतशाह, वोले मुखूँ तो वयण ।

मीहर पछिम दिश माँह, उगं कासप रावत ।

पटके मुद्दां पाया, कि पटकूँ निज कर तलद,

दीजै लिख दीवाण इन दो महली वात इक ।

अर्थात् अकबर रूपी समुद्र में हिन्दू-तुर्क सब डूव गये हैं, किन्तु मेवाड़ के राणा प्रताप उसमें कमल की तरह खिले हुए हैं । अकबर ने सबको पराजित किया है, पर चेतक घोड़े पर सवार राणा प्रताप अभी अपराजित है । अकबर के अँधेरे में सब हिन्दू ढक गये हैं, पर दुनिया का दाता राणा प्रताप अभी उजेले में खड़ा है । हे हिन्दुओं के राजा प्रताप ! हिन्दुओं की लाज रख । अपनी प्रतिज्ञा के पूर्ण होने के लिए कष्ट सहो । चित्तोड़ चम्पक का फूल है, श्रीर प्रताप उसकी सुगन्ध है । अकबर रूपी भ्रमर उस पर बैठ नहीं सकता । यदि प्रताप अकबर को अपना बादशाह माने तो भगवान् कश्यप का

लड़का सूरज पश्चिम में उदय होगा । हे एकलिङ्ग महादेव जी के पुजारी प्रताप यह लिख दों कि मैं वीर दनके रहूँगा या तलवार से अपने को काट डालूँगा ।

इस कविता ने दस हजार सेनाओं का काम किया, और प्रताप ने यह उसर भेजा—

तुरुक कहाँ सो मुख पतो, इन तणासु इकर्लिग,
उसे जासु ऊगसी, प्राची बीच पतंग ।

अर्थात् भगवान् एकर्लिग जी के नाम से सीगन्ध खाता हूँ कि मैं हमेशा अकबर बादशाह को तुर्की के नाम से ही पुकारूँगा । जिस दिशा से सूरज हमेशा निकलता है उसी पूर्व दिशा से ही वह निकला करेगा ।

महाराणा प्रताप की तरह उनके पुत्र महाराणा अमरसिंह भी बार-बार पराजित होकर घबराते हुए सोचने लगे कि वे लड़ेंगे या हार स्वीकार करेंगे । चारणों की कविता से पता चलता है कि उस समय उन्होंने अपने मित्र खानखानाँ (मिर्झा खाँ) से सलाह माँगी । इस मुसलमान सेनापति की सभा में हिन्दी, फ़ारसी, संस्कृत आदि भाषाओं के पण्डित तथा कवि रहते थे । इसी सभा में खानखानाँ ने अमरसिंह की चिट्ठी पढ़ी । उसमें लिखा था कि गोड़, काच्छोया, राठोर में सब आराम कर रहे हैं । मैं तक अकेला जगलो में फिरूँगा । इस पर खानखानाँ ने लिख भेजा—

धर रहसी रहसी धरम, खप जासी खुरसारण,
अमर विसम्भर उपरां, राखो न हचे राण ।

अर्थात् हे राणा अमर ! तुम भगवान् में भरोसा रखो । संसार में धर्म ही रहेगा और मुगल चला जावेगा ।

ऐसा जवाब मिलने पर महाराणा अपना कर्तव्य समझ गये ।

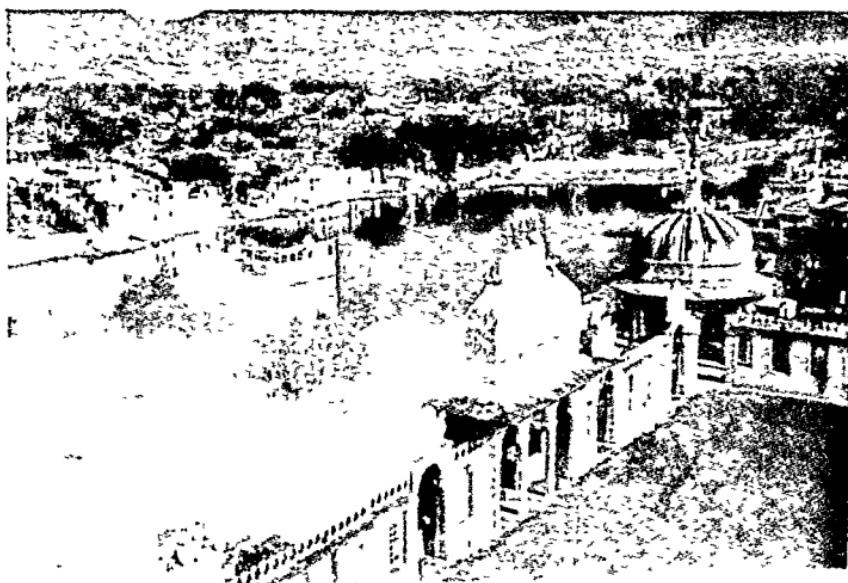
चारण कवि केवल वीरगाथा ही नहीं गोति-कविताओं की भी रचना करते थे । राजा यशवंतसिंह लड़ाई में हारकर आने के कारण अपनी रानी के ही द्वारा किले में दाखिल होने से रोके गये । पर उसी युद्ध में एक सामन्त राजा रत्नसिंह बहुत वीरता दिखाकर मर गये । उनकी रानी जिस समय सहमरण में जा रही थी, उसका वर्णन चास्ण काव्य वचनिका रा रत्नसिंह जी की महसदासीत रो—मैं बहुत सुन्दर मिलता है—

कटि सिंह नितम्ब जङ्घा कदली ।
चित नित्य प्रविन्त मराल चली ॥
तन रम्भ खम्भ कनक तिगी ।
जेपै गिरि नगिन्द बेणि इगी ॥



नीका-विहार

स्त्रील और प्रासाद, उदयपुर ।





राजपथ का दृश्य ।



राजस्थानी राजप्रहरी ।

घनिता मुख पुनिम चन्द वनी ।
भृङ्ग भ्रुंन चमा मृग रूप भनी ॥
कण्ठ कोकिल दत्त अनारकली ।
अग्र नक्का अलक्का कला उजली ॥

राजस्थान में जाकर चारण-साहित्य को न सुनना वैसा ही होगा जैसा कोई इंगलैण्ड जाकर शैक्षणियर का नाटक न देखे या वंगाल जाकर रवीन्द्र का संगीत न सुने ।

विदिशियों ने कहा है कि वंगाल देश कवियों का घर है। ऐसे देश में पैदा होकर राजस्थान के कवियों का परिचय न लेकर मैं कैसे लौट आता? पर इस बीसवीं सदी में पुराने समय के चारण कहाँ मिल सकते थे? कौन उनका पता देता?

अपने कामों में व्यस्त या राजाओं के लोप हो जाने से उत्कण्ठित समाज में कोई भी आजकल चारणों की खोज नहीं रखता है। चारण लोगों ने भी काव्य-चर्चा छोड़ दी है क्योंकि पहले की तरह इस वृत्ति में न तो सम्मान है और न ही इससे जीवन-निर्वाह हो सकता है।

वंगाल में काव्य-चर्चा अभी तक थी, किन्तु जब देखा जाता है कि इसी समय में कविता के प्रति उदासीनता कहाँ तक वढ़ गई है तब चारणों का दुःख हो जाना कोई अजीब वात नहीं है। वंगालियों की लिखी हुई राजपूताने की भ्रमण-कहानियों में चारणों का कोई उल्लेख ही नहीं मिलता। इनके असितत्व का प्रभाण टाइ साहब ने ही दिया है।

फिर भी मैं चारणों की तलाश करने लगा। ये कहाँ मिलेंगे? कौन पता देगा? लुप्त होने वाले कवियों का पता क्या संसार या सोसाइटी दे सकती है?

यह सोचकर कि प्रकाशक कवियों का पता दे सकते हैं, मैंने उदयपुर के पुस्तक-विक्रेताओं से चारणों की वात पूछी। वे मेरी वात सुनकर अवाक् ही न हुए बल्कि हतवृद्धि हो गये। प्राचीन चारणों की कविताओं का एक-आध संग्रह कहीं-कही छपा था, जो अभी भी स्कूलों की पाठ्य-पुस्तकों में मिल जाता है। पर जीवित चारण कहाँ मिलता? ऐसा अशास्त्रीय काम यहाँ नहीं होता।

कई एक प्राचीन पण्डित श्रौर नये अफसरों से भी पूछा। वे भी ऐसा असम्भव प्रश्न सुनकर आश्चर्यमय हो गये। हाँ, इतना तो बताया कि गाँव-गाँव में ढुँढ़ना पड़ेगा। फते सागर के उस पार जहाँ सूरज डूबता है वहाँ से ५-६ कोस जाने पर एक गाँव मिलेगा। वहाँ एक चारण-परिवार रहता था। ऐसा प्रतीत होता है। पर यह पता नहीं कि अभी तक वह जीवित है।

लौटकर मैं राज्य के गैस्ट-हाउस लक्ष्मी विलास भवन में चला आया।

महाराणा के सेक्रेटरी श्री रामगोपाल त्रिवेदी अतिथियों का विशेष ध्यान रखते थे।

त्रिवेदी जी के बगल राजस्थान के बारे में ही विशेषज्ञ नहीं थे, किन्तु बंगाली साहित्य और भारतीय संस्कृति के भी अनुरागी थे। मित्रों के लिए लड़ाई में जान देने की तरह कठिन काम भी आसानी से कर सकते थे। जब त्रिवेदी जी ने सुना कि एक परदेसी राजस्थान के कवि और काव्य के विषय में उत्सुक हैं तब उनकी उज्ज्वल आँखें और भी चमकते लगीं। वे महाराणा के विशिष्ट अतिथियों को पिशोला झील में नोका-विहार को अपने साथ ले जाते, गागोरी उत्सव के समय जलयादा को ले जाते, राजभवन दिखलाने को भेज देते, जयसमुद्र देखने का प्रवन्ध कर देते, और किसी-किसी अतिथि को हल्दीधाटी के दुर्गम युद्धक्षेत्र भी दिखा देते; पर त्रिवेदी जी चारणों के गाने कहाँ से सुनावेंगे?

हाँ, यह सुनने में आया कि महाराणा जब उदयपुर में रहते हैं तो कभी-कभी कवि-दरवार भी बुलाते हैं। तब चारण कवि दूर-दूर गाँवों से आते हैं। राणा उनका आदर करते हैं, उनके भोजन का प्रबन्ध करते हैं। कवि भी अपने पूर्वपुरुष की रचित कविताओं का पाठ करते हैं। अपनी रचना भी सुनाते हैं। वेङ्गिल भाषा में रची हुई कविताओं के रीढ़ रस की व्यास्था करते हैं। मानों चारों ओर तलवार ही तलवार चमक रही हो। पर महाराणा तो शिकार को गये हैं, इसलिए चारण कवि भी शहर को नहीं आवेंगे। महाराणा के सिवाय चारणों का सम्मान आजकल और कोई नहीं करता है।

बहुत खोज करने के बाद ठाकुर साहब को एक पता मालूम हुआ। पता मालूम होते ही हम लोग शहर की एक घनी वस्ती के अन्दर चल पड़े। दिल्ली में चाँदनी चौक की चौड़ी सड़क की भीड़ में जैसे एकाएक एक बड़ा लोहे का फाटक दिखाई देता है वैसे ही एक फाटक के सामने हम खड़े हो गये। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि गढ़ के भीतर एक उपगढ़ का फाटक है पर ऐसा नहीं।

यह तो अंग्रेजों के राज्य से पहले का बन्दोबस्त है। एक फाटक के पीछे एक गली, उसके दूसरे तरफ सैकड़ों मकान और वस्तियाँ थीं। गड़वड़ के समय फाटक बन्द करके आत्मरक्षा हो सकती थी। गली के दोनों तरफ छोटी-छोटी खिड़कियाँ। उन खिड़कियों से तलवार या बन्दूक की सहायता से एक ही आदमी काफ़ी देर तक दुश्मनों को रोक सकता है। त्रिवेदी साहब के पीछे-पीछे ऐसी ही एक गली में गये। दोनों तरफ पतली नाली और खिड़की थीं। राजपूत औरते इस खिड़की से एक परदेसी को देखकर हट गईं।

एक दो सौ वर्ष पुराने मकान के दरवाजे पर बहुत धक्के देने के बाद एक ने आकर दरवाजा खोला। मालूम हुआ कि ऊपर से उसने त्रिवेदी जी की पगड़ी देखी

और तब निरापद जानकर दरवाजा खोला । पता लगा कि कवि जी शहर में नहीं हैं । गाँव से कवि लौटेंगे, इसकी भी खबर नहीं ।

पर, मुझे तो आज शाम की ही गाड़ी से लौटना था । राजपूताने में यह मेरा अखिली दिन था । क्या चारण की कविता चारण के मुँह से सुनना रह ही जायगा ?

मैंने शर्म-हया त्यागकर कवि-पुत्र से कहा कि आप ही अपने पिता जी की कोई कविता सुना दीजिये । आपको तो उनकी कोई-न-कोई कविता ज़रूर आती होगी, चाहे वह प्रकाशित हो, चाहे हस्तलिखित या चाहे सुनी हुई हो । इस पर जो उत्तर मिला, वह राजस्थान की मरम्भमि में हमेशा के लिए छूब जाय । कवि-पुत्र हँस पड़े । सिर पर उनके लम्बे बाल और मूँछें विलकुल साफ़ थीं । वह हँसकर बोले—कविता ? इस प्रश्न का मतलब मैं नहीं समझा । मैंने कहा—हाँ, कविता ! पुत्र महोदय ने कुछ नटों के ढंग पर कहा—मैं तो घुड़दौड़ों के घोड़ों से ही वास्ता रखता हूँ । कविता से मेरा क्या काम ?

मैं लौट आया । अक्समात् स्मरण हो आया कि राजाधिराज अछड़ोल से क्यों न इस सम्बन्ध में कहा जाय । प्रियदर्शन राजाधिराज महारानी के भाई होने के अतिरिक्त उनके जमाने में उदयपुर के गृहमंत्री भी थे । आशा हुई कि शायद मित्रों के पारे राजाधिराज इस बात में सहायता दे सकें ।

उदयपुर में इनका अतिथि-सत्कार और सुन्दर व्यवहार देखकर मुझे बहुत ही आनन्द हुआ था । बँगला साहित्य के सम्बन्ध में इनका विशेष ज्ञान तथा उत्साह था । क्या मेरी इच्छा को वह पूरी करने की चेष्टा करेंगे ?

मैंने उनको फ़ोन किया तो वे चेष्टा करने के लिए राजी हो गये । पर मेरे पास समय थोड़ा था । इतने समय में एक कवि को ढूँढ़ा मुश्किल था, पर राजाधिराज एक बँगली कवि को राजस्थानी कविता सुनाकर खुश होंगे ।

राजाधिराज मुझे कवि कह रहे हैं । मालूम होता है, राजाधिराज इस कार्य में अंसफल रहे । आशा त्यागकर हमने सारा सामान स्टेशन भेज दिया । मैं स्वयं भी रवाना होने ही बाला था ।

जीवन में कितनी बड़ी-बड़ी आशायें अपूरण रह जाती हैं । यह तो राजस्थान में चारण के मुँह से केवल कविता तथा गाना सुनने की आशा से ही स्पष्ट लक्षित हो जाता है ।

मैं निकल ही रहा था कि सामने के दरवाजे पर एक दीर्घ छाया पड़ी । पहले ही पेरों पर दृष्टि गई, तो वहाँ लकड़ी का बना हुआ सुन्दर चमरीधानुमा जूता था । एक बृद्ध वीर थे, जिनका शरीर लम्बे सफेद अँगरखे ने ढका हुआ था । कमर में तलबार लटक रही थी और सिर पर उद्धृत पगड़ी थी । ऐसा मालूम हुआ कि यों तो दाढ़ी

वेंधी रहती होगी, पर इस ममय वह दो हिस्तों में बैटकर मूली हालत में दो तरफ जा रही थी। शायद महाराणा के दरवार के कोई सम्मानित व्यक्ति थे।

नहीं, वे कोई दरवारी नहीं थे, उन्होंने बताया कि उनका नाम श्री उज्ज्वल विजयकरण है। उन्हें राजाधिराज ने नारण-नीत सुनाने के लिए भेजा है। विजयकरण जी के पिता श्री उज्ज्वल फतेहरण जी भेवाट के प्रभिद्व राष्ट्रीय चारण माने जाते थे। वे केवल कवि ही नहीं थे, उनमें राजपूतों के दृशरे गुण भी थे—धोड़े की सवारी करना, नलवार नलाना तथा भिकार खेलना आदि। विजयकरण जी स्वयं भी कवि थे, पर उन्होंने बताया कि वे अपने पिता की तुलना में कुछ भी नहीं हैं।

रेत की जल्दी की बात भूलकर मैंने कवि का हाथ पकड़ लिया और मैंने उनसे कविता सुनाने के लिए कहा। विजयकरण जी चुप होकर बैठ गये। उन्होंने जोचा होगा कि उत्साही श्रोता समझदार भी होगा। डिगल भाषा की कविता समझना बहुत कठिन नहीं है। जहाँ भाषा श्राकर कान में अटक जाती है, वहाँ भाव श्राकर मन का द्वार खोल देता है। कुछ समझना और कुछ न समझना इस प्रकार के श्रालोक और अन्धकारपूरण बातावरण में बीर रस की कविता हिलोरे सेने लगी।

बीर रस की कविता की आवृत्ति करते समय कवि ने अपनी म्यान से तलवार आधी खीच ली, और गरजकर कहते रहे—

बीर पियो पय मातु को, दियो अधर रसदाम।

अब शोशित अरियन पियत, तो हि पियन को काम॥

प्रथम है बीर ! तुमने, माँ के दूध का पान किया है, स्त्री की अधर-सुधा का पान किया है, और अब दुर्घटन का खून पी रहे हो। पीना ही तुम्हारा काम है।

मैंने हल्दीघाटी का युद्ध-वरण सुनना चाहा, कवि ने उसका भी हिस्सा सुनाया। उस वडे कमरे की दीवार पर हल्दीघाटी के युद्ध की तसवीर थी—राजशिल्पी ने सारी घटनाओं को रंगीन चित्रों में अंकित किया थे। मेरी छोटी सड़की अनुराधा ने इस तसवीर के एक-एक हिस्से को वडे ध्यान से देखा और कई दिनों तक मेरे से पूछती रही कि यदि हल्दीघाटी के युद्ध में राणा प्रतापसिंह और भानसिंह इकट्ठे देश के लिए लड़ते तो फिर क्या ऐसा हो सकता था ? चारण के मुख से कविता सुनते-सुनते ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो हमारे कमुहे में राजपूत, बीरों की जो तसवीरें टंगी हुई थी, उनके अन्दर से वे बीर हमारे इर्द-गिर्द लटक आये और गाँल बनाकर हमारे साथ लड़े हो गये।

हल्दीघाटी के पहाड़ों के 'बीच' में लड़ते-लड़ते मुँगल और राजपूत हल्दी के रंग की घूल में मिट गये। ऐसा भालूम होने लगा जैसे मानसिंह सलीम के शिविर से निकल-कर भूतकाल पर लाते भारकर प्रतापसिंह के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़े हो गये।

यह भी देखने में आया कि चैतक के सात स्तंष्ठ होकर शनितसिंह जौर प्रतापसिंह शनु



होने के बजाय एक-दूसरे के आलिंगन में बँधकर खड़े हैं ।

कविता के कारण जो वातावरण उत्पन्न हुआ, उसमें आँखों से भरी आँखों से मैं देखने लगा मानो सारा रजवाड़ा एक हो गया हो । एकीभूत भारत में रजवाड़ा भी एक हो गया । जब चारण कवि ने विदाई लेते हुए मुझे याद दिलाया कि मेरी गाड़ी शायद छूटने वाली है तब मैं स्वप्न से जगा ।

बात तो ठीक है कि मन की गाड़ी मुझे न मालूम कितने पीछे कहौं जन्म पीछे खीच ले गई थी । इतने दिनों के बाद वहाँ से फिर सामने की तरफ निष्ठुर और वास्तविक सामने की तरफ दिल्ली वाली गाड़ी हमें आगे ले जाने के लिए फुफकारकर गरज रही थी । दिल्ली वाली गाड़ी मुझे आगे की तरफ सिर्फ़ आगे की तरफ़ ले जाने वाली थी । क्या यह सम्भव था कि इस समय चारण की कविताओं के कारण अश्रुवाष्प-पूर्ण वातावरण में राजस्थान का जो मानस-चित्र मेरे निकट मूर्त हुआ था । मैं उसमें जरा भी किसी तरह का फ़र्क या दाग न आने देकर दिल्ली की गाड़ी में ले जा सकूँगा ।

कविवर मेरे साथ स्टेशन तक आये । मैंने उत्साह के साथ उनके चेहरे की तरफ देखते हुए कहा—आपने मुझे कुछ दिया, उसके आन्तरिक ऐश्वर्य को मैं धन्यवाद देकर मलिन नहीं करना चाहता ।

रोद्रस के वर्णन करने वाला कवि मुस्कराकर धीमे स्वर से बोले—मेरी तृप्ति इसी में है कि मैंने बंगाल के एक साहित्यकार को चारण-नाथा सुनाई । डी० एल० राय की पत्रिका भारतवर्ष में रानी पदिनी पर आपकी एक कविता निकली थी—उदयपुर के बंगालियों ने उसका अनुवाद मुझे सुनाया था । आपको कविता सुनाने से चारणों के सम्मेलन में मेरा आसन और ऊपर को उठेगा ।

गाड़ी एक घक्के के साथ आगे बढ़ गई । मेरे मन पर भी एक घक्का पहुँचा । बंगाल और उसके साहित्यकारों के प्रति चारण कवि का ऐसे सम्मान के बदले मैंने कवि को एक संक्षिप्त नमस्कार किया ।

नमस्कार चारण-कवि ! नमस्कार वीरगाथा ! नमस्कार रूप कथा का रजवाड़ा !

